

Vol. 11
No. 20
DP-21

वैदिक वाग् ज्योतिः
सम्पादक - दिनेशचन्द्र शास्त्री

UGC CARE LISTED



UGC CARE LISTED
(Arts & Humanities)

ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882

DP-21

वैदिक वाग् ज्योतिः Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed
Research Journal on Vedic Studies
(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-11

January-June 2023

No./ अंक 20

सम्पादक

प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री

अध्यक्षचर, वेदविभाग, गुरुकुलकांगड़ी (समविश्वविद्यालय)

कुलपति

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय

हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)

Gurukula Kangri (Deemed to be University)

Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India

<http://www.gkv.ac.in>





ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
(UGC CARE listed half yearly journal)
January-June 2023

‘वैदिक वाग् ज्योतिः’ ‘Vaidika Vāg Jyotiḥ’
**An International Refereed/Peer-Reviewed
Research Journal on Vedic Studies**

Patrons

Dr. Satyapal Singh, Chancellor, GK(DU), Haridwar
Prof. Somadev Shatanshu,
Vice-Chancellor, GK(DU), Haridwar

Chief Editor

Prof. Dinesh Chandra Shastri
Ex. Head, Dept. of Veda, GK(DU),
Haridwar-249 404 (U.K.) India
Email - dineshchshastri@gmail.com
Tel : +91-9410192541
Vice-Chancellor,
Uttarakhand Sanskrit University,
Haridwar-249402

Advisory Board

Prof. Nicholas Kazanas 'Padm Shri', Athens
Prof. Balram Singh, USA
Dr. Rajendra Ayurvedalankar, Haridwar
Prof. Maan Singh, Roorkee
Prof. Shashi Tiwari, 'President Awardee', Delhi
Prof. Shashi Prabha Kumar, Delhi
Prof. Lekhrum Sharma, Amritsar
Prof. Ishwar Bharadwaj, Haridwar
Prof. Bheem Singh, Kurukshetra
Prof. Upendra Kumar Tripathi, Varanasi
Prof. Vedpal (Meerut)
Prof. Renubala, Amritsar
Prof. M.R. Verma, Haridwar
Prof. Pankaj Madan, Haridwar
Prof. L.P. Purohit, Haridwar
Dr. Aparna Dhir, USA
Dr. Anju Kumari
Dr. R.G. Murli Krishna, Delhi
Dr. Udhham Singh

Distinguished Advisors

Acharya Balkrishna,
V.C., Patanjali University
Prof. Prahlad Joshi,
V.C., KBVSASU, Assam
Prof. Suneel Joshi,
V.C., U.A. University

Departmental Advisory Board

Prof. Manudev Bandhu

Reviewers

Acharya Balveer, Rohtak
Dr. S.P. Singh, Delhi

Finance Advisor

Prof. Devendra Gupta, F.O.
Sh. Naveen Kumar

Business Manager

Department of Veda & Librarian
GKV, Haridwar - 249 404
(Uttarakhand) India

Subscription

Rs. 1200.00 Annual, US \$ 120,
Single Copy: Rs. 600.00
Rs. 5000.00 Five Year's
Payment Mode :
D.D. in favour of Registrar,
G.K.V. Haridwar (U.K.)

Published by

Prof. Sunil Kumar
Registrar, GKV, Haridwar - 249 404
(Uttarakhand) India

Printed at

D.V. Printers
97-U.B., Jawhar Nager, Delhi-110007
Mob.: 09990279798, 09818279798

UGC CARE listed (Arts & Humanities)

ISSN : 2277-4351

RNI : UTTMUL 2012/53882



वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed/Peer-Reviewed
Research Journal on Vedic Studies

(UGC Approved Half Yearly Journal)

Vol./वर्ष-11

January–June 2023

No./अंक 20

सम्पादक

प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री

अध्यक्षचर, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय)

कुलपति

उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार



गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार

(NAAC द्वारा 'ए' ग्रेड प्रदत्त एवं यू.जी.सी. द्वारा पूर्णतः अनुदानित समविश्वविद्यालय)

Gurukula Kangri Deemed to be University

Haridwar-249 404 (Uttarakhand) India

<http://www.gkv.ac.in>

वैदिक वाक्

सर्वे^१ निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि^२।

नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥-यजु. 32/2

पदार्थः—(सर्वे) (निमेषाः) नेत्रोन्मीलनादिलक्षणाः कलाकाष्ठादिकालाऽवयवाः (जज्ञिरे) जायन्ते (विद्युतः) विशेषेण द्योतमानात् (पुरुषात्) पूर्णाद्विभोः (अधि) (न) निषेधे (एनम्) परमात्मानम् (ऊर्ध्वम्) उपरिस्थम् (न) (तिर्य्यञ्चम्) तिर्य्यक् स्थिमधःस्थं वा (न) (मध्ये) (परि) सर्वतः (जग्रभत्) गृह्णाति।

अन्वयः—हे मनुष्याः! यस्माद्विद्युतः पुरुषात्सर्वे निमेषा अधि जज्ञिरे तमेन कोऽपि नोर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्तं यूयं सेवध्वम्।

भावार्थः—हे मनुष्याः! यस्य निर्माणेन सर्वे कालावयवा जाता यच्चोर्ध्वमधो मध्ये पार्श्वतो दूरे निकटे वा कथयितुमशक्यं यत् सर्वत्र पूर्णं ब्रह्माऽस्ति तद्योगाभ्यासेन विज्ञाय सर्वे भवन्त उपासीरन्।

पदार्थः—हे मनुष्यो! जिस (विद्युतः) विशेषकर प्रकाशमान (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) कला काष्ठा आदि काल के अवयव (अधि, जज्ञिरे) अधिकतर उत्पन्न होते हैं उस (एनम्) इस परमात्मा को कोई भी (न) न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (न) न (तिर्य्यञ्चम्) तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और (न) न (मध्ये) बीच में (परि, जग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है उसको तुम सेवो।

भावार्थः— हे मनुष्यो! जिसके रचने से सब काल के अवयव उत्पन्न हुए और जो ऊपर, नीचे, बीच में, पीछे, दूर, समीप कहा नहीं जा सकता, जो सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म है उसको योगाभ्यास से जान के सब आप लोग उपासना करो।

द.भा.

वाग्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्

नाना-तर्कैर्वितर्कैर्विबुध-जनमतैर्भूषयल्लेखमालाः
शास्त्राणां दर्शनानां निगमपथजुषां ब्राह्मणानां बहूनाम्।
वाक्यैः सिद्धान्तनिष्ठैः समम् उपनिषदां तत्त्वमाधातुकामम्
वाग्योतिर्वैदिकं तत् प्रसरतु भुवने ज्ञानविज्ञानदं नः॥१॥ (स्त्रग्धरा)

विद्वद्व्यूहविचारसारसहितं यत् प्राच्यविद्याऽऽश्रितम्
अज्ञानाऽन्धतमोनिवारणपरं सद्-बुद्धिशुद्धि-प्रदम्।
शोधोद्योगपरायणा बुधजना जानन्तु तद् दीपकम्
वाग्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्॥२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

—प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः

अनुक्रम

वैदिक वाक्	iii
सम्पादकीयम् (Editorial)	vii
त्रयी की उत्पत्ति का रहस्य और अथर्ववेद	

हिन्दी संभाग

1. मुद्रित आयुर्वेदिक निघण्टुओं में पाठशोधन की आवश्यकता	1
-स्वाति आर्या	
2. श्रुतिप्रमाण-स्वरूपमीमांसा	22
-रामचन्द्र मेघवाल	
3. वेदों में शिक्षा का स्वरूप	33
-डॉ. संदीप	
4. आत्महत्या की प्रवृत्ति के निवारण में योग की भूमिका	45
-देवेश कुमार	
-डॉ. रुधम सिंह	
5. प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में अंकित देवता विष्णु के वैदिक एवं पौराणिक स्वरूपों का विवेचनात्मक अध्ययन	56
-प्रो. प्रभात कुमार, गौरव सिंह	
6. उपसर्ग और निपातों का विश्लेषण निरुक्त और अव्ययार्थ के सन्दर्भ में	63
-सुमति	

संस्कृत-संभाग:

7. वेदार्थ-वीथिका	-प्रो. रामप्रकाश वर्णी	74
8. वेदेषु राष्ट्रियभावना		80
-डॉ. प्रकाश चन्द्र पन्तः		

9. धर्मशास्त्रीयव्यवहारपदविमर्शः 88
-अभिजित् देबशर्मा
10. उपनिषत्सु योगः 98
-डॉ. नरेन्द्रकुमारपाण्डेयः

English Section

11. **An Approach to Holistic-Health through Śrīmad Bhadavad Gītā** 104
-Sweta Malik
12. **Exploring the roots of Dance in the Vedic Period** 116
-Aishwarya Marathe
-Rekha Wagani
13. **Wisdom : A Yoga Perspective** 122
- Rajib Ghosh
- Dr. Roshan Lal Dewangan
14. **Role of Yoga in Cerebral Palsy Persons : An Overview** 136
Dr. Deendayal
Dr.Mukesh Kumar Pathak
Dr. Satyanand
15. **Relevance of Yoga in Management of Psychological Aspects of Skin Disorders** 142
Sampada Vijayvargiya and
Rakesh Kumar
16. **Relevance of Yoga in overcoming the Grief and Loss due to Death : A Conceptual Study** 159
Priyanka Joshi and
O.P. Singh
17. **Phytodiversity and Ethnopharmacologically Important Plants of Gurukul Kangri Haridwar, Uttarakhand, India** 168
Sandeep Kumar
Navneet
Sunil Kumar



सम्पादकीय

त्रयी की उत्पत्ति का रहस्य और अथर्ववेद

वेद चार हैं, किन्तु वेदों के लिए त्रयी अथवा त्रय शब्द का भी प्रयोग देखा जाता है। इससे सामान्य मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है कि वेद चार हैं अथवा तीन। वस्तुतः समस्त संस्कृतवाङ्मय तथा तत्प्रभावित साहित्य में, वेदों के चार होने की बात ही अधिकतया प्रचलित है। वेद चार हैं— यह व्यवहार ऋग्-यजुः-साम-अथर्व चारों वेदों में, तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी, पैप्पलाद, जैमिनीय आदि शाखाओं में तथा प्रायः सभी ब्राह्मण, श्रौत, गृह्य आदि शास्त्रांगों में मिलता है।¹ अर्थात् अब प्रश्न यह रह जाता है कि यदि वेद चार ही हैं, तो इसके लिए त्रयी अथवा त्रय शब्द का प्रयोग क्यों होता है? इसका समाधान इस प्रकार है—जब वेदत्रयी अथवा वेदत्रय का प्रयोग होता है तो उसका अभिप्राय वेद के विद्याभेद अथवा प्रकारभेद के कथन से है। वेद तीन प्रकार का होता है, अर्थात् वेद के मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं।

मन्त्रों के तीन प्रकार—

पूर्वमीमांसा में मन्त्रों के इस प्रकारत्रय का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था² अर्थात् जिन मन्त्रों की अर्थानुसार पादव्यवस्था है उन मन्त्रों को ऋक् कहते हैं। गीतिषु सामाख्या³— गानोपयोगी मन्त्रों को साम कहते हैं और जो इन दोनों प्रकार मन्त्रों से अवशिष्ट मन्त्र हैं उनको यजुः कहते हैं— शेषे यजुः शब्दः⁴। “अधिकरण माला”⁵ में भी इसी बात को इस प्रकार कहा गया है— पादबन्धेनार्थेन चोपेता वृत्तबद्धा मन्त्रा ऋचः अर्थात् अर्थों से युक्त पादव्यवस्था-समन्वित मन्त्र ऋक् कहलाते हैं। गीतिरूपा मन्त्राः सामानि अर्थात् गीतिमय मन्त्र साम कहाते हैं। और जो छन्दोव्यवस्था तथा गीतिमयता से रहित मन्त्र हैं वे यजुः कहलाते हैं— वृत्तगीतिवर्जित्वे प्रश्लिष्टपठिता मन्त्रा यजूषि।

1. कुसुमलता (डॉ.) पुरुषसूक्त का विवेचनात्मक अध्ययन, जयपुर: उच्चस्तरीय अध्ययन-अनुसंधान-संस्थान, प्रथम संस्करण, 1978, पृ. 260, टि. 05
2. पूर्वमीमांसा 2.1.35
3. पूर्वमीमांसा 2.1.36
4. पूर्वमीमांसा 2.1.37
5. अधिकरणमाला 2.1.5

पूर्वमीमांसा और अधिकरणमाला के इस प्रकारत्रय को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं- 1. पद्यबद्ध मन्त्र ऋक् हैं, 2. गीतिबद्ध मन्त्र साम हैं और 3. गद्यबद्ध मन्त्र यजुः हैं।

वेद के चार विभाग-

यह है वेद के लिए त्रयी अथवा वेदत्रय पदों के प्रयोग का कारण। चारों वेदों में इन तीनों प्रकारों के मन्त्र हैं। इसीलिए छन्दशास्त्र में वेद शब्द से चार संख्या का बोध होता है। वेदचतुष्टयत्व का कारण संहिताभेद-ग्रन्थविभाजन-विषयविभाग है-

(1) जब संहिताओं की अथवा ग्रन्थों की संख्या को दृष्टि में रखकर, व्यवहार अपेक्षित होता है तब वेदचतुष्टय अथवा चत्वारो वेदाः कहा जाता है, किं वा (2) जब वेदों के विषयविभाग को लक्ष्य करके व्यवहार किया जाता है, तब भी- चत्वारो वेदाः का प्रयोग होता है, क्योंकि वेदों के चार मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं- विज्ञान, कर्म, उपासना तथा ज्ञान। ऋग्वेद में विज्ञान का विषय है, यजुर्वेद कर्मकाण्ड से सम्बद्ध है, सामवेद उपासना का वेद है और अथर्ववेद ज्ञान का प्रतिपादक है। जब संहिताभेद, ग्रन्थभेद अथवा विषयविभाग की विवक्षा नहीं होती और केवल मन्त्र प्रकार की दृष्टि से वेद के विषय में कुछ कहना होता है, तब वेद को त्रयी अथवा वेदत्रयी आदि नामों से पुकारा जाता है।

अब दो ऐसे प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं जिनमें वेदत्रित्व और वेदचतुष्ट्व की बात साथ-साथ कही गई है। महाभारत के शान्तिपर्व में कहा है-

त्रयीं विद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तमथांगतः।

ऋक्सामवर्णाक्षरतो यजुषो अथर्वणस्तथा॥¹

षड्गुरुशिष्य नाम के एक प्राचीन आचार्य ऋक्सर्वानुक्रमणी की वृत्ति की भूमिका में लिखते हैं-

विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते।

ऋक् यजुस्सामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये॥

अर्थात् चारों वेदों में यज्ञादि से विनियोक्तव्य मन्त्र ऋग्, यजुः, सामरूप से तीन प्रकार के हैं। अतः फलितार्थ यह हुआ कि- जहां कहीं त्रयी आदि का प्रयोग हुआ है, वहां वह तीन प्रकार के मन्त्रों के अभिप्राय से हुआ है न कि वेदों के तीन होने के अभिप्राय से; किंच इस त्रित्व अथवा चतुष्ट्व के कारण वेदों की संख्या, इयत्ता, परिमाण और विषयवस्तु में किसी प्रकार का किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं आता।

1. म.भा., शान्ति पर्व 227.1 (पूना संस्करण)

अन्य दृष्टि से विचार-

त्रयी की उत्पत्ति- अब हम उक्त विषय पर अन्य दृष्टि से विचार करते हैं। गुण तीन हैं- सत्व, रजस्, तमस्। इन तीन गुणों के आधार पर ही सगुण ब्रह्म का वाचक वेद भी त्रयी कहलाता है। पहले इस आधार पर त्रयीविद्या पर विचार करते हैं।

रहस्यमयी भाषा में ब्राह्मणग्रन्थ कहते हैं कि ऋग्वेद अग्नि से, यजुर्वेद वायु से तथा सामवेद सूर्य से उत्पन्न हुआ- अग्नेऋग्वेदो, वायोऽयं यजुर्वेदः, सूर्यात्¹ सामवेदः (श.ब्रा.11/5/8/3) कोई सन्देह न रह जाए इसलिए शांख्यायनब्राह्मण² (6/10) फिर इसी बात को दोहराता है- सो अग्नेरेवर्चो असृजत, वायोऽयं यजुर्वेदः, आदित्यात्सामवेदः। क्योंकि यह वक्तव्य कुछ विचित्र था कि अग्नि से ऋक्, वायु से यजुष् और सूर्य से साम उत्पन्न हुआ, अतः सन्देह निवृत्ति के लिए मनु को इसे फिर दोहराना पड़ा-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृक् यजुःसामलक्षणम्॥³ मनु.12/18

त्रयी की उत्पत्ति का रहस्य-

अग्नि, वायु और आदित्य तीनों ही प्राण हैं-अग्निर्वै प्राणः⁴, प्राण उ वा वायुः⁵, असावादित्यः प्राणः⁶, उक्त तीनों मुख्य देव हैं- अग्निर्वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानां हृदययानि⁷ और तीनों ही प्राण हैं किन्तु वस्तुतः तो सारे देव प्राण हैं- देवः प्राण इति⁸ आज का विज्ञान कहता है कि यह सृष्टि परमाणुओं से नहीं अपितु क्वान्टम से बनी है। क्वान्टम ऊर्जा समूह (Packets of Energy) का नाम है। उधर मनु कहते हैं कि सारा संसार देवताओं से बना है- देवेभ्यश्च जगत्सर्वम्⁹ चाहे हम कहें कि देवों से सृष्टि बनी, चाहें कहें कि क्वान्टम से जगत् बना; एक वेदों की भाषा है, दूसरी आधुनिक विज्ञान की भाषा है।

1. श.ब्रा.11/5/8/3

2. 6/10

3. मनु.12/18

4. जै.उप. 4/11/11

5. श.ब्रा.8/4/1/8

6. तै.सं.5/2/5/4

7. श.ब्रा. 9/1/1/23

8. श.ब्रा. 7/5/1/21

9. मनुस्मृति 3.201

देव अनेक क्यों?

वेदों ने इस विषय को और स्पष्ट किया। यदि सभी देव प्राण हैं तो देव अनेक क्यों हैं? देव प्राण हैं किन्तु सभी देव एक जैसे प्राण नहीं। अग्नि पार्थिव प्राण है, वायु आन्तरिक्ष्य प्राण है तथा आदित्य दिव्य (द्यु-सम्बन्धी) प्राण हैं। प्रतिदिन के अग्निहोत्र¹ में हम कहते हैं- **भूर्गनये स्वाहा, भुवर्वायवे स्वाहा, स्वरादित्याय स्वाहा।** अभिप्राय यह है कि भू (पृथ्वी), भुवः (अन्तरिक्ष) एवं स्वः (द्युलोक) से क्रमशः अग्नि, वायु तथा आदित्य का सम्बन्ध है। अर्थात् प्राण विभक्त हैं और तीनों प्राणों का तीनों वेदों से (त्रयी से) सम्बन्ध है और इन तीन वेदों का तीन देवों से सम्बन्ध है तथा तीन वेदों का पृथक् पृथक् कार्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण² कहता है कि अग्नि से उत्पन्न होने वाले ऋक् से समस्त मूर्त पदार्थ उत्पन्न हुए, वायु से उत्पन्न यजुष् से सारी गति बनी तथा सारे तेज आदित्यजन्य सामरूप हैं-

**ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः, सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्व तेजः सामरूप्यं ह शश्वत्, सर्व हेदं ब्रह्मण हैव सृष्टम्॥**

त्रयी से सृष्टि की उत्पत्ति-

निष्कर्ष यह हुआ कि पार्थिव प्राण पदार्थ का मूर्त रूप बनाते हैं जिस रूप का हम स्पर्श कर सकते हैं, आन्तरिक्ष्य प्राण पदार्थ में गति पैदा करते हैं और दिव्य प्राण उसमें तेज भरते हैं। इस प्रकार त्रयी से संसार के समस्त पदार्थ निर्मित हैं। अतः वेद को ब्रह्म अर्थात् जगत् का मूल कारण मानना उचित ही है। इसलिए वेद ही वह ब्रह्म है जिससे समस्त जगत् उत्पन्न होता है। इस विषय को संक्षेप में निम्न तालिका द्वारा इस प्रकार निबद्ध किया जा सकता है-

त्रिलोकी	त्रिदेव	त्रयीवेद	जगत् के तीन घटक
भूः	अग्नि	ऋक्	मूर्त पदार्थ
भुवः	वायु	यजुष्	गतिमत्ता
स्वः	आदित्य	साम	तेज

जगत् के किसी भी पदार्थ के ये तीन घटक हैं- मूर्त अर्थात् स्पर्शयोग्य पदार्थ, उस पदार्थ में होने वाली गति तथा उस पदार्थ का तेज जिसके कारण वह पदार्थ दृश्य बनता है। इन्हीं तीन घटकों को संक्षेप में अर्थ, क्रिया और ज्ञान कहा जाता है।

-
1. मीमांसक, युधिष्ठिर(पं.). वैदिक- नित्यकर्म-विधिः, बहालगढः रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ, सोनीपत, हरियाणा, पंचम संस्करण, पृ. 90
 2. 3.2.8

अर्थ स्थूल है, क्रिया सूक्ष्म है और ज्ञान सूक्ष्मतम है। यह स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम का क्रम हमें तीन लोक, तीन देव तथा वेदों में भी दिखाई देता है। भूः, अग्नि और ऋक् स्थूल हैं; भुवः, वायु और यजुः सूक्ष्म हैं तथा स्वः, आदित्य और साम सूक्ष्मतम है। इन स्थूल, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतम को लौकिक भाषा में घन, तरल और विरल कहेंगे तथा वेद की भाषा में इन्हें ही क्रमशः ध्रुव, धरुण और धर्त्र कहा गया है-

ध्रुवमसि पृथिवी दृह-----धरुणमस्यन्तरिक्षं दृह----- धर्त्रमसि दिवं दृह¹। इस घन, तरल, विरल की त्रिपुटी में समस्त विश्व समाहित है- त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि² इसी त्रयी विद्या का विस्तार कर्मकाण्डी यज्ञ में करते हुए देखे जाते हैं।

संक्षेप में अभिप्राय यह है कि किसी तत्त्व को घन, तरल तथा विरल- इन तीन भागों में बांटा जा सकता है। यही एकता में अनेकता का रहस्य है। एक ही घनता, तरलता तथा विरलता के क्रम से अनेक हो जाता है- एकं वा इदं विबभूव सर्वम्³ (8.5.8.2) यह संकोच से विस्तार अथवा घनता से तरलता की यात्रा से सम्भव है।

त्रयी आग्नेय- अथर्ववेद सोम्य-

जाबालोपनिषद्⁴ (2.4) कहता है कि समस्त जगत् दो तत्त्वों से बना है- अग्नि और सोम- *अग्निषोमात्मकं जगत्।* वेद की भाषा में अग्नि अन्नाद है, सोम अन्न है- सोमो अन्नमग्निरन्नादः (काठकसंकलन 104) दर्शन की भाषा में अग्नि भोक्ता है, सोम भोग्य है। विज्ञान की भाषा में अग्नि उष्ण है, सोम शीत है। जो अधिदैव में अग्नि और सोम है, अध्यात्म में वही प्राण और अपान है तथा अधिभूत में वही विस्तार और संकोच है। ध्यातव्य यह है कि ऋक्, यजुष् और साम की त्रयी नाम से प्रसिद्ध त्रिपुटी अग्नि से जुड़ी है और अथर्ववेद सोम से जुड़ा है। *गोपथ ब्राह्मण*⁵ (पूर्वार्चिक 2.9) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि अथर्ववेद सोमात्मक है- *सोमात्मको ह्ययं वेदः।* रहा प्रश्न ऋक्, यजुष् और साम का, सो ऋक् का सम्बन्ध अग्नि से, यजुष् का वायु से और साम का सम्बन्ध आदित्य से है- सो अग्नेरेवर्चो असृजत, वायोर्यजूषि,

1. यजु. 1.17-18

2. श.ब्रा. 10.4.2.2

3. 8.5.8.2

4. 2.4

5. पूर्वार्चिक 2.9

आदित्यात्सामानि¹ (शांख्यायन ब्रा.6.10, अपि च शतपथ ब्रा.11.5.8.3)। यास्काचार्य कहते हैं कि वायु और आदित्य भी अग्नि के ही तरल और विरल रूप हैं-अप्येत उत्तरे ज्योतिषी अग्निरुच्येते² (नि.7.4) निष्कर्षतः ऋक्, यजुष् और साम की त्रयी आग्नेयी है और अथर्ववेद सोम्य है। इसीलिए जब भी जहां जहां त्रयी का उल्लेख होता है वहां ऋक्, यजुष तथा साम का ही नाम आता है, अथर्ववेद का नहीं। इसी को लेकर यह भ्रम फैल गया कि अथर्ववेद नया है, प्राचीन तो तीन वेद ही हैं।

अथर्ववेद ब्रह्मा का विशिष्ट वेद

वेदों का यज्ञ से अविनाभाव सम्बन्ध प्रसिद्ध है। श्रौतयज्ञ में पुरोहित वर्ग चार भागों में बंटा होता है- होता ऋग्वेदी है, अध्वर्यु यजुर्वेदी, उद्गाता सामवेदी तथा ब्रह्मा जो सर्वोपरि है, वह वस्तुतः चारों वेदों का ज्ञाता होता है किन्तु अथर्ववेद उसका अपना विशेष वेद है। पुराणों में अथर्ववेद का महत्त्व बारम्बार घोषित किया गया है। विष्णु पुराण कहता है- पौरोहित्यं शान्तिकपौष्टिकादि राज्ञामथर्ववेदेन कारयेद् ब्रह्मत्वं च। मार्कण्डेयपुराण का वचन है- अभिषिक्तोऽथर्वमन्त्रैर्महीं भुङ्क्ते ससागराम्। अथर्वपरिशिष्ट³ का कहना है, कि राजा को अथर्ववेदज्ञों का विशेष रूप से सम्मान करना चाहिए-

तस्माद्राजा विशेषेणाथर्वणं जितेन्द्रियम्।

दानसम्मानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत्॥ (परिशिष्ट 4/6)

हमने ऊपर लिखा है कि वेदविज्ञान की दृष्टि से त्रयी यदि आग्नेय है तो अथर्ववेद सोम्य है। यज्ञ के लिए जितना महत्त्व अग्नि का है उतना ही महत्त्व सोम का भी है। शरीर की वैश्वानर अग्नि में स्वाभाविक रूप से चलने वाले यज्ञ में यदि जठराग्नि मन्द हो जाए तो यज्ञ में विघ्न पड जाता है किन्तु यदि जठराग्नि को अन्नरूपी सोम न मिले तो भी यज्ञ नहीं चल पाता। अतः यदि यज्ञ में अग्नि और सोम दोनों आवश्यक हैं तो आग्नेय त्रयी के समान सोम्य अथर्ववेद भी उतना ही आवश्यक है। यदि हम किसी श्रौत यज्ञ में जायें तो पायेंगे कि त्रयी से सम्बद्ध होता, अध्वर्यु और उद्गाता तो अपने वेद का पाठ करते हैं किन्तु ब्रह्मा अथर्ववेद का पाठ करता हुआ नहीं मिलेगा। इसका भी कारण है। यज्ञ का संस्कार दो प्रकार से होता है- वाणी और मन से। त्रयी आग्नेय है और अग्नि वाणी है- वागेवाग्निः⁴ (श.ब्रा.

1. शांख्यायन ब्रा.6.10, अपि च शतपथ ब्रा.11.5.8.3

2. नि.7.4

3. परिशिष्ट 4/6

4. श.ब्रा.3.2.2.13

3.2.2.13) और अन्न अर्थात् सोम मन है- **अन्नमयं सौम्य मनः**¹ (छा.उ.6.5.1- 4) अतः आग्नेय वेदवाणी द्वारा यज्ञ कर संस्कार करते हैं और सोम्य वेद मन द्वारा यज्ञ का संस्कार करता है अतः ब्रह्मा यज्ञ में मन द्वारा यज्ञ का संस्कार करता है; यह वाणी का प्रयोग प्रायः नहीं करता- **वाचा च हि मनसा च यज्ञोऽवर्तत। तद् वाचा त्रय्या विद्यैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति। मनसैव ब्रह्मा संस्करोति**² (ऐ.ब्रा. 5.33) इन सब बातों पर शास्त्रीय विचार न करके कुछ तथाकथित विद्वानों ने यह प्रचार कर दिया कि यज्ञ में पहले त्रयी का ही प्रयोग होता था किन्तु बाद में अथर्ववेद का समावेश तो हो गया तथापि उसके उच्चारण का समावेश नहीं हो पाया।

अथर्ववेद प्रतिष्ठा

केवल पुरोहितों के प्रसंग में अथर्ववेद का उल्लेख हो ऐसा नहीं है। एक पुरुष के रूप में वेदों की कल्पना करते समय अथर्ववेद की प्रतिष्ठा बताया गया है। यजु सिर है, तो ऋक् दक्षिण पक्ष है एवं साम उत्तर पक्ष है, इन वेदों का आदेश ही वेद पुरुष की आत्मा है और अथर्ववेद उसकी प्रतिष्ठा है- **तस्य यजुरेव शिरः ऋग् दक्षिणः पक्षः, सामोत्तरः पक्षः आदेश आत्मा, अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा**³ (तै. उ., ब्रा.3)

वस्तुतः वेदविज्ञान इतना सुव्यवस्थित है कि जो वर्गीकरण एक जगह लागू होता है वही वर्गीकरण सर्वत्र लागू हो जाता है। ऐसे वाक्यों को अनुगम वाक्य कहा जाता है। उदाहरणतः ऊपर एक वाक्य आया है कि त्रयी में ही सारे भूत हैं- **त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि**⁴ (श.ब्रा.10.4.2.22) इस अनुगम वाक्य के आधार पर सर्वत्र त्रिक बनाए जा सकते हैं। अग्नि, वायु, आदित्य ये तीन ही देव हैं, भूः, भुवः, स्वः- तीन ही लोक हैं। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि- ये तीन ही अग्नियां हैं। प्राण, अपान और व्यान- ये तीन ही प्राण हैं... इत्यादि। इसी प्रकार एक दूसरा अनुगम वाक्य है- **चतुष्टयां वा इदं सर्वम्**। यह सब कुछ चतुष्क रूप है। चार ही आश्रम हैं, चार ही वर्ण हैं, चार ही पुरुषार्थ हैं, चार ही वेद हैं.. इत्यादि। इन्हीं अनुगम वाक्यों में तीन लोकों के साथ एक चौथा लोक आपो लोक- भी आता है- **अस्ति वै चतुर्थो लोकः, आपो लोकः**⁵ (कौषीतकिब्राह्मण 18.2) अथर्ववेद का सम्बन्ध

1. छा.उ. 6.5.1- 4

2. ऐ.ब्रा. 5.33

3. तै.उ., ब्रा. 3

4. श.ब्रा. 10.4.2.22

5. कौषीतकिब्राह्मण 18.2

(xiv)

इसी चतुर्थ लोक- आपोलोक से है- अथर्वणामापः स्थानम्¹ (गो.ब्रा.1.29) यह आप ही सोम है- आपः सोमः² (श.ब्रा.9.1.1.22)। अभिप्राय यह हुआ कि जब हम त्रिक के वर्गीकरण की बात करते हैं तो प्रसिद्ध त्रिलोकी से त्रयी को जोड़ते हैं- ऋचां पृथिवी स्थानम्, यजुषामन्तरिक्षः स्थानम्, साम्नां द्यौः स्थानम्। किन्तु जब हम चतुष्क के वर्गीकरण की बात करते हैं तो “अथर्वणामापः स्थानम्” भी कहते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि वैदिक चिन्तन का सारा ताना-बाना इतना सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक तथा परस्पर सुसम्बद्ध है कि उसके जानकार के मन में तो कभी यह बात स्वप्न में भी नहीं आ सकती कि अथर्ववेद शेष तीन वेदों से किसी प्रकार भी भिन्न किम्वा न्यून अथवा नवीन है। किन्तु कठिनाई यह है कि वैदिक साहित्य का इतिहास लिखने वाले अथर्ववेद पर सैकड़ों पृष्ठ लिख देंगे किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋक्, यजुष्, साम और अथर्ववेद तत्त्व पर जो विपुल प्रकाश डाला गया है, उस ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। उन्हें अथर्ववेद जादु-टोनों का ग्रन्थ दिखता है।

-प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री



1. गो.ब्रा.1.29

2. श.ब्रा.9.1.1.22

मुद्रित आयुर्वेदिक निघण्टुओं में पाठशोधन की आवश्यकता

स्वाति आर्या*

आयुर्वेद एक प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। इसमें अधिकांशतः चिकित्सा जड़ी-बूटियों पर आधारित है जिन्हें औषधि नाम से जाना जाता है। इन औषधियों के नाम व स्वरूप को जान लेने मात्र से ही चिकित्सा में उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। एतदर्थ उनके गुण-कर्म आदि का ज्ञान भी परमावश्यक है। औषध के नाम, रूप, गुण आदि का ज्ञान व उचित प्रयोग दोनों मिलकर ही चिकित्सा में सहायक हैं; अन्यथा वह औषध विष के समान प्राणघातक हो सकती है। अतः जहाँ चरक, सुश्रुत आदि संहिताओं में रोगनिवारण हेतु औषध के प्रयोग का वर्णन किया जाता है वहीं आयुर्वेदीय निघण्टु ग्रन्थों में इन औषधियों के भिन्न-भिन्न आधारों पर रखे गये नाम-पर्यायों व गुणकर्मों का वर्णन किया जाता है। किंतु वर्तमान में इन निघण्टुओं में बहुत-सी त्रुटियाँ प्रचलित हैं जिनसे औषध द्रव्यों की सही पहचान में सन्दिग्धता उत्पन्न हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप योगों में द्रव्यों का सही उपयोग नहीं हो पाता। अनुचित द्रव्यों के प्रयोग से चिकित्सा प्रभावहीन हो जाती है तथा बहुत बार इसके दुष्परिणाम भी देखे जा सकते हैं अतः निघण्टुओं में प्रचलित परम्परागत अधिकाधिक त्रुटिस्थलों की अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों एवं हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की सहायता से समीक्षा कर उनका संशोधन करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे त्रुटियों की इस शृंखला को कम किया जा सके। यहाँ पर निघण्टुओं में प्रचलित कुछ अपपाठों की समीक्षा को उदाहरणस्वरूप दर्शाया जा रहा है, जिसमें अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों, कोषग्रन्थों, व्याकरणशास्त्र, आधुनिक वानस्पतिक शास्त्र एवं ई-पुस्तकों के द्वारा तथ्यों की प्रामाणिक विवेचना की गई है-

1. आचार्य प्रियव्रत शर्मा द्वारा सम्पादित अष्टाङ्गनिघण्टु¹ में लज्जालु (*Mimosa pudica L.*) के पर्यायों में 'तथा पुष्पावरोधिका' पाठ मिलता है। लज्जालु में पुष्पों के द्वारा अथवा पुष्पों में अवरोध (रुकावट) नहीं देखा जाता अतः यह अपपाठ है। आचार्य बालकृष्ण द्वारा सम्पादित अष्टाङ्गनिघण्टु²(161) में इसके स्थान पर 'रुहा

* पतञ्जलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

स्पृक्कास्ररोधिका' पाठ है। इनका क्रमशः अर्थ है- रुहा=रोहति छिन्नापि पुनरुत्पद्यते (श.द्रु.-4.173)³ अर्थात् जो काटने पर भी पुनः उग जाती है [It is a chamaephyte (a woody plant whose resting buds are on or near the ground)]⁶¹। स्पृक्का-स्पृश्यते सौगन्ध्यात् (श.द्रु.-5.459)³ अर्थात् जो सुगन्धित होने से मनमोहक होती है। अस्त्रोधिका- अस्त्रं क्षतजमाशु रुणद्धि (वाच.-572)⁴ अर्थात् जो क्षत आदि से उत्पन्न रक्त को शीघ्र ही रोक देती है। ये तीनों ही गुण लज्जालु में देखे जाते हैं। चन्द्रनिघण्टु⁵ (प्रियंग्वादि-9) में रुहा-स्पृक्का-अस्त्रोधिका, राजनिघण्टु⁶ (पर्पटादि-105) में स्पृक्का-अस्त्रोधिनी तथा कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-1081) में रुहा आदि पर्याय मिलते हैं। इस प्रकार अर्थपूर्ण होने से 'तथा पुष्पावरोधिका' के स्थान पर 'रुहा स्पृक्कास्ररोधिका' पाठ होना चाहिए।

2. तारापाद चौधरी द्वारा सम्पादित पर्यायरत्नमाला¹⁰ में देवदारु [*Cedrus deodara* (Roxb. ex D.Don) G.Don] का पर्याय 'खुराह्व' दिया गया है। खुराह्व का अर्थ है- खुरस्य आह्वा यस्य अर्थात् जिसे खुर (शफ) के नामों से जाना जाए। देवदारु के लिए खुरवाचक पदों का प्रयोग नहीं होता अतः यह अपपाठ है। वस्तुतः यहाँ 'सुराह्व' पाठ होना चाहिए जैसा कि पर्यायरत्नमाला^{11,12} के अन्य दो संस्करणों में दिया गया है। सुराह्व का अर्थ है- सुरस्य आह्वा यस्य (श.द्रु.-5.383)³/सुरपूर्विका आह्वा यस्य सुरान् आह्वयति गन्धेन वा (वाच.-पृ.5318)⁴ अर्थात् जिसे सुर/देवता के नामों से जाना जाए अथवा जो अपनी सुगन्ध के कारण देवताओं का भी आह्वान करे। देवदारु नाम से भी स्पष्ट है कि इसके लिए सुर/देवता वाचक पदों का प्रयोग किया जाता है। मदनपालनिघण्टु¹³ (अभयादि-189), लघुनिघण्टु¹⁴ (55), पर्यायमुक्तावली¹⁵ (श्रेष्ठगन्ध-8) आदि में भी इसका 'सुराह्व' पर्याय पठित है अतः 'खुराह्व' पाठ त्याज्य एवं 'सुराह्व' पाठ ग्राह्य है।

3. इसी प्रकार तारापाद चौधरी द्वारा सम्पादित संस्करण¹⁰ में पटोल (*Trichosanthes dioica* Roxb.) का पर्याय 'कर्कटः' दिया गया है। कर्कट का अर्थ है- केकड़ा। गुण अथवा आकृति में केकड़े से इसकी समानता दृष्टिगोचर नहीं होती अतः यह अपपाठ है। पर्यायरत्नमाला^{11,12} के अन्य दो संस्करणों में इसके स्थान पर 'कर्कशः' पाठ है। कर्कशः का अर्थ है- खर/रूक्ष। इसके पत्र रूक्ष/खुरदुरे होते हैं अतः यह एक सार्थक संज्ञा है। कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-562), चन्द्रनिघण्टु⁵ (पटोलादिगण-1), निघण्टुशेष¹⁹ (360), राजनिघण्टु⁶ (गुडूच्यादि-22) आदि में इसका एक पर्याय कर्कशच्छदः [कर्कशः छदः पत्रमस्य (वाच.-पृ.1704)⁴] दिया गया है जो उपर्युक्त अभिप्राय को ही व्यक्त कर रहा है। अतः 'कर्कटः' के स्थान पर 'कर्कशः' पाठ होना चाहिए।

4. एन.एस.मॉस एवं पी.विशालाक्षी द्वारा पृथक्-पृथक् सम्पादित चन्द्रनिघण्टु^{16,17} में दन्ती [*Baliospermum solanifolium* (Burm-) Suresh] के लिए 'गुणप्रिया' पर्याय मिलता है जो किसी अर्थविशेष को नहीं दर्शा रहा। इसके स्थान पर आचार्य बालकृष्ण द्वारा सम्पादित चन्द्रनिघण्टु⁵ में घुणप्रिया पाठ है। घुणप्रिया का अर्थ है- घुणानां प्रिया अर्थात् घुण को प्रिया। 'घुण' लकड़ी को खाने वाला एक प्रकार का कीड़ा/wood worm है जिसे दन्ती अत्यन्त प्रिय होती है। लोक में भी हम देखते हैं कि दन्ती की काष्ठ में घुण बहुत अधिक लगती है। निघण्टुशेष¹⁹ (202), सौश्रुतनिघण्टु¹⁸ (196), भावप्रकाशनिघण्टु²⁰ (गुडूच्यादि-193), मदनपालनिघण्टु^{13,21} (अभयादि-107) में पठित घुणेशा, घुणप्रिया एवं घुणवल्लभा (घुणानां वल्लभा=प्रिया) पर्याय भी इसी आशय की पुष्टि करते हैं। अतः 'गुणप्रिया' के स्थान पर 'घुणप्रिया' पाठ होना चाहिए।

5. इसी प्रकार चन्द्रनिघण्टु^{16,17} के पूर्वोक्त दोनों संस्करणों में अर्क [*Calotropis procera* (Aiton) W.T.Aiton.] का पर्याय 'शुकच्छदः' पठित है जिसका अर्थ है- तोते के समान पत्रों वाला। अर्क के पत्र शुक के समान नहीं होते तथा अन्यत्र भी यह पर्याय उपलब्ध नहीं होता। आचार्य बालकृष्ण द्वारा सम्पादित चन्द्रनिघण्टु⁵ में इसके स्थान पर 'शुकफलः' पाठ है। शुकफलः का अर्थ है- शुक इव फलमस्य (श.द्रु.-5. 114) अर्थात् शुक के समान फलों वाला। अर्क के फल स्वरूप में शुक (तोते) के समान प्रतीत होते हैं। राजनिघण्टु⁶ (करवीरादि-27), सौश्रुतनिघण्टु¹⁸ (111) में भी इसका शुकफलः पर्याय पढ़ा गया है। कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-1532) में पठित कीरतनूफलः पाठ से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है क्योंकि कीरतनूफलः का अर्थ है- कीर (तोते) के तनु (शरीर) के समान फल वाला। इस प्रकार औचित्यानुरोध से यहाँ 'शुकच्छदः' के स्थान पर 'शुकफलः' पाठ होना चाहिए।

6. निघण्टुशेष¹⁹ में तिलक [*Wendlandia heynei* (Schult.) Santapau & Merchant] का पर्याय 'छन्नकुसुमः' दिया गया है जिसका अर्थ है- छन्नानि गुप्तानि कुसुमान्यस्य (नि.शे.टी.-पृ.7)¹⁹ अर्थात् छुपे हुए पुष्प हैं जिसके। तिलक पर बहुतायत में पुष्प लगते हैं जो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं अतः इसे छन्नकुसुम कहना उचित नहीं लगता। अन्य निघण्टुओं में भी तिलक का पर्याय छन्नकुसुम अथवा इसका समानार्थक पद नहीं उपलब्ध होता। कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-1506), भावप्रकाशनिघण्टु²⁰ (पुष्पादि-56), शालिग्रामनिघण्टु²² (पृ.-377), चन्द्रनिघण्टु⁵ (उत्तर-178) आदि में छिन्नपुष्पः पर्याय दिया गया है जिसका अर्थ है- छिन्नं पुष्पं यस्याः अर्थात् कटे हुए पुष्पों वाला। तिलक के पुष्प कटे-फटे होते हैं (Corolla deeply lobed)¹⁴⁸ अतः यह एक अन्वर्थ संज्ञा है। इस प्रकार 'छन्नकुसुमः' के स्थान पर 'छिन्नकुसुमः' (कुसुम पुष्प का

ही पर्याय है) पाठ होना चाहिए।

7. इसी प्रकार निघण्टुशेष¹⁹ में वन्दाक [*Dendrophthoe falcata* (L.f.) Ettingsh.] का पर्याय 'तटरुहा' पठित है। तटे रोहति (नि.शे.टी.-पृ.87)¹⁹ अर्थात् नदी आदि के तट पर उत्पन्न होने वाली। वन्दाक का आवास नदी आदि का तट न होने के कारण यह अपपाठ है। निघण्टुशेष(क) में इसके स्थान पर तरुरुहा पाठ है। तरौ रोहतीति (श.द्रु.-2.598)³ अर्थात् वृक्ष पर उगने वाली। वन्दाक वस्तुतः परजीवी पादप है जो दूसरे वृक्षों पर उत्पन्न होता है (*Dendrophthoe falcata* is one of the hemiparasitic plants that belong to the mistletoe family Loranthaceae)⁶²। सिद्धसारनिघण्टु²³ (45), धन्वन्तरिनिघण्टु²⁴ (करवीरादि-86), सोढलनिघण्टु²⁵ (नाम-536), राजनिघण्टु⁶ (पर्पटादि-68) में भी वन्दाक का पर्याय तरुरुहा दिया गया है। इसी प्रकार कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-854), पर्यायरत्नमाला¹² (209), मदनपालनिघण्टु¹³ (अभयादि-293), सौश्रुतनिघण्टु¹⁸ (86) आदि में भी वन्दाक के लिए वृक्षरुहा पर्याय उपलब्ध होता है। राजनिघण्टु⁶ (पर्पटादि-68-69) में पठित पादपरुहा, तरुरुट्, तरुरोहिणी, वृक्षरुहा, तरुस्था आदि पर्याय भी इसी अर्थ का बोध करा रहे हैं अतः 'तटरुहा' के स्थान पर 'तरुरुहा' पर्याय होना चाहिए।

8. सोढलनिघण्टु के दोनों संस्करणों^{25,26} में शतावरी [*Asparagus racemosus* Willd.] को 'अधरकन्दकी' कहा गया है। अधर पद अधः (निचला) एवं हीन अर्थों में प्रयुक्त होता है अतः अधरकन्दकी का अर्थ होगा- नीचे की ओर कन्द वाली/हीन कन्द वाली। प्रथम तो शतावरी में कन्द नहीं होता तथापि यदि मूल के लिए ही कन्द पद माना जाए तो भी अधरकन्दकी पाठ युक्त नहीं है क्योंकि- (1) सभी मूल नीचे की ओर ही होती हैं अतः इससे किसी विशेष अभिप्राय का बोध नहीं हो रहा तथा (2) शतावरी के भरपूर औषधीय गुणों को ध्यान में रखते हुए इसे हीन नहीं कहा जा सकता। मदनपालनिघण्टु¹³ (अभयादि-173), महौषधनिघण्टु²⁷ (बिल्वादि-39) में शतावरी को अधरकण्टकी कहा गया है क्योंकि शतावरी के काँटे नीचे की ओर मुख किए हुए होते हैं (Spines longer, decurved)⁶³ अतः अर्थपूर्ण एवं अन्यत्रसंवादी होने से यहाँ 'अधरकन्दकी' के स्थान पर 'अधरकण्टकी' पाठ होना चाहिए।

9. इसी प्रकार सोढलनिघण्टु^{25,26} के पूर्वोक्त संस्करणों में महामेदा [*Polygonatum cirrhifolium* (Wall.) Royle] को 'मोदोद्भवा' कहा गया है अन्यत्र यह पर्याय उपलब्ध नहीं होता तथा इससे उचित अभिप्राय का बोध भी नहीं हो रहा। महामेदा मेदा का एक प्रकार है तथा मेदा से मेदोधातु के समान द्रव स्रवित होता है। चन्द्रनिघण्टु⁵ (8. 5) में मेदसमुद्भूता, कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-86) में मेदोभवा तथा अभिधानरत्नमाला²⁸ (स्वादु-17) में पठित मेदःसमुद्भवा पाठ से भी इसी आशय का बोध हो रहा है।

राजनिघण्टुकार ने मेदा का लक्षण करते हुए लिखा है- मेदापि शुक्लकन्दः स्यान्मेदोधातुमिव स्रवेत् [राजनिघण्टु⁶(पर्पटादि-26)] अर्थात् मेदा से मेदोधातु (वसा) के समान स्राव होता है। अतः यहाँ 'मोदोद्भवा' के स्थान पर 'मेदोद्भवा' पाठ उचित प्रतीत होता है।

10. आचार्य बालकृष्ण द्वारा सम्पादित अभिधानरत्नमाला²⁸ में कदली [*Musa x paradisiaca* L.] के वर्णन में 'कदलीभविषाणिका' पाठ मिलता है जिसका विच्छेद होगा- कदली+इभविषाणिका। यहाँ इभ शब्द (हस्ती) हाथी के लिए तथा विषाणी शब्द दन्त के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा अन्त में इवार्थ (सारूप्य) में कन्-प्रत्यय किया गया है जो कदली की आकृति को गजदन्त (हाथीदाँत) के समान दर्शाता है। अभिधानमंजरी³⁰ (285), राजनिघण्टु⁶ (आम्रादि-36), कैय्यदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-180) में पठित हस्तिविषाणी/हस्तिविषाणिका पर्याय से भी इसकी पुष्टि होती है। इसके विपरीत आचार्य प्रियव्रत शर्मा द्वारा सम्पादित अभिधानरत्नमाला²⁹ में उपलब्ध पद ह्यविषाणिका का विच्छेद (हि+विषाणिका) करने पर अर्थ होगा- विषाणी के अभाव वाला अर्थात् जिसमें दन्त (गजदन्त/गजदन्ताकृति) का अभाव है। किन्तु कदली में गजदन्ताकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अतः प्रत्यक्षविरुद्ध होने से पूर्ववर्ती पाठ ग्राह्य है।

11. आचार्य प्रियव्रत शर्मा द्वारा सम्पादित अभिधानरत्नमाला²⁹ में लाक्षा (*Laccifer lacca*) के लिए रक्ताफल, कषारङ्ग एवं मातङ्ग पर्याय प्रयुक्त हुए हैं जिनका क्रमशः अर्थ है- लाल फल, चाबुकसदृश वर्ण एवं हाथी। यदि इन पदों की सार्थकता पर विचार किया जाए तो लाक्षा एक प्रकार का निर्यास है अतः उसके लिए फल शब्द का प्रयोग उचित नहीं है। इसी प्रकार चाबुक का कोई निश्चित वर्ण नहीं होता जिससे उपमा दी जाए तथा हाथी से भी लाक्षा का कोई सम्बन्ध नहीं देखा जाता। इस प्रकार ये तीनों ही पर्याय अनुचित प्रतीत होते हैं। अब यदि इसके अन्य संस्करण²⁸ में उपलब्ध पाठ पर ध्यान दिया जाए तो इसमें शब्दों में विशेष अन्तर नहीं है किन्तु पदविच्छेद में भिन्नता है जिससे शब्दस्वरूप अत्यन्त भिन्न हो गया है। प्रथम पद रक्ता, द्वितीय पद में 'फ' के स्थान पर 'प' पाठ होकर पलङ्कषा एवं तृतीय पद रङ्गमाता- ये तीनों ही पर्याय सार्थक हैं तथा बहुत से निघण्टुओं में अनेक बार प्रयुक्त भी हुए हैं। रक्तामदनपालनिघण्टु¹³ (कर्पूरादि-67), लोहिता-अष्टाङ्गनिघण्टु² (297), पलङ्कषा-सरस्वतीनिघण्टु³¹ (चन्दनादि-70), मदनपालनिघण्टु¹³ (कर्पूरादि-67), राजनिघण्टु⁶ (पिप्पल्यादि-203), रङ्गमाताराजनिघण्टु⁶ (पिप्पल्यादि-203) इस प्रकार 'रक्ताफलं कषारङ्गो मातङ्गो' के स्थान पर 'रक्ता पलङ्कषा रङ्गमाता' पाठ होना चाहिए।

12. अभिधानमञ्जरी के दोनों संस्करणों^{30,31} में त्रपुस (*Cucumis sativus* L.) का पर्याय 'गलपर्णी' पठित है। गल पद कण्ठ/गले का वाचक है (मे.को.लान्त-13)³³।

कण्ठ के समान पर्ण की उपमा उचित प्रतीत नहीं होती। सोढलनिघण्टु²⁵ (नाम-215), धन्वन्तरिनिघण्टु²⁴ (गुडूच्यादि-175), कैय्यदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-547), मदनपालनिघण्टु¹³ (शाक-13) आदि में इसे हस्तिपर्णी/हस्तिपर्णिनी कहा गया है जिसका अर्थ है-हस्तिनः कर्ण इव पर्णमस्याः (श.द्रु.-5.528)³ अर्थात् इसके पत्र हाथी के कान के समान होते हैं (Leaves broadly ovate-cordate, membranous)⁶⁴। यह पर्याय इसके पत्रों के दीर्घ आकार को दर्शा रहा है। धन्वन्तरिनिघण्टु¹⁷ (गुडूच्यादि-175) में उपलब्ध दीर्घपर्णी पाठ से भी इस अर्थ की पुष्टि हो रही है। इस प्रकार यहाँ 'गलपर्णी' के स्थान पर 'गजपर्णी' पाठ होना चाहिए क्योंकि गज हस्ति (हाथी) का ही वाचक है।

13. अभिधानमंजरी के पूर्वोक्त दोनों संस्करणों में कास (*Saccharum spontaneum* L.) के पर्याय श्वेतपामरकः, सितपामरपुष्पाह्वः दिए गए हैं। पामर पद नीच/खल के लिए प्रयुक्त होता है अतः श्वेतपामरकः का अर्थ होगा- सफेद नीच। इस प्रकार यह अर्थपूर्ण न होने से अपपाठ है। धन्वन्तरिनिघण्टु²⁴ (करवीरादि-114), चन्द्रनिघण्टु⁵ (20.7), सौश्रुतनिघण्टु¹⁸ (90) आदि में कास के लिए श्वेतचामरपुष्पः, पर्यायरत्नमाला¹² (231) में चामरपुष्पकः, कैय्यदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-1237) में श्वेतचामरः तथा राजनिघण्टु⁶ (शाल्मल्यादि-87) में सितपुष्पकः आदि पर्याय पढ़े गए हैं। वस्तुतः कास के पुष्प सफेद वर्ण के होते हैं तथा स्वरूप में चामर के समान दिखाई देते हैं। इस प्रकार यहाँ 'श्वेतपामरकः' एवं 'सितपामरपुष्पाह्वः' के स्थान पर क्रमशः 'श्वेतचामरकः' एवं 'सितचामरपुष्पाह्वः' पाठ होना चाहिए।

14. मदनपालनिघण्टु के विभिन्न संस्करणों^{13,34,35,36,37,38} में महामेदा (*Polygonatum cirrhifolium* (Wall.) Royle) के लिए 'त्रिदन्ता' पर्याय मिलता है। महामेदा में दन्ताकृति तो होती है, लेकिन त्रि (तीन की संख्या) से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है अतः यह अपपाठ है। इसी प्रकार मदनपालनिघण्टु³⁹ में उपलब्ध 'तृदन्ता' पाठ भी उचित नहीं है। मदनपालनिघण्टु⁴⁰ में 'नृदन्ती' एवं मदनपालनिघण्टु (मातृका-ग) में 'नृदन्ता' पाठ मिलता है। 'नृ' पद पुरुष का पर्याय है (अ.को.-2.6.1)⁴¹। अतः नृदन्ता का अर्थ है- नरः= नरस्य दन्त इव आकृतिर्यत्र अर्थात् जिसमें मनुष्य के दाँतों के समान आकृति पायी जाती है। महामेदा के कन्द में मनुष्यों के दन्त के समान आकृति दिखाई देती है (Rhizome moniliform or tuberous terete)⁶⁵। सोढलनिघण्टु²⁵ (नाम-184) में मेदा के लिए पुरुषदन्ता पर्याय आया है जो नृदन्ता का ही समानार्थक है। इसी प्रकार अष्टाङ्गनिघण्टु² (47), अभिधानरत्नमाला²⁸ (1.18), चन्द्रनिघण्टु⁵ (जीवनीय-6), कैय्यदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-84) में महामेदा के लिए महापुरुषदन्ता/महापुरुषदन्तिका पर्याय मिलता है। वस्तुतः 'त्रिदन्ता' एवं 'तृदन्ता' ये

दोनों ही पद 'नृदन्ता' के ही विकृत रूप हैं। अतः मदनपालनिघण्टु में पठित उपर्युक्त सभी पाठों के स्थान पर 'नृदन्ता' पाठ होना चाहिए।

15. राजनिघण्टु के दो संस्करणों^{7,42} में श्वेतखदिर [*Senegalia polyacantha* (Willd.) Seigler & Ebinger] को 'कुब्जकण्टकः' कहा गया है। कुब्ज पद हाथीदांत, हनु एवं लताच्छादित प्रदेश के लिए प्रयुक्त होता है। ये अर्थ खदिर में घटित नहीं होते। राजनिघण्टु के अन्य संस्करणों^{6,43,44,45} एवं राजनिघण्टु (मातृका-ख,ग,छ) में इसके स्थान पर 'कुब्जकण्टकः' पाठ है जिसका अर्थ है- कुब्जः कण्टकोऽस्य (वाच.-पृ.2105)⁴/कुब्जः कण्टकोऽत्र (श.द्रु.-2.144)³/कुब्जाः कण्टका अस्य (नि. शे.टी.-पृ.37)¹⁹। खदिर के काँटे वक्र होते हैं (Prickles in pairs just below each node, straw-coloured to brown or blackish, 4-12 mm. long)⁶⁶ अतः यह अन्वर्थसंज्ञा है। मदनपालनिघण्टु¹³ (वटादि-30), चन्द्रनिघण्टु⁵ (असनादि-11), निघण्टुशेष¹⁹ (65) में भी खदिर का पर्याय कुब्जकण्टकः पठित है। इस प्रकार अर्थपूर्ण होने से 'कुब्जकण्टकः' के स्थान पर 'कुब्जकण्टकः' पाठ होना चाहिए।

16. राजनिघण्टु^{7,42,44,45} के बहुत-से संस्करणों में अङ्गोल [*Alangium salviifolium* (L.f.) Wang.] के पर्यायों में 'कोलः कोलम्बकर्णः' पाठ है। अन्यत्र अङ्गोल के ये पर्याय उपलब्ध नहीं होते। राजनिघण्टु^{6,43} में इसके स्थान पर 'कोलको लम्बकर्णः' पाठ है। लघुनिघण्टु¹⁴ (231), सरस्वतीनिघण्टु³² (महावृक्ष-40) एवं अभिधानरत्नमाला²⁸ (कटु-53) में इसे कोलकः तथा सोढलनिघण्टु²⁵ (नाम-261), लघुनिघण्टु¹⁴ (232) में लम्बकर्णः कहा गया है। कोलकः का अर्थ है- कीलति कामपि बाधां न मत्वैव रोगान् प्रतिधावति (श.द्रु.-2.203)³ अर्थात् जो बिना रुकावट के रोगों को दूर करता है तथा लम्बकर्णः का अर्थ है- लम्बौ कर्णौ यस्य (श.द्रु.-2.206)³/लम्बकर्णवत् पत्राण्यस्य (नाम.-पृ.7)⁴⁶ अर्थात् लम्बकर्ण (बकरी) के कान के समान लम्बे पत्र हैं जिसके। इसके पत्र बकरी के कान के समान दिखते हैं। उपर्युक्त दोनों ही अर्थ अङ्गोल में घटित होते हैं। वस्तुतः यहाँ अन्वय ठीक न होने से यह दोष आया है। अतः अर्थपूर्ण होने से 'कोलः कोलम्बकर्णः' के स्थान पर 'कोलको लम्बकर्णः' पाठ होना चाहिए।

17. आचार्य प्रियव्रत शर्मा द्वारा सम्पादित कैयदेवनिघण्टु⁹ में श्योनाक [*Oroxylum indicum* (L.) Kurz] का पर्याय 'शुकनाशकः' पठित है जिसका अर्थ है- तोतों का नाश करने वाला। श्योनाक विषाक्त नहीं होता अतः इसे शुकनाशक कहना उचित नहीं है। सुरेन्द्र मोहन द्वारा सम्पादित कैयदेवनिघण्टु⁸ में इसके स्थान पर 'शुकनासिकः' पाठ है जिसका अर्थ है- तोते के समान नासिका/चोंच वाला। श्योनाक की कलियाँ तोते की चोंच के समान होती हैं अतः यह अन्वर्थसंज्ञा है। धन्वन्तरिनिघण्टु²⁴

(गुडूच्यादि-114), मदनपालनिघण्टु¹³ (अभयादि-53), सरस्वतीनिघण्टु³² (महावृक्ष-11), भावप्रकाशनिघण्टु²⁰ (गुडूच्यादि-25), राजनिघण्टु⁶ (प्रभद्रादि-26), शालिग्रामनिघण्टु²² (पृ.203), सोढलनिघण्टु²⁵ (नाम-173), निघण्टुशेष¹⁹ (85) आदि में भी इसे शुकनासः कहा गया है। अतः यहाँ पर 'शुकनाशकः' के स्थान पर 'शुकनासिकः' पाठ होना चाहिए।

18. गिरिजा शंकर शास्त्री द्वारा सम्पादित भावप्रकाशनिघण्टु⁴⁷ एवं दत्तराम चौबे द्वारा सम्पादित अभिनवनिघण्टु⁵³ (पृ.62) में मेथिका [*Melilotus indicus* (L.) All.] के पर्यायों में 'पित्तजिह्वायुनुद् द्विधा' पाठ है जिसका अर्थ है कि मेथी पित्तनाशक तथा वातनाशक होती है। मेथी उष्णगुणयुक्त होती है अतः उसे पित्तनाशक कहना उचित नहीं है, साथ ही श्लोक के अग्रिम चरण में वातशमनी पाठ है अतः यहाँ वायुनुद् पाठ मानने से पुनरावृत्ति दोष होने से यह अपपाठ है। भावप्रकाशनिघण्टु^{47, 48, 49, 50, 51, 52} में इसके स्थान पर 'पीतबीजा मुनिच्छदा' पाठ है। पीतवर्णी बीज होने से पीतबीजा नाम निरापद है किन्तु मुनिच्छदा पाठ विचारणीय है। भावप्रकाशनिघण्टु⁵² में मुनिच्छदा का अर्थ इस प्रकार दिया गया है- मुनिवृक्षस्य छदा इव पर्णान्यस्याः अर्थात् इसके पत्र मुनिवृक्ष (अगस्त्य) के पत्र के समान होते हैं। अगस्त्य के पत्र आकार में मेथी के पत्र से पूर्णतः भिन्न होते हैं अतः यह पाठ उचित नहीं है। यदि यहाँ मुनि को सप्त (7) संख्या का वाचक मानकर '7 पत्रों वाली' ऐसा अर्थ किया जाए तो भी यह लक्षण मेथिका में नहीं घटता अतः सर्वथा यह अपपाठ है। राजनिघण्टु⁶ (पिप्पल्यादि-67-68) में यह श्लोक यथावत् उपलब्ध होता है। वहाँ पर 'मुनिच्छदा' के स्थान पर 'मुनीन्दुधा' (मुनि इन्दुधा) पाठ है। मुनीन्दु पद यहाँ '17' संख्या का वाचक है। वस्तुतः राजनिघण्टुकार की यह शैली है कि वह पर्यायों का कथन कर अन्त में उनकी निश्चित संख्या का निर्देश करते हैं (राजनिघण्टु-गुडूच्यादि-9)⁶। यहाँ पर मेथी के 17 पर्याय ही गिनाए गए हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि यहाँ 'मुनिच्छदा' के स्थान पर 'मुनीन्दुधा' पाठ होना चाहिए।

19. डॉ. नरेन्द्र प्रसाद होता द्वारा सम्पादित पर्यायमुक्तावली⁵⁴ में कृष्णमरिच [*Piper nigrum* L.] को 'धर्मपत्तनम्' कहा गया है जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। पर्यायमुक्तावली के अन्य संस्करणों^{15, 55, 56} में इसके स्थान पर 'धर्मपत्तनम्' पाठ है। केरल में कन्नूर जिले के अन्तर्गत धर्मधाम एक धार्मिक नगर है जिसे पहले धर्मपत्तनम् के नाम से जाना जाता था। यह एक द्वीप है जो तीन ओर से अज्जराकन्दी नदी एवं एक ओर से अरब महासागर से घिरा हुआ है। यहाँ पर कृष्णमरिच का उत्पादन भारी मात्रा में होता है (Black pepper is cultivated to a large extent in Kerala)⁶⁷। इस स्थल के नाम (धर्मपत्तनम्) के आधार पर कृष्णमरिच की 'धर्मपत्तनम्' संज्ञा प्रसिद्ध

हो गई। धन्वन्तरिनिघण्टु²⁴ (शतपुष्पादि-85), पर्यायरत्नमाला¹² (111), भावप्रकाशनिघण्टु²⁰ (हरीतक्यादि-59), निघण्टुशेष¹⁹ (303) में भी कृष्णमरिच को धर्मपत्तनम् कहा गया है जिसे अमरकोश टीकाकार ने इस प्रकार स्पष्ट किया है- धर्मपत्तने जातम् तत्र जातः इत्यण् संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्धिः (अ.को.टी.-पृ.515)⁴¹ अर्थात् धर्मपत्तनम् स्थानविशेष पर उत्पन्न होने के कारण यहां जात अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है किन्तु संज्ञावाचक होने से यहां णित् प्रत्यय होने पर भी आदि अकार को वृद्धि नहीं होगी। निघण्टुशेष में दीर्घ अकारयुक्त 'धर्मपत्तनम्' पाठ ही माना गया है। धर्मपत्तने भवं धर्मपत्तनम्। (सिद्ध. 6. 3.123) इत्यण्। इस प्रकार अर्थपूर्ण होने से धर्मपत्तनम्/धर्मपत्तनम् पाठ ग्राह्य है किन्तु उचित अभिप्राय का बोधक न होने से धर्मपत्तनम् पाठ त्याज्य है। निघण्टुशेषटीका एवं क्षीरस्वामी टीका में उद्धृत धन्वन्तरिनिघण्टु में भी धर्मपत्तनम् पाठ ही है।

20. ए.एस.प्राञ्जपे द्वारा सम्पादित लघुनिघण्टु⁵⁷ में अतिविषा [*Aconitum heterophyllum* Wall. ex Royle] के पर्यायों में 'अरण्यमध्यदेशोत्था' पाठ है। इसका अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। यह सम्पूर्ण श्लोक सोढलनिघण्टु²⁵ (नाम-99) में भी यथावत् उपलब्ध होता है। वहाँ पर अरुणा मध्यदेशोत्था पाठ है। वस्तुतः यहाँ श्याम एवं अरुण भेद से दो प्रकार की अतिविषा वर्णित है जिसमें से अरुणभेद हिमालयी क्षेत्र के मध्य भाग में बहुलतया उत्पन्न होता है (It found in Indian Central Himalaya)⁶⁸। इस प्रकार उचित अर्थ का बोधक होने से यहाँ पश्चवर्ती पाठ ग्राह्य है।

21. शालिग्रामनिघण्टु²² (गुडूच्यादिवर्ग- पृ.275) में मुञ्ज [*Tripidium bengalense* (Retz.) H.Scholz] का पर्याय 'चक्षुवेष्टनः' पठित है। चक्षुवेष्टन का अर्थ है- आँखों को लपेटने वाला। इस प्रकार अर्थपूर्ण न होने से यह अपपाठ है। भावप्रकाशनिघण्टु^{20,52} (गुडूच्यादि-153) में मुञ्ज से सम्बन्धित यह श्लोक यथावत् मिलता है। वहाँ पर चक्षुवेष्टनः के स्थान पर चेक्षुवेष्टनः पाठ है। यहाँ हमें दो पदों की प्राप्ति होती है- च+इक्षुवेष्टनः। च अव्ययपद है तथा इक्षुवेष्टन का अर्थ है- इक्षोरिव वेष्टनमस्य अर्थात् इक्षु (गन्ने) के समान वेष्टित। मुञ्ज में पत्र आदि का लगने का क्रम तथा इसकी लम्बाई इक्षु के समान होती है अतः यह अन्वर्थसंज्ञा है। इस प्रकार 'चक्षुवेष्टनः' के स्थान पर 'चेक्षुवेष्टनः' पाठ होना चाहिए।

22. महौषधनिघण्टु में विडङ्ग [*Embelia ribes* Burm. f.] को 'कैशलम्' कहा गया है इसका अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। धन्वन्तरिनिघण्टु²⁴ (शताह्वादि-11) में इसे कैरली, पर्यायरत्नमाला¹² (67), कैयदेवनिघण्टु⁹ (औषधि-1147) में कैरलम् तथा चन्द्रनिघण्टु⁵ में कैरालम् कहा गया है। श.द्रु.³ (2.199) में कैराल पद को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है- किरं पर्यन्तभूमिं अलति पर्याप्नोति। इस प्रकार अर्थपूर्ण एवं अन्यत्रसंवादी होने से यहाँ 'कैशलम्' के स्थान पर 'कैरालम्' पाठ होना चाहिए।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि मुद्रित निघण्टुओं में मूलपाठ से सम्बन्धित दोषों का पर्याप्त बाहुल्य है। यहाँ पर उदाहरणरूप में कुछ को ही दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक विद्वानों के द्वारा इन निघण्टुओं की व्याख्या का जो कार्य किया गया है उसमें भी बहुत-से स्थलों पर मूलपाठ में निहित अर्थ का अनर्थ हो गया है, जोकि संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव के कारण हुआ है। उनमें से कुछ निदर्शनरूप में आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं-

1. खराद्यो वडवायान्तु जातस्सोश्वतरः स्मृतः।

वाडवः केसरी धीरैः प्रकृतिज्ञश्च कथ्यते॥ (अ.मं.-563)

अभिधानरत्नमाला के सम्पादक डॉ. एम.एस. कृष्णमूर्ति ने उपर्युद्ध श्लोक का अर्थ करते हुए खर से लेकर प्रकृतिज्ञ तक सभी को खर (गधे) का पर्याय माना है जबकि श्लोक का अभिप्राय इससे भिन्न है। वस्तुतः अश्व शब्द से तनुत्व अर्थ में 'वत्सोक्षाश्ववर्षभेभ्यश्च तनुत्वे' इस पाणिनीय सूत्र से ष्रच्-प्रत्यय करने पर अश्वतर पद निष्पन्न होता है जिसकी काशिकाकार ने इस प्रकार व्याख्या की है- अश्वेनाशवायामुत्पन्नोऽश्वः, तस्य तनुत्वमन्यपितृकता अर्थात् घोड़े से घोड़ी में उत्पन्न अश्व है, उसका तनुत्व (न्यूनता) है- अन्यपितृक होना। अन्यपितृक को न्यासकार (भाग-6 पृ.-210) ने स्पष्ट करते हुए लिखा है- अन्यपितृकतेति गर्दभपितृकतेत्यर्थः। तर्हि गर्दभादशवायामुत्पन्नोऽश्वतर इत्युच्यते अर्थात् गधे से घोड़ी में उत्पन्न अश्वतर (खच्चर) कहलाता है। अभिधानचिन्तामणि में भी अश्वतर पद दिया गया है- वेसरोऽश्वतरो वेगसरश्च (अश्वेन अशवायां जातोऽश्वः स गर्दभपितृकतया संजात-हासोऽश्वतरः- अभि.चि.-पृ.504)⁵⁸। इस प्रकार श्लोक का सही अर्थ है- खर (गधे) से वडवा (घोड़ी) में उत्पन्न सन्तान को अश्वतर कहते हैं तथा विद्वान् इसका (अश्वतर का) वाडव, केसरी एवं प्रकृतिज्ञ नामों के द्वारा भी कथन करते हैं।

2. क्षारामृदूषो देशस्तु तद्वानीरणमूषरम्।

खिलमप्रहतं प्राहुर्धन्वा तु मरुरुच्यते। (रा.नि.-2.5)

इन्द्रदेव त्रिपाठी ने इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया है- 'क्षारीय मृत्तिका वाली भूमि को ऊषरभूमि कहते हैं। उसके नाम वानिरण, ऊषर, खिल तथा अप्रशस्त हैं। धन्वा तथा मरु ये दोनों मरु भूमि के नाम हैं।'

यहाँ त्रिपाठी ने क्षारीय मृत्तिका वाली भूमि के लिए वानिरण, ऊषर, खिल तथा अप्रशस्त पर्याय दिए हैं। इनमें से मात्र ऊषर पद ही है जो कोषग्रन्थों में क्षारीय मिट्टी वाली भूमि के लिए प्रयुक्त होता है। वस्तुतः यहाँ श्लोक में 'क्षारा मृदूषो' के स्थान पर 'क्षारा मृदूषो' पाठ होना चाहिए जैसा कि आचार्य बालकृष्ण द्वारा सम्पादित संस्करण एवं रा.नि. (मातृका-च,छ) में दिया गया है। इसके बाद 'वानिरण' विच्छेद

न करके 'तद्वान् ईरण' ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसका अर्थ होगा कि क्षारीय मिट्टी ऊष कहलाती है तथा तद्वान् अर्थात् क्षारीय मिट्टी से युक्त क्षेत्र को ईरण व ऊषर कहते हैं। मतुबर्थ में विहित पाणिनीय सूत्र 'ऊषसुषिमुष्कमधो रः' से भी इस पाठ की पुष्टि होती है। ऊषः=क्षारमृत्तिकाविशेषोऽस्यास्तीति ऊषरं क्षेत्रम्। अमरकोष में भी स्यादूषः क्षारमृत्तिका एवं ऊषवान् ऊषरो (अ.को.-2.1.4)⁴¹ कहकर इस अन्तर को स्पष्ट किया गया है। अभिधानचिन्तामणि के पाठ से भी यही अभिप्राय प्रकट होता है- ईरणं पुनरूषरम्, मृन्मृत्तिका सा क्षारोषः (अभि.चि.भूमि-6)⁵⁸। इसके अतिरिक्त त्रिपाठी ने जो खिल एवं अप्रहत को ऊषर भूमि का पर्याय माना है वह भी सही नहीं है क्योंकि ये दोनों पर्याय हलादि से न जोती गई भूमि के लिए प्रयुक्त होते हैं तद्यथा- द्वे खिलाप्रहते समे (अ.को.-2.1.5)⁴¹ क्षेत्राद्यप्रहतं खिलम् [(न प्रहण्यते स्म अप्रहतं हलादिभिरकृष्टं क्षेत्रं केदारादि- (अभि.चि.-पृ.376)⁵⁸]। श्लोक का सही अर्थ इस प्रकार है- क्षारामृत् तथा ऊष- ये क्षारभूमि के नाम हैं। ईरण तथा ऊषर- ये क्षारभूमि से युक्त देश (क्षेत्र) के नाम हैं। खिल तथा अप्रहत-ये अप्रहत (बिना जोती हुई भूमि) के नाम हैं। मरु तथा धन्वा-ये मरुभूमि के नाम हैं।

3. नद्यम्बुजैर्भृतो धान्यैर्नदीमातृक उच्यते।

वृष्ट्याम्बुजैस्तु तैरेष देशः स्यादेवमातृकः। (राजनिघण्टु-2.9)

इन्द्रदेव त्रिपाठी द्वारा एक अन्य श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है- नदी, कमल तथा धान्य आदि से भरपूर भूमि को नदीमातृक भूमि और वर्षा कमल तथा नदी कमल एवं धान्य से भरपूर भूमि को देवमातृक भूमि कहते हैं।

प्रकृत श्लोक में नदीमातृक एवं देवमातृक भूमि का लक्षण दिया गया है। नदी मातेव पोषिका यस्य (श.दु.-2.822)³, देवो वृष्टिर्मातेव शस्योत्पादनेन पालकत्वात् जननीव यस्य (श.दु.-2.744)³ अर्थात् नदी एवं वृष्टि शस्यों के उत्पादन द्वारा जिस भूमि के पालन-पोषण करने के कारण उसकी माता के समान हैं उस भूमि को क्रमशः नदीमातृक एवं देवमातृक भूमि कहते हैं। त्रिपाठीकृत व्याख्या से यह अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो रहा। त्रिपाठी ने श्लोक में पठित नद्यम्बुजैः पद में इतरेतरयोगद्वन्द्व समास (नद्यश्च अम्बुजानि च तैः) मानकर अम्बुज पद से कमल का ग्रहण किया है जबकि यहाँ तृतीयातत्पुरुष समास (नद्या अम्बुः नद्यम्बुः तेन जातः नद्यम्बुजः तैः) होना चाहिए। अमरकोशगत पाठ से भी इसकी पुष्टि होती है- देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः। स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम् (अ.को.-2.1.12)⁴¹। रामाश्रमी टीका में भानुजी दीक्षित ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है- नद्यम्बुभिर्वृष्ट्यम्बुभिश्च सम्पन्नैर्धान्यैः पालितः। नदी मातास्य। देवो मातास्य। क्रमेण एकैकम् नद्यम्बुभिर्वृष्ट्यम्बुभिः सम्पन्नदेशस्य (अ.को.टी.-पृ.167)⁴¹ अर्थात् नदी के जल से उपजे धानों द्वारा पाले गए देश का

नाम नदीमातृक तथा वर्षा के जल से उपजे धानों द्वारा पाले गए देश का नाम देवमातृक है। इसी प्रकार अभिधानचिन्तामणि में भी- देशो नद्यम्बुजीवनः स्याद् नदीमातृकः देवमातृको वृष्टिजीवनः [नद्यम्बुभ्यो जीवनं वृत्तिरत्र नद्यम्बुजीवनः, तत्र हि नद्यम्बुभ्यः सस्यनिष्पत्तिः। नदी माताऽस्य नदीमातृकः; देवोऽभ्रं माताऽस्य देवमातृकः, वृष्टिजीवनमत्र वृष्टिजीवनः, वृष्टिनिष्पाद्यसस्यत्वात् (अभि.चि.पृ.-381)⁵⁸] अतः श्लोक का उचित अर्थ इस प्रकार है- नदी के जल से उपजे धान्यों से पोषित प्रदेश 'नदीमातृक' कहा जाता है। वर्षा के जल से उपजे धान्यों से पोषित क्षेत्र 'देवमातृक' कहलाता है।

अब यहाँ डॉ. कुनानन्द गिरि एवं डॉ. पद्मलोचन शंखुआ द्वारा सम्पादित पर्यायमुक्तावली से एक प्रकरण दिया जा रहा है जिसमें क्षेत्रभेदों का वर्णन है-

4. पद्माशक्तः किन्नरेशः क्षितिरेषां च देवताः।⁵⁶ (प.मु.-23.9)

सम्पादक द्वारा किया गया अर्थ है- 'पद्माशक्त किन्नरों के स्वामी इस क्षेत्रों के देवता हैं।' यहाँ डॉ. शंखुआ ने किन्नरों के स्वामी को क्षेत्रों का देवता कहा है तथा पद्माशक्त को इसका विशेषण माना है। वस्तुतः इस श्लोक से पूर्व चार प्रकार के क्षेत्रों (ब्रह्म, क्षात्र, वैश्य एवं शौद्र) का वर्णन हुआ है जिनके देवताओं का क्रमशः परिगणन इस श्लोक में कराया गया है। यहाँ पद्माशक्तः के स्थान पर ब्रह्मा शक्रः पाठ होना चाहिए। ऐसा ही वर्णन राजनिघण्टु में भी मिलता है तद्यथा- ब्रह्मा शक्रः किन्नरेशस्तथा भूरित्येतेषां देवताः स्युः क्रमेण (रा.नि.आनूपादि-14)⁶। इस प्रकार सही श्लोकार्थ है- उपरोक्त ब्रह्मादि क्षेत्रों के क्रमशः ब्रह्मा, शक्र (इन्द्र), किन्नरेश (कुबेर) तथा क्षिति (भूमि) देवता होते हैं अर्थात् ब्राह्मक्षेत्र के देवता ब्रह्मा, क्षात्रक्षेत्र के देवता इन्द्र, वैश्यक्षेत्र के देवता कुबेर तथा शौद्रक्षेत्र के देवता भूदेव हैं।

5. (क) बिजिन्मितं तूतकृष्टं खारिवापस्तुखारिकः।⁵⁶

(ख) बीजाकृतं तूतकृष्टं खारिवापस्तु खारिकः।¹⁵ (प.मु.-23.11)

सम्पादक द्वारा किया गया अर्थ है- 'जल्द तपने वाली, बीजों के अंकुरित न होने एवं खारा पानी वाली जमीन को खारी जमीन कहते हैं।'

डॉ. शंखुआ ने इस पद्य को खारी जमीन के लक्षण के रूप में स्वीकार किया है जोकि उचित नहीं है। अमरकोष ⁶³(2.9.8) एवं अभिधानचिन्तामणि में बीजाकृत को उत्तकृष्ट का वाचक माना गया है तद्यथा- बीजाकृतं तूतकृष्टम् (अबीजं सबीजं बीजसम्पन्नं कृतं बीजाकृतम्, आदावुप्तं पश्चाद् बीजैः सह कृष्टं उत्तकृष्टम्- अभि.चि. -पृ.386)⁵⁸। इसी प्रकार वाप अर्थ में खार्या ईकन् (अष्ट.सू.-5.1.33)⁵⁹ सूत्र द्वारा खारी शब्द से ईकन् प्रत्यय होकर खारीकम् पद निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है-

खारीं खारीवापमर्हतीति। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐसा खेत जिसमें एक खारी परिमाण में बीज बोये जा सकते हैं उसे खारिक कहते हैं, न कि खारी जमीन को। सही श्लोकार्थ इस प्रकार है- बीजाकृत तथा उत्पकृष्ट- ये उत्पकृष्ट (बीज बोकर जोते जाने वाला क्षेत्र) के नाम हैं। जिस क्षेत्र में एक खारी (1 मन 8 सेर) प्रमाण में बीज बोया जाता है, उसे खारिक कहते हैं।

6. द्रोणाढकादिवापादौ द्रौणिकाढकिकादयः॥ (प.मु.-23.11)

सम्पादक ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है- 'तिल और चने आदि की उपजाऊ जमीन को माघिराशि जमीन् कहते हैं।'

यहाँ डॉ. शंखुआ द्वारा किए गए अर्थ में स्पष्ट देखा जा सकता है कि न तो इस हिन्दी अर्थ की सार्थकता है और न ही श्लोकगत पाठ से इसकी समानता है। वस्तुतः यहाँ पर भी पूर्वोक्त की भांति निश्चित परिमाण के आधार पर क्षेत्रों की संज्ञाओं का कथन हुआ है अर्थात् जिस क्षेत्र में एक द्रोण (16 सेर) बीज बोया जा सके उसे द्रौणिक (द्रोणस्य वापः क्षेत्रम्) तथा जिस क्षेत्र में एक आढक (4 सेर) परिमाण में बीज बोया जा सके उसे आढकिक (आढकस्य वापः क्षेत्रम्) कहा गया है। अमरकोष एवं अभिधानचिन्तामणि के पाठ से भी इसकी पुष्टि होती है तद्यथा- द्रोणाढकादिवापादौ द्रौणिकाढकिकादयः (अ.को.-2.9.10)⁴¹, द्रौणिकाढकिकादयः स्युर्द्रोणाढकवापादौ (अभि.चि.-4.36)⁵⁸ अतः श्लोक का सही अर्थ इस प्रकार है- जिस क्षेत्र में एक द्रोण (16 सेर) प्रमाण में बीज बोया जाता है, उसे द्रौणिक तथा जिस क्षेत्र में एक आढक (4 सेर) प्रमाण में बीज बोया जाता है, उसे आढकिक कहते हैं।

7. तिलस्य तैल्यं तैलीनं यव्यं क्षेत्रं यवस्य यत्।

व्रीह्युद्भवं च व्रैहेयं शालेयं शालिसम्भवम्।

कोद्रवैः कौद्रवीणं स्यान्मुद्गैर्मैद्रीनमीरितम्॥ (प.मु.-23.12-13)

उपर्युद्धृत श्लोक का अर्थ सम्पादक द्वारा इस प्रकार किया गया है- 'तिल एवं अन्य तैल बीज एवं यव के उत्पादन योग्य जमिन को तिल और यव उपजाऊ जमिन बोलते हैं। उड़द और शालिधान (वासमती चावल) उपजाऊ जमीन को व्रैहेयं एवं शालेय बोलते हैं। कोदुं और मुँग उत्पादन योग्य जमीन को कोद्रवीण एवं मौद्री कहते हैं।'

यहाँ पर डॉ. शंखुआ ने जो अर्थ दिया है उससे विषय स्पष्ट नहीं हो रहा। साथ ही व्रीहि का अर्थ उड़द किया है जो उचित नहीं है। इस प्रकरण में धान्यविशेषों की उत्पत्ति के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के अभिधानों का कथन हुआ है। आचार्य पाणिनि ने इनका स्पष्ट निर्देश किया है- धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् (अष्ट.सू.-5.2.1)⁵⁹ अर्थात् धान्यविशेष के वाचक प्रातिपदिक से उत्पत्तिस्थान अभिधेय रहने पर खञ्-प्रत्यय होता

है यदि उत्पत्तिस्थान खेत हो तोय तद्यथा मुद्गानां भवनं क्षेत्रम् मौद्गीनम्, कोद्रवाणाम् भवनं क्षेत्रं कौद्रवीणम्, तिलानां भवनं क्षेत्रम् तैलीनम्। इस प्रकार मुद्ग, कौद्रव एवं तिल के क्षेत्र को क्रमशः मौद्गीनम्, कौद्रवीणम् एवं तैलीनम् कहा जाएगा। इसके कुछ अपवाद भी हैं जैसे- तिल से वैकल्पिक यत्-प्रत्यय होकर तिल्य (अष्ट.सू.-5.2.4)⁵⁹, यव से यत्-प्रत्यय द्वारा यव्य (अष्ट.सू.-5.2.3)⁵⁹ तथा व्रीहि एवं शालि से ढक्-प्रत्यय होकर क्रमशः व्रीहेय एवं शालेय (अष्ट.सू.-5.2.2)⁵⁹ पद बनते हैं। श्लोक का उचित अर्थ इस प्रकार है- तिल के उत्पत्ति क्षेत्र को तैल्य व तैलीन तथा यव के उत्पत्ति क्षेत्र को यव्य कहते हैं। व्रीहि (धान) के उद्भव क्षेत्र को व्रीहेय तथा शालि (चावल) के उत्पत्तिक्षेत्र को शालेय कहते हैं। कोद्रव (कोदो धान्य) से युक्त क्षेत्र को कौद्रवीण तथा मुद्ग (मूँग) से युक्त क्षेत्र को मौद्गीन कहते हैं।

8. सैकतः सिकतायुक्त शार्करो बहुशर्करः। (प.मु.-23.14)

सम्पादक द्वारा किया गया अर्थ है- 'बालुयुक्त मिट्टी शर्करायुक्त जमीन को बहुशर्कर कहते हैं।'

डॉ. शंखुआ ने यहाँ बालु एवं शर्करा में अभेद मानते हुए बालुयुक्त एवं शर्करायुक्त भूमि को बहुशर्कर कहा है जो कि उचित नहीं है। बालु एवं शर्करा दोनों भिन्न हैं। बालु पद रेत का जबकि शर्करा पद कंकड़ आदि का वाचक है। वस्तुतः यहाँ मिट्टी की प्रकृति के आधार पर दो प्रकार के क्षेत्रों का वर्णन है जिसमें सिकता अर्थात् बालुयुक्त मिट्टी वाले क्षेत्र को सैकत तथा शर्करा अर्थात् कंकड़ आदि से युक्त मिट्टी वाले क्षेत्र को शार्कर कहा गया है। यहाँ देश अभिधेय होने पर सिकता एवं शर्करा शब्द से 'देशे लुबिलचौ च' (अष्ट.सू.-4.2.88)⁵⁹ से अण् प्रत्यय हुआ है- सिकता अस्मिन् विद्यते सैकतः, शर्करा अस्मिन् विद्यते शार्करः। श्लोक का सही अर्थ इस प्रकार है- बालुयुक्त (रेतीली) मिट्टी वाले क्षेत्र को सैकत कहते हैं तथा अत्यधिक शर्कर (कंकड़/रोड़े आदि) से युक्त मिट्टी वाले क्षेत्र को शार्कर कहते हैं।

9. (क) नडादयो नद्योलो नद्वान् कुमुद्वान् कुमुदावृतः।⁵⁶

(ख) नडादयो नड्वलो नड्वान् कुमुद्वान् कुमुदावृतः।¹⁵

(प.मु.-23.15)

सम्पादक ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है- 'अनेक नाल वाले कुई पुष्पों से घिरी जमीन को कुमुद्वान भूमि कहते हैं।'

डॉ. शंखुआ द्वारा किए गए अर्थ से किसी भी प्रकार से श्लोकगत अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो रहा है। यहाँ पर द्रव्यविशेष के आधिक्य के आधार पर दो प्रकार के क्षेत्रों की संज्ञाओं का कथन हुआ है। नड एक प्रकार का तृण है वह जिस भूमि में

अधिक उगता है उसको नड्वल एवं नडवान् तथा कुमुद की अधिकता वाली भूमि को कुमुदवान् कहा जाता है। आचार्य पाणिनि ने भी इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। यहाँ नड एवं कुमुद शब्द से 'कुमुदनडवेतसेभ्यो ङ्मतुप्' (अष्ट.सू.-4.2.87)⁵⁹ सूत्र द्वारा चातुरर्थिक ङ्मतुप्-प्रत्यय होकर क्रमशः नडवान् एवं कुमुदवान् पद बने हैं- नडा अस्मिन् सन्तीति, कुमुदाः अस्मिन् सन्तीति। इसी प्रकार नड से 'नडशादाङ् ड्वलच्' (अष्ट.सू.-4.2.88)⁵⁹ सूत्र द्वारा ड्वलच्-प्रत्यय होकर नड्वलः पद बना है। ऐसा ही वर्णन अभिधानचिन्तामणि एवं अमरकोष में भी मिलता है- कुमुद्वान् कुमुदावासः (कुमुदानि सन्त्यत्र, कुमुदानां निवास इति वा कुमुद्वान्- अभि.चि.-पृ.381)⁵⁸, नडप्रायो नडकीयो नड्वांश्च नड्वलश्च सः (नडप्रायो नडबहुल इत्यर्थः- अभि.चि.-पृ.381)⁵⁸, नडप्राये नड्वान् नड्वल इत्यपि, कुमुद्वान् कुमुदप्राये (अ.को.-2.1.9)⁴¹। सही श्लोकार्थ इस प्रकार है- नड्वल तथा नड्वान्- ये नड्वल (नड/नरकट नामक तृण की अधिक उत्पत्ति वाला क्षेत्र) के नाम हैं। कुमुद (कमलभेद) की उत्पत्ति वाले क्षेत्र को कुमुदवान् कहते हैं।

10. (क) शाद्वलः स्यादहरिते सजम्बाले तु पङ्किलः।⁵⁶

(ख) शाद्वलः शादहरिते सजम्बाले तु पङ्किलः।¹⁵ (प.मु.-23.15)

सम्पादक द्वारा किया गया अर्थ- 'शाद्वल अर्थात् काईयुक्त जमिन को पङ्किल देश कहते हैं।'

डॉ. शंखुआ ने यहाँ शाद्वल को काईयुक्त जमीन का वाचक माना है तथा उसको पङ्किल का समानार्थक बताया है जो कि ठीक नहीं है। शाद शब्द से 'नडशादाङ् ड्वलच्' (अष्ट.सू.-4.2.88)⁵⁹ सूत्र से चातुरर्थिक ड्वलच् प्रत्यय करने पर शाद्वलः पद बनता है जिसका अर्थ है- शादा अस्मिन् सन्तीति अर्थात् शाद की बहुलता वाले क्षेत्र को शाद्वल कहा जाता है। यद्यपि शाद पद कर्दम (पङ्क/कीचड़) का भी वाचक है किन्तु शाद्वल पद शादहरित (नवीन तृणों से हरित) भूमि के लिए ही रूढ़ है न कि कर्दमयुक्त भूमि के लिए। अतः लोकव्यवहार-विरुद्ध होने से कीचड़युक्त भूमि को शाद्वल नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः कीचड़युक्त भूमि के लिए पङ्किल पद का व्यवहार होता है। पङ्क शब्द के पिच्छादिगण में पठित होने के कारण 'पङ्कोऽस्त्यस्मिन्' इस मतुबर्थ में लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः (अष्ट.सू.-5.2.99)⁵⁹ सूत्र से इलच्-प्रत्यय करने पर पङ्किल पद निष्पन्न होता है। इससे स्पष्ट है कि पङ्क अर्थात् कीचड़ से युक्त भूमि पङ्किल कहलाती है। अन्य कोषों से भी इस पाठ की पुष्टि होती है- सजम्बाले तु पङ्किलः, शाद्वलः शादहरिते (शादो बालतृणमस्मिन्, शादैर्बालतृणैर्हरितः- अ.को.टी.-पृ.166)⁴¹। सही श्लोकार्थ इस प्रकार है- शाद (बालतृण) से हरित (हरे बने हुए) क्षेत्र को शाद्वल कहते हैं तथा जम्बाल (कीचड़) से युक्त

क्षेत्र को पङ्क्ति ल कहते हैं।

11. (क) सवेतसस्तु वेतस्वान् सशाकः शाकसाकुटः।⁵⁶

(ख) सवेतसस्तु वेतस्वान् सशाकः शाकशाकटः।¹⁵

(प.मु.-23.16)

सम्पादक द्वारा किया गया अर्थ- 'वेत और विभिन्न शाक (हरी पत्ती वाले) जमीन को शाकदेश कहते हैं।'

डॉ. शंखुआ ने वेत एवं शाक से युक्त क्षेत्र को शाकदेश कहा है जो कि उचित नहीं है। प्रथमतः यहाँ दो पृथक्-पृथक् क्षेत्रों का अभिधान है न कि एक का। साथ ही श्लोक में शाकदेश पद का प्रयोग भी नहीं हुआ अतः इसे संज्ञा नहीं माना जा सकता। श्लोक को देखने से स्पष्ट है कि यहाँ सवेतस अर्थात् वेतसयुक्त देश को वेतस्वान् कहा गया है जो वेतस शब्द से कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् (अष्ट.सू.-4.2.87)⁵⁹ सूत्र द्वारा चातुरर्थिक ड्मतुप्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इसी प्रकार भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ (वा.प्र.-5.2.29)⁶⁰ वार्तिक से शाक शब्द से शाकट-प्रत्यय होकर शाकशाकट पद बना है जिसका अर्थ है- शाकानां भवनं क्षेत्रम् अर्थात् ऐसा क्षेत्र जिसमें शाक उगती है। श्लोक का सही अर्थ है- वेतस (बेंत) की प्रचुरता वाले क्षेत्र को वेतस्वान् तथा शाक की बहुलता वाले क्षेत्र को शाकशाकट कहते हैं।

उपसंहार-

इस प्रकरण को देखने से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्तनी के अशुद्ध होने, ठीक अन्वय न करने तथा विषयबोध न होने से निघण्टुओं के सम्पादन में किस प्रकार अर्थ का अनर्थ किया गया है। अतः इस क्षेत्र में अवधानवृत्ति को जागृत करना बहुत आवश्यक है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों के प्रायः संस्कृत भाषा में निबद्ध होने के कारण इनका सम्पादन करते समय संस्कृतज्ञ विद्वानों का सहयोग नितान्त अपेक्षित है। साथ ही मूलपाठगत दोषों को दूर करने के लिए आगामी संस्करणों में परम्परागत अशुद्धियों का अनुसरण न करके अधिकाधिक हस्तलिखित मातृकाओं के पाठभेदों की विवेचना कर सही पाठ को प्रकाश में लाना भी बहुत आवश्यक है, जिससे आयुर्वेद की महत्ता को अक्षुण्ण रखा जा सके।

सन्दर्भग्रन्थ-

1. शर्मा, पी.वी. (1973 ई.)। अष्टांग निघण्टु। मद्रास, भारत : कप्पूस्वामी शास्त्री रिसर्च इन्स्टिट्यूट।

2. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.) अष्टांग निघण्टु, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
3. देव, राजा राधाकान्त (2003 ई.)। शब्दकल्पद्रुम (भाग1.5)। दिल्ली, भारत : नाग पब्लिशर्स।
4. तर्कवाचस्पति, तारानाथ (2018 ई.)। वाचस्पत्यम् (भाग1.6)। दिल्ली, भारत : नाग प्रकाशन।
5. बालकृष्ण, आचार्य (2015 ई.)। चन्द्रनिघण्टु, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
6. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.) राजनिघण्टु, द्वितीय संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
7. त्रिपाठी, इन्द्रदेव (2010 ई.)। राजनिघण्टु, पञ्चम संस्करण। वाराणसी, भारत : चौखम्भा कृष्णदास अकादमी।
8. मोहन, सुरेन्द्र (1928 ई.)। पथ्यापथ्यविबोधको ग्रन्थः वा कैयदेवनिघण्टुः। लाहौर, भारतः मेहरचन्दलक्ष्मणदास।
9. शर्मा, पी.वी. एवं शर्मा, जी.पी. (2006 ई.)। कैयदेव निघण्टु, द्वितीय संस्करण। वाराणसी, भारत : चौखम्भा ओरियन्टलिया।
10. चौधरी, तारापाद (1946 ई.)। पर्यायरत्नमाला। पटना, भारत : पटना युनिवर्सिटी जर्नल, भाग.2 से पुनर्मुद्रित।
11. वसाक, भुवनचन्द्र (1885 ई.)। रत्नमालाभिधानम् (पर्यायरत्नमाला)। कलकत्ता, भारत : संवादज्ञानरत्नाकर मुद्रणालय।
12. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.) पर्यायरत्नमाला, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
13. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.) मदनपालनिघण्टु, द्वितीय संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
14. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.) लघुनिघण्टु, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
15. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.) पर्यायमुक्तावली, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
16. मॉस, एन.एस. (1985 ई.)। चन्द्रनिघण्टु (मदनादिनिघण्टु), प्रथम संस्करण। कोटट्यम्, भारत : वैद्यसारथि मुद्रणालय।

17. पी. विशालाक्षी (2005 ई.)। मदनादिनिघण्टु (चन्द्रनिघण्टु)। तिरुवनन्तपुरम्, भारत : पौरस्त्य. हस्तलिखितग्रन्थशाला, कार्यवट्टम्।
18. शर्मा, काशीराज एवं तिवारी नरेन्द्रनाथ (2000 ई.)। सौश्रुतनिघण्टु। वेलझुण्डी, नेपालः महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय।
19. वाचनाचार्य, वी. जी. एवं मुनिराज, श्री पुण्यविजय जी (1968 ई.)। निघण्टुशेष। अहमदाबाद, भारत : लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर।
20. चुनेकर, के.सी. एवं पाण्डेय, जी.एस. (2015 ई.)। भावप्रकाश निघण्टु। वाराणसी, भारत : चौखम्भा भारती अकादमी पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
21. शास्त्री, त्र्यम्बक (सं. 1978, 1921 ई.)। मदनविनोद-वैद्यकनिघण्टुः, प्रथम संस्करण। काशी, भारत : हितचिन्तक मुद्रणालय।
22. वैश्य, लाला शालिग्राम (2011 ई.)। शालिग्रामनिघण्टुभूषणम्। मुम्बई, भारत : खेमराज कृष्णदास प्रकाशन।
23. बालकृष्ण, आचार्य (2015 ई.)। सिद्धसार निघण्टु, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
24. ओझा, झारखण्डे एवं मिश्र, उमापति (1985 ई.)। धन्वन्तरि निघण्टु। वाराणसी, भारत : चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन।
25. शर्मा, पी.वी. (1978 ई.)। सोढलनिघण्टु। गुजरात (बरोदा), भारत : ऑरियन्टल इन्स्टिट्यूट।
26. पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र (2009 ई.)। सोढल निघण्टु, प्रथम संस्करण। वाराणसी, भारत : चौखम्भा कृष्णदास अकादमी।
27. कुमार, आर्यदास (सं.-2028, 1981 ई.)। महौषधनिघण्टु। वाराणसी, भारत : चौखम्भा भारती अकादमी।
28. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.)। अभिधानरत्नमाला (षड्रसनिघण्टु), प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
29. शर्मा, पी.वी. (2008 ई.)। अभिधानरत्नमाला (षड्रसनिघण्टु), द्वितीय संस्करण। वाराणसी, भारत : चौखम्भा ओरियन्टलिया।
30. शर्मा, शंकर एवं अच्युतवार्य, चेप्पाट् के. (1942 ई.)। अभिधानमंजरी। कोट्टयम्, भारत : वैद्यसारथि मुद्रणालय।
31. कृष्णमूर्ति, एम.एस. (2012 ई.)। अभिधानमंजरी। वाराणसी, भारत : चौखम्भा ऑरियन्टलिया।

32. बालकृष्ण, आचार्य (2019 ई.)। सरस्वती निघण्टु, प्रथम संस्करण। हरिद्वार, भारत : दिव्य प्रकाशन।
33. होशिङ्ग, जगन्नाथ शास्त्री (1968 ई.)। मेदिनीकोश। वाराणसी, भारत : चौखम्भा संस्कृत संस्थान।
34. कुलकर्णी, बलवन्त दत्तात्रेय (1930 ई.)। सार्थ मदनपालनिघण्टु। पूना, भारत : यशवन्त प्रेस।
35. दास, वैद्य भगवान, (2008 ई.)। मेटिरीया मेडिका ऑफ आयुर्वेदा बेस्ड ऑन मदनपालनिघण्टु, प्रथम संस्करण। देहली, भारत : हेल्थ हारमॉनि।
36. पटियाला, रामप्रसाद (1998 ई.)। मदनपालनिघण्टुः। बॉम्बे, भारत : वेंकटेश्वर प्रेस।
37. शास्त्री, जे.एल.एन. (2010 ई.)। मदनपालनिघण्टुः। वाराणसी, भारत : चौखम्भा आरियन्टलिया।
38. पाण्डेय, ज्ञानेन्द्र (2012 ई.)। मदनपालनिघण्टु, प्रथम संस्करण। वाराणसी, भारत : चौखम्भा आरियन्टलिया।
39. शिरोमणि, नवचन्द्र (1886 ई.)। मदनपालकृते सवौषधिनामगुणानां निघण्टुः। कलकत्ता, भारत : नूतनवाल्मीकि यत्र।
40. शास्त्री, त्र्यम्बक (सं. 1978, 1921 ई.)। मदनविनोद-वैद्यकनिघण्टुः, प्रथम संस्करण। काशी, भारत : हितचिन्तक मुद्रणालय।
41. अभिमन्यु, श्रीमन्नलाल (2008 ई.)। अमरकोष. भाग 1-3। वाराणसी, भारत : चौखम्भा विद्याभवन।
42. सांख्यधर, सतीशचन्द्र एवं सांख्यधर, दीपिका (2012 ई.)। राजनिघण्टु, प्रथम संस्करण। वाराणसी, भारत : चौखम्भा ऑरियन्टलिया।
43. शर्मा, नारायण (1925 ई.)। राजनिघण्टुसहितो धन्वन्तरीयनिघण्टुः। पूना, भारत : आनन्दाश्रममुद्रणालय।
44. प्रसाद, बाबू वाराणसी (1883 ई.)। राजनिघण्टुः। बनारस, भारत : काशी संस्कृत मुद्रायत्र।
45. भट्टाचार्य, आशुबोध विद्याभूषण एवं भट्टाचार्य, नित्यबोध विद्यारत्न (1933 ई.)। राजनिघण्टु, द्वितीय संस्करण। कलकत्ता, भारत: सिद्धेश्वर प्रेस।
46. शर्मा, पी.वी. (2000 ई.)। नामरूपज्ञानम्। वाराणसी, भारत : सत्यप्रिय प्रकाशन।

47. शास्त्री, गिरिजाशंकर (सं. 2011, 1954 ई.)। भावप्रकाशनिघण्टु, प्रथम संस्करण। अहमदाबाद, भारत : संस्कृत साहित्य कार्यालय।
48. वैद्यशास्त्री, शिवशर्मा (2000 ई.)। हरीतक्यादिनिघण्टुः (भावप्रकाशान्तर्गतः)। मुम्बई, भारत : खेमराज श्रीकृष्णदास।
49. भानुदत्त, विद्यारत्न (1915 ई.)। भावप्रकाश निघण्टु, तृतीय संस्करण। मुम्बई, भारत : खेमराज श्रीकृष्णदास।
50. द्विवेदी, पं.विश्वनाथ (1949 ई.)। भावप्रकाश निघण्टु, द्वितीय संस्करण। बनारस, भारत : मोतीलाल बनारसीदास।
51. सिंह, अमृतपाल (2007 ई.)। भावप्रकाश निघण्टु। वाराणसी, भारत : चौखम्बा ऑरियन्टलिया।
52. कामत, एस.डी. (2018 ई.)। भावप्रकाश निघण्टु। दिल्ली, भारत : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
53. चौबे, दत्तराम (2016 ई.)। अभिनवनिघण्टु। वाराणसी, भारत : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
54. होता, नरेन्द्रप्रसाद एवं पाढि, मदनमोहन (2015 ई.)। पर्यायमुक्तावली। उड़ीसा, भारत : आयुष निदेशालय।
55. कविराज, गोपीमोहन (1874 ई.)। मुक्तावली (पर्यायमुक्तावली)। कलकत्ता, भारत : संवादज्ञानरत्नाकर मुद्रणालय।
56. गिरि, कुनानन्द एवं शंखुआ, पद्मलोचन (2013 ई.)। पर्यायमुक्तावली। वाराणसी, भारत : चौखम्बा विश्व भारती प्रकाशन।
57. प्राञ्जपे, ए.एस., पनसे, जी.एस. एवं बेडेकर, वी.ए. (1962 ई.)। लघुनिघण्टुः। पूना, भारत : आई.आर.डी.ए. पूना (समर्थ भारत प्रेस)।
58. दास, हरगोविन्द एवं बेचरदास (वीर सं.2441)। अभिधानचिन्तामणि। भावनगर (गुजरात), भारत: नाथलाल लक्ष्मीचन्द वकील।
59. जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त (2018 ई.)। अष्टाध्यायीसूत्रपाठः। सोनीपत, भारत : रामलाल कपूर ट्रस्ट।
60. मेधार्थी, आनन्दप्रकाश (वि.सं. 2050, 1993 ई.)। वार्तिक-प्रकाशः। वाराणसी, भारत : चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
61. Kambhar, S.V., & Kotresha, K. (2012). Life-forms and biological spectrum of a dry deciduous forest in Gadag District, Karnataka, India". *Research and Review Journal of Botany*, 1(1), 1.28.

62. Wikipedia. (2021). *Dendrophthoe falcata*. Retrieved from https://en-wikipedia-org/wiki/Dendrophthoe_falcata
63. efloras (n.d.). *Asparagus racemosus* Willd-: Retrieved from http://www.efloras.org/florataxon.aspx?flora_id=2&taxon_id=240001105
64. efloras (n.d.). *Cucumis sativus* L. Retrieved from http://www.efloras.org/florataxon.aspx?flora_id=2&taxon_id=200022616
65. efloras (n.d.). *Polygonatum cirrhifolium* (Wallich) Royle. Retrieved from http://www.efloras.org/florataxon.aspx?flora_id=2&taxon_id=200027846
66. POWO (2022). "Plants of the World Online. Facilitated by the Royal Botanic Gardens, Kew. Published on the Internet; <https://powo-science.kew.org/taxon/urn:lsid:ipni.org:names:60451312-2#synonyms> Retrieved 14 March 2022."
67. Vikaspedia. (2022). Black Pepper. Retrieved from [https://vikaspedia-in//agriculture//crop-production//package-of-practices/spices/black-pepper#:~:text=Black%20pepper%20\(Piper%20nigrum%20L,black%20pepper%20in%20the%20world.](https://vikaspedia-in//agriculture//crop-production//package-of-practices/spices/black-pepper#:~:text=Black%20pepper%20(Piper%20nigrum%20L,black%20pepper%20in%20the%20world.)
68. Pandey, H., Nandi, S.K., Kumar, A., Agnihotri, R.K., & Palni, L.M. S. (2007). Aconitine alkaloids from tubers of *Aconitum heterophyllum* and *A. balfourii*: critically endangered medicinal herbs of Indian Central Himalaya. *National Academy Science letters*, 31(3), 89.93.



श्रुतिप्रमाण-स्वरूपमीमांसा

-रामचन्द्र मेघवाल*

अवतरणिका- बलाबल अधिकरण का प्रथम प्रमाण श्रुति होने के कारण सर्वप्रथम श्रुति शब्द पर विचार प्रस्तुत है। यह श्रुति शब्द भी वेद शब्द के समान विवादास्पद है। श्रुति शब्द अनेकार्थक है। श्रुति पद श्रु श्रवणेधातु से भाव कर्म व करण कारक में स्त्रियां क्तिन् अष्टा 3.3.94 से क्तिन् प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। अतः श्रवणं श्रुतिः = सुनना। श्रूयते इति श्रुतिः = जो सुना जाये अर्थात्- ध्वनि। श्रूयतेऽनया सा श्रुतिः = जिसके द्वारा अर्थ को सुना जाये, या जाना जाये। इस व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द वाक्य वा ग्रन्थमात्र अर्थ सामान्यरूप से जाना जाता है। परन्तु वैदिक वाङ्मय में इस शब्द को विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है। तदनुसार मन्त्र और ब्राह्मण वचन दोनों का ही श्रुति शब्द के द्वारा व्यवहार देखा जाता है। यथा-

श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः॥¹

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥²

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्रधर्मावुभौ स्मृतौ॥³

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।

सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकीश्रुतिः॥⁴

विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतिः॥⁵

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीःकुर्यादित्यविचारयन्॥⁶

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर वेद विभाग गुरुकुल कांगड़ी (सम विश्वविद्यालय) हरिद्वार।

1. मनुस्मृति 2-10
2. मनुस्मृति 2-13
3. मनुस्मृति 2-14
4. मनुस्मृति 2-15
5. मनुस्मृति 6-29
6. मनुस्मृति 11-33

इन उद्धरणों में श्रुति शब्द निस्सन्देह मन्त्र व ब्राह्मण के लिये प्रयोग किया गया है। मनुस्मृतिकार के द्वारा पांचवे प्रमाण में उपनिषद् सम्बन्धी श्रुतियों का निर्देश है, उपनिषदों का समावेश भी ब्राह्मण ग्रन्थों में होता है। मनुस्मृति के प्रमाणों पर विचार करते हुए हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह एक धर्मशास्त्र है और धर्मशास्त्र कल्पसूत्रों के अन्तर्गत आते हैं। कल्पसूत्र के चार विभाग हैं- श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र। पूर्व मीमांसा शास्त्र के श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थान समाख्यानं समवाये पारदौर्बल्यम् अर्थविप्रकर्षात्¹

सूत्र में श्रुति का उदाहरण समस्त मीमांसकाचार्य (ऐन्द्रागार्हपत्यमुपतिष्ठते)² देते हैं तथा गार्हपत्यम् शब्द श्रवण को श्रुति मानते हैं। मीमांसकों के मतानुसार श्रुति शब्द का अर्थ साक्षात् शब्द श्रवण होने पर भी श्रुति शब्द का अर्थ श्रूयते सम्बन्धो येन = जिससे सम्बन्ध विशेष का परिज्ञान होवे, वह ब्राह्मण वाक्य श्रुति कहाता है। यह अर्थ अधिक उचित प्रतीत हो रहा है। वह सम्बन्ध चाहे द्रव्य और देवता का हो, चाहे मन्त्र और कर्म का हो। इस प्रकार श्रुति शब्द विनियोग का पर्याय है।

कर्मकाण्डीय शाखा-ब्राह्मण-सूत्र ग्रन्थों में विनियोजक पदसमुदाय चाहे वह मन्त्र होवे या चाहे ब्राह्मणवचन, सभी वचनों को श्रुति कहते हैं। इस अर्थ में कतिपय प्रमाण जिनमें श्रुति शब्द का यह अर्थ स्पष्ट है। यथा- माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार उव्वट अ० 24 के प्रारम्भ में लिखते हैं-इत उत्तरं श्रुतिरूपा मन्त्रा आश्वमेधिकानां पशूनां द्रव्यदेवता-सम्बन्धस्याभिधायिनः।³ अर्थात्- यहां से आगे श्रुतिरूप मन्त्र हैं जो अश्वमेध के पशुओं के द्रव्य और देवता सम्बन्ध को कहने वाले हैं। ऋग्यजुः परिशिष्ट- देव सवितरिति तिस्रः प्राक्प्रैषेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः।⁴ इस पर श्रीधर शास्त्री की टीका- प्राक्प्रैषेभ्यो निगदेभ्यो ब्राह्मणपाठेभ्यः श्रुतिरूपेभ्यो यजुषः प्राक् अर्थात्-प्रेष-संज्ञक निगद-संज्ञक श्रुति-रूप ब्राह्मणपाठ से पूर्व देवसवितः तीन ऋचाएं हैं। इन दोनों उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि- विनियोजक ब्राह्मणम् लक्षण जिन मन्त्रों में घटित होता है उन मन्त्रों को ब्राह्मण या श्रुति शब्द से कहा जाता है। इस प्रकार याज्ञिक ग्रन्थों में वेदसंज्ञा के समान श्रुतिसंज्ञा की परिभाषा न देने पर भी याज्ञिकों के मत में श्रुतिसंज्ञा भी विनियोजक वाक्य की पारिभाषिक संज्ञा ही है।

1. जैमिनीयमीमांसा शाबरभाष्यम् 3-3-14 पृ. सं. 805 सम्पादक एवं व्याख्याकार पं.युधिष्ठिर मीमांसक।
2. मैत्रायणी संहिता 3-2-4।
3. माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार उव्वट अध्याय 24 के प्रारम्भ में।
4. ऋग्यजुः परिशिष्टः।
5. ऋग्यजुः परिशिष्ट इस पर श्रीधर शास्त्री की टीका।

श्रुतिप्रमाण का स्वरूपनिरूपण :-

मीमांसाशास्त्र के भाष्य, वार्तिक, टीका या प्रकरण आदि ग्रन्थों में श्रुति संज्ञा की परिभाषा- श्रवण को ही श्रुति कहते हैं अर्थात् जिस अर्थ का अभिधान शब्द के श्रवण मात्र से ही जाना जाता है वह श्रुति से जाना जाता है। अतः श्रवण ही श्रुति है इस बात को शाबरभाष्य में शबरस्वामी ने इस प्रकार कहा है **श्रवणं श्रुतिः अर्थात् यदर्थस्याभिधानं शब्दस्य श्रवणमात्रादेवावगम्यते, स श्रुत्याऽवगम्यते इति श्रवणं श्रुतिः।**¹ (शाबरभाष्य 3/3/14) श्रीलौगाक्षिभास्करप्रणीतार्थसंग्रह और आपदेवकृत मीमांसान्यायप्रकाश इन दोनों प्रकरण ग्रन्थों में श्रुति की सामान्य व विशेष दोनों प्रकार की परिभाषाएं दी गई हैं। श्रुति का सामान्य लक्षण इस प्रकार है- **तत्र निरपेक्षो रवः श्रुतिः।**² **तत्र प्रमाणषट्कमध्ये प्रथमं तावच्छ्रुतिसामान्यस्यनिरपेक्षोरवः श्रुतिरिति लक्षणं ज्ञेयम्।**³ उन श्रुति लिङ्गादि छः प्रमाणों में अङ्गत्वबोध में अन्यप्रमाणों की अपेक्षा न करने वाला शब्द (रवः) श्रुति नामक प्रमाण कहलाता है। अर्थात् शेषत्व का बोध कराने के लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता से रहित शब्द श्रुति प्रमाण कहलाता है। अथवा-

स्वकरणीये शेषत्वबोधे प्रमाणान्तनिरपेक्षः शब्दः श्रुतिरित्यर्थः। रव इत्युक्ते वाक्यादावतिप्रसङ्गस्तद्वारणाय निरपेक्ष इत्युक्तम्।⁴ **अथवा-अङ्गत्वबोधने लिङ्गादिवत् प्रमाणान्तरमनपेक्षमाणः शब्दः श्रुतिरिति।**⁵

विनियोग के सभी छः प्रमाणों में श्रुतिप्रमाण का प्रथम स्थान है, जिससे यह बात स्पष्ट ही ज्ञात होती है कि कौन-सा पदार्थ किसका अङ्ग है। ध्यान रहे कि श्रुति का अर्थ वेद के शब्द का श्रवण है और यहां वह शब्द पारिभाषिक है जिसके लक्षण में विद्यमान 'निरपेक्ष' शब्द विशेष है। इस निरपेक्ष पद के प्रयोग किये जाने के कारण श्रुति प्रमाण की भिन्नता उन लिङ्ग वाक्य आदि प्रमाणों से सिद्ध होती है जो सापेक्ष हैं, लिङ्गादि की सापेक्षता इस कारण सिद्ध होती है क्योंकि वे क्रमशः निर्बल होते जाते हैं और अर्थबोध करवाने के लिए अपने पूर्व-पूर्ववर्तियों पर आश्रित रहते हैं, अर्थात् लिङ्ग श्रुतिसापेक्ष है, वाक्य लिङ्गश्रुति सापेक्ष है, प्रकरण वाक्यलिङ्गश्रुति सापेक्ष है, स्थान प्रकरणवाक्यलिङ्गश्रुतिसापेक्ष और समाख्या स्थानप्रकरणवाक्यलिङ्ग

1. जैमिनीयमीमांसा शाबरभाष्यम् 3/3/14 पृ. सं. 805 सम्पा. एवं व्या. युधिष्ठिर मीमांसक।
2. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोग विधिप्रकरण पृ. सं. 66 व मीमांसा न्यायप्रकाश विनियोगविधि प्रकरण पृ. सं. 27, मीमांसा न्यायप्रकाश न्यायबोधिनी टीका पृ. सं. 126।
3. मीमांसान्यायप्रकाश न्यायबोधिनी टीका पृ. सं. 126।
4. मीमांसार्थसंग्रहकौमुदी संस्कृत व्य. विनियोग विधि प्रकरण पृ. सं. 66।
5. मीमांसान्यायप्रकाश सारविवेचिनी टीका पृ. सं. 27।

श्रुति सापेक्ष है। परन्तु श्रुतिप्रमाण को किसी भी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रहती है अपने अर्थ-प्रत्यायन हेतु। वह श्रुति एक ऐसा शब्द है जो विनियोग में अङ्गत्व के ज्ञापन के लिए स्वयं समर्थ रहता है। शेष लिङ्गादि प्रमाणों से श्रुतिप्रमाण प्रबलतम होता है।

श्रुतिप्रमाण के प्रकार :-

वह श्रुति तीन प्रकार की होती है 1. विधात्री 2. अभिधात्री 3. विनियोक्त्री।

अभिधात्री श्रुतिः काचिद्विनियोकत्र्यपरा परा।

विधात्री च तृतीयोक्ता प्रयोगो यन्निबन्धना॥¹

त्रिविधाश्रुतिः। विध्युक्तिविनियोगाख्या-²

यहां पर कुमारिल भट्ट ने श्रुति के तीन प्रकार व नाम बताये हैं विधात्री के लिए = विधि, अभिधात्री के लिए = उक्ति, और विनियोक्त्री के लिए = विनियोग नाम संकीर्तन किया है परन्तु कोई परिभाषा नहीं दी-

तत्र श्रुतिस्त्रिधा भिन्ना विध्युक्ति-विनियोगकृत्।

विनियोक्त्री त्रिधा भिन्ना तुल्यशब्दादिभेदतः॥³

इसी प्रकार न्यायरत्नमालाकार ने एक कारिका में श्रुति के तीन प्रकार बताते हुए श्रुति के तीनों भेदों के नाम का संकीर्तन किया है जैसे कि भट्ट कुमारिल ने किया- विधि, उक्ति व विनियोग।

1. विधात्रीश्रुति का स्वरूप-

विधान करने वाली- विधानकर्त्री- विधि को ही विधात्री कहते हैं। वह विधात्री लिङ्गादि रूप वाली होती है तत्राद्या लिङ्गाद्यात्मिका⁴ तत्र विधात्री लिङ्गाद्यात्मिका⁵ इसकी सारविवेचिनीकार ने इस प्रकार व्याख्या की है- यः प्रत्ययो विधायको लिङ्गादिः स एव विधात्री श्रुतिरित्यभिधीयते इत्यर्थः⁶

1. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि. सं. 2044।
2. तन्त्रवार्तिक 3/3/14 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि. सं. 2044।
3. न्यायरत्नमाला-सप्तम-प्रकरण प्रथम परिच्छेद- 5 पृष्ठ 145।
4. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ. सं. 66।
5. मीमांसान्यायप्रकाश पृ. सं. 28।
6. मीमांसान्यायप्रकाश सारविवेचिनी टीका पृ.सं. 28।

विधात्री श्रुति के द्वारा पुरुष में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। अभिधात्री श्रुति व विनियोकत्री श्रुति इन दोनों का श्रवण हो जाने पर भी यदि विधात्री श्रुति का श्रवण नहीं होता है तो पुरुष में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अभिधात्री तथा विनियोकत्री इन दोनों श्रुतियों में से किसी एक में भी पुरुष को अनुष्ठान के प्रति प्रेरणा देने का सामर्थ्य नहीं होता है।

विधात्रीश्रुति के उदाहरण-

यथा- ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत।¹

‘अग्निहोत्रं जुहोति’ इन उदाहरणों में जहां यजेत और जुहोति का सीधा सम्बन्ध क्रमशः ज्योतिष्टोम एवं अग्निहोत्र से हो जाता है। ‘अग्निहोत्रं जुहोति’ यहां लट् प्रत्ययमात्र विधात्री श्रुति है क्योंकि लट् का अर्थ लिङ् है (अग्निहोत्रहोमेन इष्टंभावयेत्)² और लिङादि प्रत्यय शाब्दीभावना के वाचक होते हैं, तथा लिङादि के श्रवण से प्रवर्तना होने के कारण लिङादि प्रत्यय विधायक होता है (विधत्ते इति विधात्री)- लिङ् श्रवणे ‘अयं मां प्रवर्तयति’ मत्प्रवृत्त्यनुकूलव्यापारवानयमिति नियमेन प्रतीतेः।³ विधात्री श्रुति के अभाव में कोई भी विधि नहीं हो सकती। इस प्रसंग में कुमारिल भट्ट ने तन्त्रवार्तिक में मीमांसा के सूत्र 3-1-13 की टीका में लिखा- विधात्री च तृतीयोक्ता प्रयोगो यन्निबन्धनः लिङ्लोट्त्व्यपञ्चमलकाराणां तु विधि सामर्थ्यम्। तत्रानुष्ठानकाले विधिश्रुत्यधीनः पुरुषः।⁴

यत्र तु विधिना न नियुज्यते, तत्राभिहिते, विनियुक्तेऽपि न प्रवर्तते। न ह्यसावनुष्ठानं प्रति तयोरेकयाऽपि प्रेर्यते। इदमिहास्ति, अस्येदमिति चैतन्मात्र-परिच्छेदाद्विषय कर्तव्यताबुद्ध्यनुत्पत्तेः।⁵

तव्य प्रत्यय का उदाहरण :- स्वाध्यायोऽध्येतव्यः

2. अभिधात्रीश्रुति का स्वरूप-

अभिधात्री श्रुति ही अभिधानकर्त्री है। अभिधात्री श्रुति वैदिक वाक्य में आये उन शब्दों को कहते हैं जो कोई विधान नहीं करते, परन्तु किसी वस्तुमात्र का अभिधा

1. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोग विधि प्रकरण पृ.सं. 67।

2. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह उत्पत्तिविधि प्रकरण पृ.सं. 56।

3. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह शाब्दी भावना पृ.सं. 27।

4. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 भाग-3 पृ.सं. 585 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।

5. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 भाग-3 पृ.सं. 585 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।

से कथन करते हैं। **अभिधात्री ब्रीह्यादिश्रुतिः**¹ मीमांसाकमूर्धन्यविद्वान् कुमारिल भट्ट ने अभिधात्री श्रुति के सामान्यस्वरूप का परिचय इस प्रकार दिया है। - **‘इदमिहास्ति’**² और विशेष इस प्रकार- **प्रकृतिप्रत्ययश्रुत्योः स्वस्वार्थाभिधातृत्वम्**³ (अभिधातृत्व-स्वरूपमात्रबोधोऽभिप्रेतः)⁴ अर्थात् अभिधात्री श्रुति वह है जहां अभिधावृत्ति के द्वारा पद के प्रकृति एवं प्रत्यय का अर्थ समझा जाता है, वहां श्रुति से अङ्गत्व समझने में सहायता नहीं मिलती है। और न वह विधान करती है। अभिधात्री श्रुति के द्वारा पद श्रवण होने पर अपेक्षित वस्तु का ज्ञान होता है। परन्तु यहां पर विनियोग या विधान अपेक्षित नहीं होता है।

अभिधात्री श्रुति का उदाहरण- यथा- **‘ब्रीहीन् अवहन्ति’ ‘ब्रीहीन् प्रोक्षति’**⁵ आदि में ब्रीहीन् पद का अर्थ केवल ‘धान के दाने’ हैं। यहां ब्रीहीन् पद में ब्रीहि शब्द के उच्चारण को **‘अभिधात्री श्रुति’** कहेंगे अभिधया स्वार्थं प्रतिपादयति इति अभिधात्री॥⁶

3. विनियोक्त्री श्रुति का स्वरूप-

विनियोक्त्री श्रुति उन शब्दों का ज्ञापन करती है। जिनको सुनते ही अङ्ग का अङ्गी के साथ (प्रधान पदार्थ के) साथ सम्बन्ध प्रकट हो जाता है।

विनियोक्त्री श्रुति के विषय में कुमारिल भट्ट ने अपनी तन्त्रवार्तिक में इस प्रकार कहा- **पदस्य, कारकविभक्तीनां च विनियोजकत्वम्**⁷ और जिस शब्द के सुनने से ही सम्बन्ध प्रतीत होता है वह विनियोक्त्री विधि है।

यस्य च शब्दस्य श्रवणादेव संबन्धः प्रतीयते सा विनियोक्त्री⁸

-
1. मीमांसान्यायप्रकाश न्यायबोधिनी टीका पृ.सं. 124।
 2. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 भाग-3 पृ.सं. 585 मीमांसा दर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।
 3. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 भाग-3 पृ.सं. 585 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, तारा बुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।
 4. स्वयम्।
 5. मीमांसान्यायप्रकाश न्यायबोधिनी टीका पृ.सं. 127।
 6. मीमांसान्यायप्रकाश न्यायबोधिनी टीका पृ.सं. 127।
 7. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 भाग-3 पृ.सं. 585 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।
 8. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 66।

सम्बन्धः = विनियोज्यविनियोजकभावः सम्बन्ध इत्यर्थः अथवा शेषशेषिणोरिति वा शेषः।¹

इसी प्रकार मीमांसान्यायप्रकाश व न्यायरत्नमाला में भी यही परिभाषा दी गई है विनियोक्त्रीश्रुति की यथा-

‘विनियोक्त्री त्रिधा एकाभिधानम्, एकं पदम्, विभक्तिरिति। यस्य ही शब्दस्य श्रवणादेव सम्बन्धः प्रतीयते सा विनियोगश्रुतिः’²

जिस शब्द के सुनने मात्र से अर्थात् बिना किसी अन्य की सहायता के सम्बन्ध का ज्ञान हो जाये वह विनियोक्त्रीश्रुति है। सम्बन्ध का ज्ञान तब होगा जब श्रुति से या तो अङ्ग का ज्ञान हो जाये या अङ्गी का। ‘व्रीहिभिर्यजेत’³ यहाँ ‘व्रीहिभिः’ में श्रुत तृतीया विभक्ति से यह ज्ञान होता है कि व्रीहि अङ्ग है-साधन है। किसका? याग का (‘यजेत’ से प्राप्त) इस प्रकार यहाँ तृतीया विभक्ति है विनियोक्त्रीश्रुति। ‘व्रीहीन् प्रोक्षति’⁴ यहाँ व्रीहीन् में श्रुत द्वितीया विभक्ति से ज्ञान होता है कि व्रीहि साध्य है- अङ्गी है। इसका अङ्ग कौन है? इसका अङ्ग है प्रोक्षण। इस प्रकार प्रोक्षण अङ्ग हुआ व्रीहि का। अतः जिस शब्द के सुनने मात्र से सम्बन्ध की प्रतीति हो जाती है वह शब्द है विनियोक्त्री श्रुति।

यहाँ ‘श्रवणादेव’ इस अंश के द्वारा लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान एवं समाख्या इन पाँच प्रमाणों का निरास किया जाता है जो सम्बन्ध बोध के लिये स्वस्व पूर्ववर्ती प्रमाण की अपेक्षा रखते हैं। ‘सम्बन्धः’ पद के प्रयोग होने से ‘विधात्री’ एवं ‘अभिधात्री’ इन दोनों श्रुतियों का निरास हो जाता है क्योंकि ये श्रुतियाँ सम्बन्ध का बोध नहीं करा सकती। ‘यस्य च शब्दस्य श्रवणादेव सम्बन्धः प्रतीयते’⁵ इस विनियोक्त्री के लक्षण में श्रुतिसामान्य का लक्षण- ‘निरपेक्षो रवः’ भी चरितार्थ हो जाता है तथा विनियोग विधि के लक्षण ‘अङ्गप्रधानसम्बन्धबोधको विधिर्विनियोगविधिः’⁶ से प्राप्त विनियोग के लक्षण का भी समावेश हो जाता है। विनियोक्त्री श्रुति का विषय होता है सम्बन्ध उसके स्वरूप का परिचय देते हुए भट्ट कुमारिल ने ‘अस्येदम्’ कहा है। ‘यह इसका है’ यहाँ अङ्गाङ्गी सम्बन्ध का ही कथन है। भट्ट कुमारिल के विवेचन से अभिधात्री, विनियोक्त्री एवं विधात्री के अन्तर का

1. मीमांसार्थसंग्रहकौमुदी संस्कृतव्याख्या विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 66।

2. न्यायरत्नमाला-सप्तम-प्रकरण प्रथम परिच्छेद- 5 पृष्ठ 145।

3. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोग विधिप्रकरण पृ.सं. 67।

4. मीमांसान्यायप्रकाश न्यायबोधिनी टीका पृ.सं. 127।

5. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 66।

6. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 61।

भी स्पष्टीकरण हो जाता है। विधात्री श्रुति के द्वारा पुरुष में प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। अभिधात्री श्रुति व विनियोक्त्री श्रुति दोनों का श्रवण होने पर भी यदि विधात्री श्रुति का श्रवण नहीं होता तो पुरुष में प्रवृत्ति नहीं होगी। अभिधात्री एवं विनियोक्त्री श्रुतियों में से किसी में भी पुरुष को अनुष्ठान के प्रति प्रेरित करने का सामर्थ्य नहीं होता—
‘यत्र तु विधिना न नियुज्यते, तत्राभिहिते, विनियुक्तेऽपि न प्रवर्तते। न ह्यसावनुष्ठानं प्रति तयोरेकयाऽपि प्रेर्यते। इदमिहास्ति, अस्येदमिति चैतन्मात्रपरिच्छेदाद्विषय-
कर्तव्यताबुद्ध्यनुत्पत्तेः’।¹

विनियोक्त्री श्रुति के प्रकार:-

वह विनियोक्त्री श्रुति भी तीन प्रकार की होती है— 1. विभक्तिरूपा 2. एकाभिधानरूपा और 3. एकपदरूपा।

सर्वप्रथम कुमारिल भट्ट ने श्रुतिप्रमाण के तीन प्रकारों भेदों का वर्णन किया **त्रिविधाश्रुतिः। विध्युक्तिविनियोगाख्या²**। न्यायरत्नमालाकारश्रुति के तीन प्रकारों का वर्णन करते हुए उनमें से एक विनियोक्त्री श्रुति के भी तीन भेद बताये

तत्र श्रुतिस्त्रिधा भिन्ना विध्युक्ति-विनियोगकृत्।

विनियोक्त्री त्रिधा भिन्ना तुल्यशब्दादिभेदतः॥³

विनियोक्त्री त्रिधा एकाभिधानम्, एकं पदम्, विभक्तिरिति⁴

सा च त्रिधा विभक्तिरूपा, समानाभिधानरूपा एकपदरूपा चेति⁵

सापि त्रिविधा- विभक्तिरूपा, एकाभिधानरूपा, एकपदरूपा चेति⁶

विभक्ति श्रुति के उदाहरणः इन तीनों में से सर्वप्रथम—

द्रव्यात्मिकाविभक्ति श्रुति की अङ्गता का उदाहरणः—‘व्रीहिभिर्यजेत’⁷—

धान से याग करें— व्रीहि में प्रयुक्त तृतीया विभक्ति से व्रीहि की याग की अङ्गता ज्ञात होती है वह व्रीहि की यागाङ्गता भी पुरोडाश की प्रकृति होने से ही सिद्ध

1. तन्त्रवार्तिक-3/1/13 भाग-3 पृ.सं. 585 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।
2. तन्त्रवार्तिक-3/3/14 भाग-3 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी वाराणसी वि.सं. 2044।
3. न्यायरत्नमाला- सप्तम-प्रकरण प्रथम परिच्छेद- 5 पृष्ठ 145।
4. न्यायरत्नमाला- सप्तम-प्रकरण प्रथम परिच्छेद- 5 पृष्ठ 145।
5. मीमांसान्यायप्रकाश पृ.सं. 124।
6. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 67।
7. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 67।

होती है। जैसे कि पशु की यागाङ्गता हृदय रूपी हव्य की प्रकृति होने से स्वीकृत होती है। ये मूर्त अङ्ग का उदाहरण था।

गुणात्मिका विभक्तिश्रुति की अङ्गता का उदाहरण:- ‘अरुणया एकहायन्या गवा सोमं क्रीणाति’¹-

रक्तवर्ण, एकवर्षीया गौ से सोम खरीदता है-प्रकृत वाक्य में रक्तवर्ण की क्रय की अङ्गता तृतीयाश्रुति से प्राप्त होती है। आरुण्यस्यापि तृतीयाश्रुत्या क्रयाङ्गत्वम् और वह क्रय की अङ्गता भी गौरूपी द्रव्य के विशेषण होने के कारण सिद्ध होती है। साक्षात् नहीं होती क्योंकि अरुणता गुण अपने आप में अमूर्त है।

क्रियात्मिका विभक्तिश्रुति की अङ्गता :-

अपूर्व की निष्पत्ति के लिए प्रोक्षण क्रिया की अङ्गता का उदाहरण- ‘व्रीहीन्प्रोक्षति’²- धानों का प्रोक्षण करता है- इति प्रोक्षणस्य व्रीह्याङ्गत्वम् द्वितीयाश्रुत्या- इसमें प्रोक्षण की व्रीहि की अङ्गता द्वितीया श्रुति के कारण है। तथा वह प्रोक्षण भी व्रीहि के स्वरूप को सिद्ध करने के लिए नहीं है, क्योंकि धान का स्वरूप बिना प्रोक्षण किये ही निष्पन्न है, परन्तु प्रोक्षण का प्रयोग अपूर्व के साधन के लिए किया जाता है। क्योंकि धान का प्रोक्षण किये बिना याग का अनुष्ठान करने पर अपूर्व की निष्पत्ति नहीं हो सकती।

मन्त्रात्मिका विभक्तिश्रुति की अङ्गता का उदाहरण:- ‘इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य इति अश्वाभिधानीमादत्ते’³- इस मन्त्र से घोड़े की रस्सी को पकड़ता है- इस वाक्य में भी द्वितीया श्रुति से मन्त्र की अश्वाभिधानी की अङ्गता सिद्ध होती है। यह अङ्गता भी अपूर्व की निष्पत्ति के लिए ही स्वीकृत है। अन्यथा दृष्टफल के अभाव में अश्वाभिधानी की मन्त्राङ्गता व्यर्थ हो जायेगी।

सप्तमी विभक्तिश्रुति की अङ्गता का उदाहरण :- ‘यदाहवनीये जुहोति’ इति⁴

आहवनीस्य होमाङ्गत्वं सप्तमीश्रुत्या।

इसमें आहवनीय होम का अङ्ग सप्तमी श्रुति से सिद्ध होता है

इसी प्रकार और भी विभक्ति श्रुति के द्वारा विनियोग जानने चाहिए जैसे कि-

1. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 67।
2. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 67।
3. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 68।
4. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 68।
5. अज्ञात।

‘सर्वेभ्यः कामेभ्यो दर्शपूर्णमासौ’¹⁵,

‘मैत्रावरुणाय दण्डं प्रयच्छति’¹, इति ये दोनों चतुर्थी विभक्ति श्रुति से विनियोग के उदाहरण हैं।

‘अग्नेः तृणान्यपचिनोति’² इति

यह पंचमी विभक्ति श्रुति से विनियोग का उदाहरण है

‘गोदोहनेनपशुकामस्य प्रणयेत्’³ इति

‘यजमानस्य याज्या’⁴ इति

ये दोनों षष्ठी विभक्तिश्रुति से विनियोग के उदाहरण हैं।

समानाभिधानरूपा विनियोक्त्री श्रुति अथवा (एकाभिधान रूपा विनियोक्त्री श्रुति) के द्वारा अङ्गता का उदाहरण- ‘पशुना यजेत’⁵

इस वाक्य में समानाभिधान श्रुति के दो उदाहरण हैं-

1. पशुना = पशु+टा पद में टा प्रत्यय।

‘टा’ प्रत्यय के वाच्य हैं-कारक (करण), एकत्व (संख्या) एवं पुंस्त्व (लिङ्ग)। ये तीन समान अर्थात् एक ही प्रत्यय से अभिहित होते हैं। अतः टा श्रुति है ‘समानाभिधान श्रुति’। उक्त तीनों वाच्यों में मुख्य है कारक (करणत्व) क्योंकि कारक का ही क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रहता है, संख्या आदि का नहीं। इसलिये प्रधानभूत कारक का अङ्ग एकत्व (संख्या) तथा पुंस्त्व (लिङ्ग) होते हैं।

2. यजेत = यज्+त पद में त प्रत्यय।

यज् + त- ‘त’ प्रत्यय आख्यात है क्योंकि इसमें ‘आख्यात्व’ धर्म रहता है एक (समान) ‘त’ प्रत्यय (आख्यात) का अर्थ संख्या भी है और भावना भी। अतः त प्रत्यय भावना एवं संख्या दोनों का अभिधान करने के कारण समानाभिधान श्रुति हुआ। भावना मुख्य अर्थ है तथा संख्या आदि गौण अतः संख्या भावना का अङ्ग होती है।

‘पशुना यजेत’ इति अत्र ‘पशुना’ पदे एकत्वपुंस्त्वयोः समानाभिधानश्रुत्या कारकाङ्गत्वम्। ‘यजेत’ इति आख्याताभिहितसङ्ख्यायाभावनाङ्गत्वं समानाभिधानश्रुतेः।⁶

1. तैत्तिरीयसंहिता-6/1/4/2।

2. आप. श्रौत. 6/2/3/1।

3. आप. श्रौत. 1/1/6/2।

4. अज्ञात।

5. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 68।

6. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 68।

एकपदरूपा विनियोक्त्रीश्रुति से अङ्गता का उदाहरण- 'पशुना यजेत'
इस वाक्य में यजेत- एक पदश्रुति से यह समझा जाता है कि आख्यात से अभिहित
संख्या याग का अङ्ग होती है।

एकपदश्रुत्या च यागाङ्गत्वम् समानाभिधानश्रुति है- प्रत्ययश्रुति और एक
पदश्रुति है- पदश्रुति।

वह यह श्रुतिप्रमाण लिङ्ग आदि प्रमाणों में प्रबल है। क्योंकि लिङ्ग आदि में
विनियोग कराने वाला- अङ्गता का ज्ञापक कोई शब्द साक्षात् उपस्थित नहीं होता,
अपितु उस विनियोजक शब्द की कल्पना करनी पड़ती है। अतः जबतक उन
लिङ्गादि के द्वारा गौणता बोधक शब्द की कल्पना की जाती है, तब तक प्रत्यक्ष श्रुति
के द्वारा विनियोग सम्पन्न होने से उन लिङ्गादि की आकांक्षा शक्ति समाप्त हो जाती
है। सेयं श्रुतिर्लिङ्गादिभ्यः प्रबला। लिङ्गादिषु न प्रत्यक्षो विनियोजकः शब्दोऽस्ति
किन्तु कल्प्यः। यावच्च तैर्विनियोजकशब्दः कल्प्यते तावत्प्रत्यक्षया श्रुत्या
विनियोगस्य कृतत्वेन तेषां कल्पकत्वशक्ते व्याहतत्वात्।¹

वार्तिककार ने इसी भाव को संक्षेप में इस प्रकार कहा-

यथाशीघ्रप्रवृत्तित्वाल्लिङ्गादेर्बाधिका श्रुतिः।

तथैव विनियोगेऽपि सैव पूर्वं प्रवर्तते॥²

कुछ अज्ञात³ पद्यों से और भी स्पष्ट किया है-

यावदेव हि मन्त्रार्थो मन्त्रेण प्रतिपाद्यते।

तावदेव श्रुतिर्मन्त्रं गार्हपत्यार्थतां नयेत्॥

मन्त्रार्थं मन्त्रतो बुद्ध्वा पश्चाच्छब्दं निरूप्य च।

मन्त्राकाङ्क्षावशेनेन्द्र शेषत्वे श्रुतिकल्पना॥

श्रुत्या प्रत्यक्षया पूर्वं गार्हपत्याङ्गतां गते।

निराकाङ्क्षीकृते मन्त्रे निर्मूला श्रुतिकल्पना॥

तेन शीघ्रप्रवर्तिन्या श्रुत्या लिङ्गस्य बाधनम्।

प्रत्यक्षे चानुमाने च यथा लोके बलाबलम्॥



1. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह विनियोगविधि प्रकरण पृ.सं. 78।

2. तन्त्रवार्तिक-पृ.सं. 223 मीमांसादर्शनम्, सम्पा. महाप्रभुलाल गोस्वामी, ताराबुक एजेन्सी
वाराणसी वि.सं. 2044।

3. लौगाक्षीभास्करप्रणीत अर्थसंग्रह के विनियोग विधिप्रकरण की हिन्दी व्याख्या में उद्धृत पृ.
सं. 68।

वेदों में शिक्षा का स्वरूप

-डॉ. संदीप*

वेदों में शिक्षा के विषय में बहुत से उद्धरण दिए गए हैं। जिनके द्वारा जीवन में शिक्षा का प्रयोजन सिद्ध होता है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य क्या होना चाहिए? यदि हम विचार करें, तो वेदों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की बुद्धि को विकसित करना, उसे परिष्कृत करना, उसे तीक्ष्ण बनाना, उन्नति की ओर ले जाना और महान् सौभाग्य प्राप्त करना होता है।¹ शिक्षा के अन्य उद्देश्यों में तप और साधना के द्वारा जीवन को सौम्य बनाना, तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए, वेदों को पढ़ते हुए, दीर्घायु और मेधावी होना कहा गया है।² शिक्षा के उद्देश्य में चरित्र-निर्माण, सत्य-निष्ठा, सत्याचरण, असत्य, छल-प्रपञ्च आदि का परित्याग कराना होता है। जब तक चारित्रिक शुद्धि और जीवन परिष्कृत नहीं होगा, तब तक विद्या भी फलीभूत नहीं हो सकेगी। अतः यजुर्वेद में कहा गया है कि मैं असत्य को छोड़कर सत्य को अपनाता हूँ।⁴ किसी एक लक्ष्य को लेकर उसके प्रति समर्पित भाव से जुट जाना व्रत है। यजुर्वेद में व्रत को जीवन की आधारशिला बताते हुए कहा गया है कि व्रत से मनुष्य दीक्षित होता है, दीक्षा से दक्षिण्य या प्रवीणता आती है। उस दक्षता के कारण ही मनुष्य में श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से ही जीवन के लक्ष्य रूपी सत्य ब्रह्म को प्राप्त किया जाता है।⁵ इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य- आत्मिक उन्नति करते हुए मुक्ति या ब्रह्म की प्राप्ति जानना चाहिए। इसी को संस्कृत भाषा में कहा गया है कि⁶ **सा विद्या या विमुक्तये**। अर्थात् जो मुक्ति प्रदान करे, वही विद्या है।

शिक्षा वही सफल होती है जिसमें कर्मठता की दीक्षा दी जाती है, प्रगतिशील, कर्मठ और सतत् संघर्षशील बनाना शिक्षा का उद्देश्य होता है। अतः अथर्ववेद में कहा

1. असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ) वेद-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249404
2. बृहस्पतेस्वितवर्धयै नंज्योतयै नमहतेसौभगाय।
संशितचित्संतुरंसंशिशधि॥ अथर्ववेद 7-16-1
3. तपस्तप्याम्.... श्रुतानि शृण्वन्तो'सुमेधसः। अथर्ववेद 7-61-2
4. इदमहम् अनृतात्सत्यमुपैमि। यजुर्वेद 1-5
5. व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षया पनोति दीक्षिणाम्।
दीक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ यजुर्वेद 19-30
6. तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। - विष्णु पुराण 1-19-41

गया है कि मेरी बुद्धि सदा कर्मठ हो।¹ एक मंत्र में यह भी कहा गया है कि देवता पुरुषार्थी को चाहते हैं, अकर्मण्य को नहीं।² इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान और कर्म का समन्वय करना है। अथर्ववेद ने तप और दीक्षा को राष्ट्रीय उन्नति का आधार बताया है और कहा है कि इससे ही राष्ट्र, समाज और व्यक्ति की उन्नति होती है।³ अनुशासन और समर्पण की भावना से रहित शिक्षा निरर्थक है। अतः शिक्षा का उद्देश्य है- जीवन को पूर्णतया अनुशासित बनाना और अपने लक्ष्य को सर्वथा समर्पित करने की भावना प्रतिष्ठित करना। ये दोनों गुण जहाँ होंगे, वहीं राष्ट्रीय सामाजिक और व्यक्तिगत विकास सुनिश्चित है।

शिक्षा का उद्देश्य है मनुष्य में विचार शक्ति, मनन शक्ति, चिंतन शक्ति और कर्तव्याकर्तव्य के निर्धारण करने वाली विवेक शक्ति को जागृत करना और बढ़ाना। ऋग्वेद का आदेश है कि स्वयं में दिव्य गुणों का विकास करके दूसरों में भी दैवी गुणों का विकास करो।⁴

शिक्षा का महत्त्व

शिक्षा या विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। उसके विषय में कहा गया है कि उसकी उपस्थिति सुख और शांति देती है, जीवन में माधुर्य लाती है।⁵ सरस्वती की एक माता के रूप में प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि वह सारे सुखों को देने वाली है, कल्याण करती है और सारे मनोरथ पूरे करती है। विद्या मानव को जीवन-शक्ति, प्राण-शक्ति, यश और प्रतिष्ठा देती है। सरस्वती अपने भक्तों की सभी कामनाएं पूर्ण करती है। विद्या योग क्षेम प्रदान करती है। यह मानव को अक्षय वैभव और श्री प्रदान करती है। वैदिक शिक्षा में संयम अर्थात् ब्रह्मचर्य को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसके द्वारा ही मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है और सदा हृष्ट-पुष्ट रहता है।⁶

ज्ञान का महत्त्व

वेदों में बुद्धि और ज्ञान के अर्थ में मति, सुमति, प्रमति, अनुमति और ब्रह्म आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। ब्रह्म (ज्ञान) से जीवन में पवित्रता, शुचिता और

1. अप्सस्वतीममधीरस्तुशक्र। अथर्ववेद 20-89-3

2. इच्छन्तिदेवाःसुन्वन्तुम्.....। अथर्ववेद 20-18-3

3. भद्रमिच्छन्तुऋषयः तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे। अथर्ववेद 19-41-1

4. मनुर्भवज्जनयादैव्यंजनम्। ऋग्वेद 10-53-6

5. अथर्ववेद 7-68-1 से 3 तक

6. ब्रह्मचर्येणतपसादेवामृत्युमुपाप्नत। अथर्ववेद 11-05-19

सद्भावना आती है।¹ ब्रह्म (ज्ञान) अधर्षणीय है इससे सदा प्रगति और वृद्धि होती है।² ज्ञान कवच के तुल्य है, यह मनुष्य को सभी विपत्तियों से बचाता है।³ संज्ञान को परिवार की सुख समृद्धि का साधन बताते हुए कहा गया है कि इससे परिवार में शांति रहती है, पारस्परिक द्वेष नहीं होता और घरों में देवों का निवास रहता है।⁴ अनुमति का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि यह प्रमति (सद्बुद्धि) देती है। शौर्य और पराक्रम देती है⁵ तथा दिव्य गुणों की रक्षा करती है। सुमति जीवन की रक्षक है। यह बड़ी से बड़ी विपत्तियों में और संकट के अवसरों पर मनुष्यों को सूझ-बूझ प्रदान करके उनके जीवन की रक्षा करती है।⁶

मेधा का महत्त्व-

धारणवती बुद्धि को मेधा कहते हैं। धी और मेधा में अंतर किया गया है। जो जानने और समझने की शक्ति 'धी' है। परन्तु कम्प्यूटर की तरह स्मृति में रखने की शक्ति को मेधा कहते हैं। इसमें स्मरण रखने की शक्ति प्राप्त होती है। अतः वह विद्वान् मेधावी कहता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में मेधा का बहुत गुणगान है।⁷ इन दोनों सूक्तों का सारांश यह है कि मेधा सदसस्पति है। इससे स्वभाव आदि में वक्तृत्व कला का प्रदर्शन होता है, वाग्मिता आती है, शास्त्रार्थ करने की क्षमता आती है, इसमें आश्चर्यजनक गुण है। अतः इसे अद्भुत कहा गया है। विद्वान्, ऋषि, देवगण, सभी इसकी उपासना करते हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवों की कृपा से मेधा बुद्धि प्राप्त होती है। सूर्य की किरणों में मेधा शक्ति उत्पन्न करने की शक्ति है।⁸ अतः एव प्रातः और सायं सूर्याभिमुख होकर संध्या उपासना का विधान है। ब्राह्मण, ऋषि, ब्रह्मचारी, देव और असुर मेधा का महत्त्व जानते हैं। अतः वे प्रातः सायं सूर्य की उपासना करते हैं। अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में ऋतम्भरा प्रज्ञा को मेधा का ही उत्कृष्ट रूप बताया है और कहा गया है कि ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न मनुष्य सूर्य के तुल्य तेजस्वी हो जाता है उसके सारे विषयों में अप्रतिहत गति हो जाती है।⁹ गायत्री मंत्र में सविता

1. ब्रह्मणाशुद्धाउतपूताः। अथर्ववेद 11-1-18
2. अदब्धेनब्रह्मणावावृधानः। अथर्ववेद 17-01-12
3. ब्रह्मवर्मममान्तरम्। ऋग्वेद 6-75-19
4. नोचविद्विषते'मिथः संज्ञानुपुरुषेभ्यः। अथर्ववेद 3-30-4
5. अनुमतिः सुवीरतायै, प्रमतिःदेवगो'पा। अथर्ववेद 7-20-5
6. प्रसुमतिम् ऊतये। अथर्ववेद 4-25-6
7. यजुर्वेद 32-13 से 15। अथर्ववेद 6-108-1 से 5।
8. मेधांसूर्यस्यरश्मिभिः। अथर्ववेद 6-108-5
9. मेधामृतस्यजग्रभं। अहंसूर्य'इवाजनि। अथर्ववेद 20-115-1

(सूर्य) देव की उपासना बुद्धि की वृद्धि और उसको प्रबुद्ध करने के लिए ही की जाती है।

शिक्षक के गुण-

वेदों में शिक्षक के गुण और कर्तव्यों से सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिलती है। अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त आचार्य और शिष्य की क्रियाकलाप से संबद्ध है। इसमें आचार्य के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है। साथ ही शिष्य के प्रवेश से प्रारम्भ कर के शिक्षा समाप्ति तक स्नातक के गुणों का वर्णन, उसके उत्तरदायित्व, शिक्षा प्रचारार्थ देश विदेश तक भ्रमण और सामाजिक उत्तरदायित्व का भी वर्णन है।¹

ऋग्वेद के एक मंत्र में अग्नि के रूप में शिक्षक के गुणों का वर्णन है। वेधस्-शिष्यों के चरित्र का निर्माता। अदृष्ट-दर्प या अभिमान से रहित। अग्निः- अग्नि के तुल्य तेजस्वी। विज्ञानन्-विविध विषयों का ज्ञाता। ऊर्ध्व गोनाम्-गाय के तुल्य ज्ञान रूपी दूध देने वाला। स्वाद्या पितूनाम्-विषय को स्वादिष्ट बना देने वाला। पिता-पुत्र सन्-अपने आचार्य का पुत्रवत् शिष्य होने पर भी उच्च योग्यता के द्वारा अपने आचार्यों से भी अधिक योग्य होकर उनके द्वारा भी आदरणीय होता है। वह पुत्र होते हुए भी पिता के तुल्य आदरणीय समझा जाता है।²

अथर्ववेद में शिक्षक के लिए मुख्य रूप से आचार्य शब्द का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद आदि ने शिक्षक के लिए विप्र, विपश्चित्, ब्रह्मन्, पितरः, शिक्षानरः, ब्राह्मण आदि शब्द भी मिलते हैं। ये शब्द सामान्य रूप से शिक्षक, विद्वान्, ज्ञानी, प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं।

आचार्य के गुण-

ऋग्वेद और अथर्ववेद में आचार्य के इन गुणों का वर्णन किया गया है

1. **संयमी**- आचार्य के लिए प्रथम आवश्यकता है कि वह संयमी हो और ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने वाला हो।³ वह तभी शिष्यों को संयमी बना सकेगा।
2. **वाचस्पति और वसुपति**- अथर्ववेद में आचार्य को वाचस्पति और वसोष्पति कहा गया है।⁴ वाचस्पति का अर्थ है वाणी का स्वामी अर्थात्

1. अथर्ववेद 11-5-1 से 26 तक

2. वेधाअदृष्टोअग्निर्विज्ञानन् ऊर्ध्वगोनांस्वाद्यापितूनाम्। ऋग्वेद 1-69-1, पितापुत्रःसन्। ऋग्वेद 1-69-2

3. आचार्योब्रह्मचारी। अथर्ववेद- 11-5-16

4. वाचस्पतेवसोष्पते। अथर्ववेद 1-1-2

आचार्य विविध विषयों का विद्वान हो। वसुपति का अर्थ हैं वसुओं अर्थात् अग्नि वायु आदि पञ्चतत्त्वों के गुणधर्म का ज्ञाता हो।

3. **भूतकृत्**- आचार्य ऋषि को भूतकृत् कहा गया है।¹ आचार्य शिष्यों में जीवन और चरित्र का निर्माण करके, उन्हें वास्तविक मनुष्य बनाता है। अतः उसे भूतकृत् अर्थात् मानव का निर्माता कहा गया है।
4. **आचार्य यम वरुण और सोम**- अथर्ववेद में आचार्य को मृत्यु, वरुण, सोम (औषधि) और पयस् कहा गया है।² आचार्य मृत्यु अर्थात् **यम या यमराज** है। वह कठोरता से अनुशासन का पालन कराता है और दण्ड देता है। अतः वह यमवत् प्रतीत होता है। वह **वरुण** के तुल्य शिष्य के दुर्गुणों को दूर करता है और उन्हें पाप से बचाता है, वह शिष्यों को शांति देता है। उनकी बुद्धि और शक्ति को बढ़ाता है अतः **सोम** है। वह शिष्यों के दोषों को नष्ट करता है और औषधियों के तुल्य निरोगता प्रदान करता है। अतः वह औषधि रूप सोम कहलाता है। वह छात्रों को भोजन, जलपान आदि की व्यवस्था करता है। अतः वह **पयस्** है।

शिष्य के गुण और कर्तव्य-

वेदों में शिष्य के कुछ गुणों का उल्लेख किया गया है। इन गुणों से युक्त विद्यार्थी ही शिक्षा प्राप्ति के अधिकारी होते हैं-

1. **गुरुकुलप्रवेश** - आचार्य प्रवेश से पूर्व विद्यार्थी को तीन दिन तक परीक्षण में रखता है। जो विद्यार्थी उच्च कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। उन्हें ही प्रवेश दिया जाता है और उनका उपनयन संस्कार किया जाता है।³
2. **छात्र जिज्ञासु हो**- ऋग्वेद का कथन है कि जो जिज्ञासु है और वेदादि का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उन्हें ही शिक्षा दें।⁴
3. **छात्र कर्मठ हो**- छात्र के लिए आवश्यक ही वह कर्मठ हो। जिनकी बुद्धि सक्रिय है। वही ज्ञान का अधिकारी है।⁵

1. ऋषयोभूतकृतौ। अथर्ववेद 6-108-4

2. आचार्योमृत्युर्वरुणःसोमौषधयःपयः। अथर्ववेद 11-5-14

3. आचार्यउपनयमानो रात्री'स्तिस्रउदरे'विभर्ति। अथर्ववेद 11-5-3

4. तांउशतोविबो'धय। ऋग्वेद 1-12-4

5. अज्जस्वतीममधीरस्तु। ऋग्वेद 10-42-3

4. छात्र प्रबुद्ध हो- ऋग्वेद के अनुसार जो छात्र प्रबुद्ध और तीव्र बुद्धि वाला होता है। उसी को गुरु उच्च शिक्षा प्रदान कराना चाहता है।¹
5. छात्र आज्ञाकारी हो- वेद के अनुसार आज्ञाकारी शिष्य को ही शिक्षा दी जानी चाहिए।²

आचार्य यास्क का कथन है कि विद्या एक बहुमूल्य निधि है। इसकी सुरक्षा विद्वानों को करनी चाहिए। जो गुरु-द्रोही, कुटिल-प्रकृति, ईर्ष्यालु, पर-छिद्रान्वेषी और असंयमी हैं उनको उच्च शिक्षा न दी जाए और जो प्रतिभाशाली, सच्चरित्र, अविद्रोही, संयमी और विनीत है। उसे ही विद्या रूपी निधि दी जानी चाहिए। जिससे यह विद्या सुरक्षित रहे और सफल हो।³

शिष्य के कर्तव्य-

1. वेद - अनुकूल जीवनशैली- अथर्ववेद का निर्देश है कि छात्र वेदों के आदेश के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे। ऐसा कोई कार्य न करे, जो वेद द्वारा निषिद्ध हो।⁴
2. ब्रह्ममुहूर्त में जागरण- ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाले को उषर्बुध कहते हैं। छात्र ब्रह्ममुहूर्त में उठे। जो प्रातःशीघ्र उठते हैं। उनसे सारे देव प्रसन्न रहते हैं। अर्थात् उन पर सारे देवों की कृपा बनी रहती है।⁵
3. आलसी, प्रमादी, वाचाल न हो- ऋग्वेद में आलस्य, प्रमाद और वाचालता (बहुत बोलना) को दुर्गुण बताया है। अतः छात्र के लिए निर्देश है कि वह आलस्य, प्रमाद, अतिनिद्रा और अनावश्यक बोलना छोड़ दे।⁶
4. संयमी हो- शिष्य और शिष्या दोनों के लिए आवश्यक है कि वे ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करें। ऋग्वेद के मन्त्र में प्रार्थना का कथन

-
1. शिक्षैयमस्मैदित्सेयुम् मनीषिणे। ऋग्वेद 8-14-2
 2. शिक्षैयम् इन्महयुतेदिवेदिवे। ऋग्वेद 7-32-19
 3. विद्याहवैब्रह्मणमाजगाम, गोपायमाशेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायऽनृजवेऽयताय, नमाब्रूयावीर्यवतीतथास्याम्।
यमेवविद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।
यस्तेनद्रुह्येत्कतमच्चनाहतस्मैमाब्रूयानिधिपायब्रह्मन्॥ निरुक्त 2-4
 4. संश्रुतेनगमेमहिमाश्रुतेनविराधिषि। अथर्ववेद 1-1-4
 5. विश्वान्देवान् उषर्बुधः। ऋग्वेद 1-14-9
 6. मानुनिद्राईशतमोतजल्पिः। ऋग्वेद 8-48-14

है कि कामभावना हमारी पवित्रता को नष्ट न करे।¹ कन्या ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती हुई, योग्य पति को प्राप्त होती है।² ब्रह्मचर्य का महत्त्व बताया गया है कि ब्रह्मचर्य के बल पर ही देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की।³

5. **शिष्य के चार गुण-** अथर्ववेद में शिष्य के चार गुणों का उल्लेख है। उनके द्वारा वह सब को सन्तुष्ट करता है। वे गुण ये हैं- 1. **समिदाधान-** नियमित अग्नि में समिधा की आहुति दे कर, अग्नि के द्वारा तेज को प्राप्त होना। 2. **मेखलाधारण-** कटिसूत्र धारण करना। मेखला दृढ़ निश्चय और अध्यवसाय का प्रतीक है। 3. **श्रम-कठिन** परिश्रम करना। 4. **तपस्-** द्वन्द्वों को सहन करना अर्थात् तपोमय जीवन व्यतीत करना।⁴

स्नातक के कर्तव्य-

अथर्ववेद में स्नातक के कर्तव्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। स्नातकों और शिक्षितों से लोकहित और राष्ट्रहित की बहुत अधिक आशाएं की जाती हैं कि वे राष्ट्र में नवजीवन का संचार करेंगे और अशिक्षा दूर करेंगे। प्राचीन परम्पराओं को जीवित रखेंगे, देश और विदेश में शिक्षा का प्रसार करेंगे और आसुरी शक्तियों को नष्ट करेंगे। स्नातक के कर्तव्यों को इस प्रकार से भी देखा जा सकता है-

1. **उच्चतम ज्ञान प्राप्त करें-** अथर्ववेद का कथन है कि वह ज्ञान प्राप्त करके योग्यता के शिखर पर पहुँचे। वह सबसे अधिक योग्य बने। सबसे अधिक तेजस्वी बने।⁵

2. **वाचस्पति हो-** स्नातक श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करके अपनी तेजस्विता स्थापित करे और विश्व का मार्गदर्शक बने।⁶

3. **सत्य का प्रचारक हो-** स्नातकों का उत्तरदायित्व है कि वे सत्य का प्रचार करें, जनता को आचार की शिक्षा दें और आस्तिकता की स्थापना करें।⁷ मंत्र में विप्र को ऋत का वाहक कहा गया है। ऋत शब्द सत्य, शुचिता, आस्तिकता और सदाचार का बोधक है।

1. माशिश्नदे'वा अपिगुर्द्धतनः। ऋग्वेद 7-21-5

2. ब्रह्मचर्ये'णकन्यायुवान्विन्दते'पतिम्। अथर्ववेद 11-5-18

3. ब्रह्मचर्ये'णतपसादेवामृत्युमुपाध्नत। अथर्ववेद 11-5-19

4. ब्रह्मचारीसमिधामेखलयाश्रमे'णलोकांस्तपसापिपति। अथर्ववेद 11-5-4

5. सूरिरसिर्वचो'धाअतिसमक्राम। अथर्ववेद 2-11-4

6. वाचस्पतिः विश्वस्येशान ओजसा। अथर्ववेद 20-137-5

7. विप्राऋतस्यवाहसा। अथर्ववेद 20-138-2

4. असुर नाशन, भ्रष्टाचार निवारण- स्नातक शक्ति संपन्न होकर असुर और आसुरी शक्तियों को नष्ट करे।¹ क्योंकि आसुरी शक्तियों से ही भ्रष्टाचार, आतंकवाद और असामाजिक कृत्य उत्पन्न होते हैं।

5. देवों के जन्म आदि का विवेचन- देवों (संस्कारवान् मनुष्य) और दिव्य शक्तियों (लोकोपकारक आविष्कार) को उत्पन्न करना विद्वानों का कार्य है।² कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का विवेचन और निर्धारण करना विज्ञानों का ही कर्तव्य होता है।

6. जनसामान्य को ज्ञानी और मेधावी बनाना- अथर्ववेद का कथन है कि विद्वान् जनता को आस्तिक और मेधावी बनावे।³ बुद्धि को प्रखर बनाना और उसमें सद्भावनाओं को जागृत करना। यह विद्वानों का कर्तव्य कर्म है।

शिक्षक और शिष्य का सम्बन्ध-

आचार्य और शिष्य का परस्पर सम्बन्ध पिता-पुत्र के तुल्य है। जीवन में जो माता-पिता का स्थान है। उस से बढ़कर गुरु का स्थान है। गुरु माता-पिता से भी अधिक पूज्य है। अतः कहा गया है कि “गुरुर्गरीयान् पितृतो मातृतश्च” गुरु पिता माता से बढ़कर है। आचार्य के द्वारा विद्यार्थी का उपनयन करने के बाद, विद्यार्थी का यह शिक्षा सम्बन्धित नया जन्म होता है। इसके बाद ही शिष्य वेदाध्ययन का अधिकारी बनता है। शिक्षा सम्बन्धित इस जन्म के बाद ही शिष्य को द्विज कहते हैं। अतः आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि माता-पिता केवल शरीर को ही जन्म देते हैं तथा आचार्य विद्या के द्वारा उनको शैक्षणिक जन्म देता है। यह जन्म शारीरिक जन्म से श्रेष्ठ है।⁴ शिष्य यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् 12 वर्ष गुरु के पास रहकर ज्ञानार्जन करता है। शिक्षा की समाप्ति पर छात्र स्नातक हो जाता है।

आचार्य के लिए निर्देश है कि वह जिसे सुशील, अप्रमादी, संयमी, प्रतिभाशाली और अविरोधी समझे। उसे ही उच्च शिक्षा दे और जिसे असंयमी, कुटिल और परछिद्रान्वेषी समझे उसे उच्च शिक्षा न दे।⁵ साधु प्रकृति वाले शिष्य आजीवन गुरु के भक्त रहते हैं और आचार्य की कुशलता की कामना करते हैं। अथर्ववेद में ऐसे

1. इन्द्रो'हभूत्वा असुरान्तर्ह। अथर्ववेद 11-5-7

2. विश्वदेवानांजनिमाविवक्ति। अथर्ववेद 4-1-3

3. जुनयन् ब्रह्ममेधाम्। अथर्ववेद 11-5-24

4. सविद्यातःतंजनयति। तत्श्रेष्ठजन्म। शरीरमेवमातापितरौजनयतः। आपस्तम्बधर्मसूत्र 1.1.15-17

5. यमेवविद्याःशुचिमप्रमत्तमेधाविनंब्रह्मचर्योपपन्नम्।

यस्तेनद्रुह्येत्कतमच्चनाहतस्मैमाब्रूयानिधिपायब्रह्मन्। निरुक्त 2-4

शिष्यों के लिए कहा गया है कि वे यज्ञ के पश्चात् अग्निदेव से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें दीर्घायु करे और आचार्य को अमर बनावे।¹

कुछ शिष्य दुष्ट प्रकृति के भी होते हैं। जो गुरु का आदर नहीं करते। निरुक्तकार ने ऐसे शिष्यों की निंदा की है, और कहा है कि उन्हें गुरु का कभी भी आशीर्वाद और संरक्षण प्राप्त नहीं होता है। ऐसे शिष्यों की विद्या भी सफल नहीं होती है।²

महाभारत में भी छः कृतघ्नों में ऐसे शिष्यों का उल्लेख है। जो शिक्षा प्राप्त करके आचार्य का अपमान करते हैं।³ कृतघ्नता महान् दुर्गुण है। कृतघ्न को अपने कुकृत्य का दण्ड अवश्य मिलता है। अतः आचार्य का सदा आदर करना चाहिए और उनके अनुसार प्रियाचरण करते रहना चाहिए।

शिक्षण विधि-

वेदों में इस विषय की सामग्री अत्यन्त अल्प है। कुछ प्रसंग प्राप्त होते हैं। उनके आधार पर शिक्षा विधि की रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है-

1. **आवास व्यवस्था-** वैदिक काल में गुरुकुलों में आवास व्यवस्था प्रचलित थी। उपनयन संस्कार के बाद शिष्य आचार्य के संरक्षण में रहता था। छात्रों के रहने खाने पीने आदि की पूरी व्यवस्था आचार्य के अधीन होती थी। गुरुकुल नगर आदि से बाहर एकांत स्थान में होते थे। वहीं पर शिष्य को शिक्षा की समाप्ति तक रहना पड़ता था।
2. **शिक्षा का प्रारम्भ-** आचार्य के द्वारा तीन दिन के परीक्षण के पश्चात् उत्पन्न होने वाले ब्रह्मचारी का प्रवेश होता है। उत्तीर्ण छात्र का वेदारम्भ संस्कार होता है। इसके साथ ही शिक्षा प्रारम्भ होती है। शिक्षा का प्रारम्भ व्रत की दीक्षा से होता है। अग्नि को साक्षी मानकर व्रत लिया जाता है कि मैं असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण करूंगा, असत्य भाषण, असत्य व्यवहार और असद्विचार आदि का परित्याग करके सत्य मार्ग को अपनाता हूँ। साथ ही परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि मैं अपने इस व्रत को पूर्ण करने में सफल होऊँ।⁴ इस विधि के साथ उसे गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है। गायत्री मंत्र का अर्थ उसे हृदयंगम कराया

-
1. आयुस्मासुधेहि - अमृतत्वमाचार्याय। अथर्ववेद 19-64-4
 2. अग्नेव्रतपतेव्रतंचरिष्यामि तच्छेकेयंतन्मे'राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि। यजुर्वेद 1-5
 3. अध्यापिताये गुरुनाद्रियते शिष्यावाचामनसा कर्मणा वा।
यथैव तेन गुरोर्भोजनीयाः, तथैव तान् भुनक्ति श्रुतं तत्। निरुक्त 2-4
 4. षडेते ह्यवमन्यते नित्यं पूर्वोकारिणाम्। आचार्यशिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्। महाभारत

जाता है। वह नित्य प्रति गायत्री मंत्र के द्वारा सच्चिदानन्द स्वरूप जगदुत्पादक देव परमात्मा के उत्कृष्ट तेज को अपने जीवन में धारण करने के लिए समर्पण भाव वाला होकर उपासना की रीति से ईश्वर का सेवन करता है। ईश्वर से सदा ही उत्तम बुद्धि की कामना व सत्कर्मों को करता रहता है।

3. **स्त्री शिक्षा**— अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि बालकों के तुल्य बालिकाओं की भी शिक्षा की व्यवस्था वैदिक काल में प्रचलित थी। उनके यज्ञोपवीत की व्यवस्था थी। और वे ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हुए भी वेदादि का अध्ययन करती थी। शिक्षा की समाप्ति पर वे स्नाति का हो जाती थी और योग्य वर से विवाह करती थीं।¹ स्नातिका होने पर उनके लिए दो मार्ग थे। विवाह करें या आजन्म अविवाहित रहकर ब्रह्मवादिनी बनें। ब्रह्मवादिनी स्त्रियां ही गार्गी आदि के तुल्य शास्त्रार्थ विदुषी वेदवित् और मंत्र द्रष्टा होती थीं।

ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि स्त्रियां ब्रह्मा हो सकती हैं।² इसका अभिप्राय यह है कि स्त्री आचार्या हो सकती है। यज्ञादि में ब्रह्मा का आसन ग्रहण कर सकती है। विभिन्न संस्कार करा सकती है। और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में उच्चतम पद की अधिकारिणी हो सकती है। प्राचीनकाल में विदुषी स्त्रियां यज्ञादि में शास्त्रार्थ करती थीं और प्रवचन देती थीं। ऋग्वेद में इंद्राणी का स्वयं कथन है कि मैं ज्ञानियों में अग्रगण्य और मूर्धन्य हूँ। मैं उच्च कोटि की वक्ता हूँ।³ इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा भी दी जाती थी।

अथर्ववेद में इंद्राणी का एक सेनापति के रूप में वर्णन है। वह सेना के आगे आगे चलती है। वह अजय और अदृश्य है। वह धनुष-बाण लेकर शत्रुओं को काटते हुए आगे बढ़ती है।⁴ ऋग्वेद में स्त्री सेना का भी उल्लेख है। असुरों की स्त्री सेना युद्ध में इंद्र से लड़ी।⁵ तैत्तिरीय संहिता में एक महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि इंद्राणी सेना की देवता है। वही सेना में प्राण फूंकती है। उसके नेतृत्व में निर्बल सेना भी सबल हो जाती है।⁶

-
1. ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानं विन्दते पतिम्। अथर्ववेद 11-5-18
 2. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। ऋग्वेद 8-33-19
 3. अहं केतु रहं मूर्धा - अहमुग्रा विवाचनी। ऋग्वेद 10-159-2
 4. इन्द्राण्येतु प्रथमा जीता मुषिता पुरः। अथर्ववेद 1-27-4
 5. स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे। ऋग्वेद 5-30-9
 6. इन्द्राणि वै सेनायै देवता। सैवास्य सेना संशयति। तैत्तिरीयसंहिता 2-2-8-1

4. **गुरु दक्षिणा-** वैदिक काल में एक प्राचीन परम्परा थी कि शिक्षा की समाप्ति पर शिष्य अपने आचार्य को अपनी श्रद्धा भक्ति के अनुसार जो कुछ भी उचित समझता था। वह उसे गुरु को सादर समर्पित करता था। इसमें फल-फूल से लेकर वस्त्र, आभूषण, स्वर्ण आदि सब कुछ सम्मिलित था। इसमें कोई बाध्यता नहीं थी। ऋग्वेद में गुरु को धन आदि के रूप में दक्षिणा देने का निर्देश है।¹

शिक्षा के विषय-

अथर्ववेद में शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न विषयों का उल्लेख मिलता है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी² गोपथ ब्राह्मण में विविध विद्याओं को वेद नाम देते हुए पांच वेदों का उल्लेख किया गया है- सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद, पुराणवेद।³

छांदोग्य उपनिषद् में एक रोचक प्रसंग उठाकर विविध विधाओं का उल्लेख किया गया है महामुनि सनत्कुमार के पास नारद मुनि पहुंचते हैं और उनसे कहते हैं कि मैंने ये सभी विद्याएं पढ़ी हैं। परन्तु मुझे आत्मज्ञान नहीं प्राप्त है। मैं मंत्रवित् हूँ आत्मवित् नहीं। मुझे आत्मज्ञान कराइये नारद मुनि ने पढ़ी हुई विद्याओं का वर्णन इस प्रकार किया है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण (पुरातत्त्व), वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष), पितृ-विद्या (नृवंश-विज्ञान), राशि-विद्या (गणित शास्त्र), दैवविद्या (वर्षा विज्ञान), निधि विद्या (खनिज शास्त्र), वाकोवाक्य (विधि एवं तर्कशास्त्र), एकायन (नीतिशास्त्र), ब्रह्मविद्या (अध्यात्म), भूत-विद्या (जंतु शास्त्र), क्षत्र-विद्या (शस्त्रविद्या), नक्षत्र विद्या (ज्योतिष), सर्पविद्या (विष-विज्ञान), देवजन विद्या (गंधर्वविद्या)।⁴ इन विषय सूची से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में शिक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। प्रत्येक मनुष्य अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार कुछ चुने हुए विषय ही पढ़ सकता था। वर्तमान युग विशेषज्ञता का युग है। अतः व्यक्ति कुछ विशिष्ट विषयों में ही विशेषज्ञता प्राप्त करता है।

भारतीय संस्कृति आचार, शील और प्रकृति-प्रेम प्रधान है। आदर्श शिक्षा में नैतिक गुणों का समावेश अनिवार्य है। प्रायः सभी भारतीय शिक्षाविदों ने शिक्षा में

-
1. योवांतेशिक्षात्तस्मचिकित्वात्रयिंदध्यस्व। ऋग्वेद 1-68-6
आचार्यायप्रियं धनम्। तैत्तिरीय उपनिषद् 1-11
 2. अथर्ववेद 15-6-8 और 11
 3. पञ्चवेदान्निर्मित - सर्पवेदं पिशाचवेदम् असुरवेदम् इतिहासवेदं पुराणवेदमिति। गोपथ-1-1-10
 4. छान्दोग्योपनिषद् 7-1-2

नैतिक शिक्षा को प्रमुखता दी है। आज का युग अर्थ प्रधान है अतः अनिवार्य है कि शिक्षा अर्थकरी हो। इसके लिए उच्चतर माध्यमिक तथा हस्तशिल्प की शिक्षा, रुचि के अनुकूल अनिवार्य होनी चाहिए। आजकल विज्ञान और तकनीकी शिक्षा पर बहुत बल दिया जा रहा है। यह उचित है इससे विकास और स्वावलम्बन को बल मिलता है। संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति का मूल है। यही एक भाषा समस्त भारत को एकता के सूत्र में बांधने के लिए समर्थ है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक आज भी इसका प्रचलन भारतीय एकता का सूचक है। विच्छिन्न होते हुए वैदिक संस्कृति के तंतु को पुनः सुदृढ़ किया जाना वर्तमान समय की आवश्यकता है। आज के मानव का चिंतन - स्तर प्रतिदिन गिरता जा रहा है। यह चिन्ता की बात है। जिस राष्ट्र में विचारकों और चिंतकों की न्यूनता होगी। वह राष्ट्र कभी विश्व में अग्रगण्य नहीं हो सकता। हमारे शिक्षा शास्त्रियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।



आत्महत्या की प्रवृत्ति के निवारण में योग की भूमिका

देवेश कुमार*

डॉ. ऊधम सिंह**

शोध सारांश- वर्तमान परिवेश में मनुष्य को अनेक भौतिक सुख-साधन प्राप्त हैं। इन सुख-साधनों की प्राप्ति के बाद भी मनुष्य की तृष्णा और अधिक प्रबल होती जा रही है। इस तृष्णा की तृप्ति व इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति निरन्तर कार्यरत है। इस प्रतिस्पर्धा के युग में सभी व्यक्ति एक-दूसरे से आगे निकलने की दौड़ में लगे हैं। जिसके फलस्वरूप मनुष्य के नैतिक मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। निरन्तर प्रबल हो रही चेष्टाओं को पूरा करने के लिए मनुष्य विभिन्न प्रकार के कुकृत्य करता है फिर भी जब ये इच्छाएँ पूरी नहीं होती तो व्यक्ति तनाव ग्रस्त हो जाता है। उस तनाव के कारण वह आत्महत्या जैसे कृत्यों की ओर कदम बढ़ाता है। आत्महत्या की प्रवृत्ति एक मानसिक रोग है। जिसके अनेक कारण हैं आत्महत्या से बचने के लिए व्यक्ति को अपने व्यवहार में परिवर्तन करने होंगे उसे महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में दिये गए नैतिक मूल्यों पर आधारित तथ्यों को अपनाना होगा, जिसमें यम-नियम, आसन, प्राणायाम, भावना चतुष्टय, ध्यान आदि शामिल हैं। इन सभी बातों को जीवन में अपनाने पर निश्चित ही व्यक्ति को आत्महत्या जैसे विचार नहीं आएंगे, वह उन परिस्थितियों से निकल पाएगा जो आत्महत्या की ओर प्रेरित करती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में महर्षि पतंजलि कृत योग-दर्शन में दिये गए नैतिक मूल्यों पर आधारित तथ्यों को सुझाया गया है जिन्हें अपने जीवन में अपनाने पर मनुष्य निश्चित ही आत्महत्या की प्रवृत्ति से बचा रह सकता है।

मुख्य बिन्दु :- आत्महत्या, योग, निवारण, आदि।

प्रस्तावना- जैसा की हम जानते हैं कि आज का युग वैज्ञानिक युग है। इस वैज्ञानिक युग में मानव को अनेक प्रकार के भौतिक सुख-साधन प्राप्त हैं, किन्तु इन

* शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।

** असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार।

भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति के बाद भी मनुष्य जीवन में शांति और आनन्द नहीं है। आज हम देखते हैं कि जितने सुख-साधन हमें प्राप्त हैं हमारी आकांक्षाएँ व इच्छाएँ और अधिक की प्राप्ति के लिए प्रेरित हैं। जिन्हें पूरा करने के लिए व्यक्ति दिन-रात कार्य में व्यस्त रहता है। और जब वे इच्छाएँ पूरी नहीं होती तो वह हताश हो जाता है और आत्महत्या जैसे कृत्यों की ओर कदम बढ़ाता है। प्रतियोगिता आधारित इस परिदृश्य में सभी एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में निरत हैं। यह प्रतियोगिता किसी एक क्षेत्र में नहीं अपितु प्रत्येक क्षेत्र में है। वह शिक्षा का क्षेत्र हो या खेल का, कृषि क्षेत्र हो या राजनीतिक, व्यापारिक क्षेत्र हो या रोजगार या बॉलीवुड की दुनिया, सभी क्षेत्रों में प्रतियोगी अपने विपक्षी को पीछे छोड़ कर आगे निकलना चाहते हैं। वह ये धारणा अपने मन में बना लेते हैं कि यदि हम ऐसा न कर पाये तो हम बहुत बड़ी गलती कर बैठेंगे और जब व्यक्ति की ये इच्छाएँ पूरी नहीं होती तब वह अपने जीवन से हताश-निराश होकर आत्महत्या का अनुभव करता है। तभी उसके मन में आत्महत्या का विचार उत्पन्न होता है। कभी-कभी व्यक्ति को अपने किए हुए कार्यों से घृणा होने लगती है तब वह अपने आपको समाज में स्थापित नहीं कर पाता, वह स्वयं को सजा के रूप में आत्महत्या को चुनता है। जब व्यक्ति अकेलेपन का अनुभव करता है तब भी वह आत्महत्या की ओर बढ़ता है, वह अपने जीवन को निरर्थक समझता है। आत्महत्या एक मानसिक रोग ही है जो अचानक से होने वाली प्रक्रिया है यह बहुत तेजी से घटित होती है इसमें व्यक्ति के सोचने समझने की क्षमता ही नष्ट हो जाती है, व्यक्ति को कुछ और विकल्प नहीं दिखता उसे अपने जीवन को समाप्त करना ही एकमात्र रास्ता दिखाई देता है। यह प्रक्रिया इतनी तेज होती है कि व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि उसको क्या करना है? और वह क्या कर रहा है? भारत में आत्महत्या की कोशिश करना एक दण्डनीय अपराध है जिसके लिए भारतीय संविधान में भारतीय दंड संहिता की धारा-309 के तहत आत्महत्या को अपराध माना गया है। जिसमें सजा का प्रावधान है किन्तु फिर भी यह नहीं रुकती चूँकि यह मानसिक प्रक्रिया है। जब तक हम मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होंगे तब तक इससे नहीं बचा जा सकता। आत्महत्या के कारणों से बचने के लिए व्यक्ति को अपने व्यवहार में परिवर्तन करने होंगे उसे महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में दिये गए नैतिक मूल्यों पर आधारित तथ्यों को अपनाना होगा, जिसमें यम-नियम, आसन, प्राणायाम, भावना चतुष्टय, ध्यान आदि शामिल हैं। इन सभी बातों को जीवन में अपनाने पर निश्चित ही व्यक्ति को आत्महत्या जैसे विचार नहीं आएंगे, उसमें अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने की क्षमता आ जायेगी वह उन परिस्थितियों से निकल पाएगा जो आत्महत्या की ओर प्रेरित करती हैं।

आत्महत्या के कारण:- आत्महत्या के प्रमुख कारणों में तनाव एवं अवसाद है। अत्यधिक तनाव होने के कारण ही व्यक्ति आत्महत्या की ओर प्रवृत्त हो जाता है। सतत मानसिक तनाव एवं अवसाद भी आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है। तनाव एवं अवसाद के अतिरिक्त भी अन्य कारण होते हैं जो आत्महत्या को प्रेरित करते हैं। ये कारण जरूरी नहीं कि एक साथ ही हों इनमें से किसी एक की अधिकता होने पर भी व्यक्ति आत्महत्या की ओर कदम बढ़ाता है। कुछ प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं:-

भावनात्मक कारण :-

करीबी का दूर होना- जब किसी व्यक्ति का कोई करीबी अचानक दूर हो जाता है जैसे किसी की मृत्यु हो जाना, तलाक हो जाना या प्रेम-संबंधों के चलते दूरियाँ आना। ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति तनाव में आता है जो व्यक्ति को आत्महत्या की ओर प्रेरित करता है।

स्वाभिमान- जब किसी बात के चलते किसी व्यक्ति के स्वाभिमान में कमी आती है। जैसे किसी स्थान विशेष पर उसको ऐसा अनुभव हो की समाज में उसकी प्रतिष्ठा कम हो गयी है या किसी प्रकार की ठेस पहुँची है। तब ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति स्वयं को समाज में स्थापित नहीं कर पाता और आत्महत्या की ओर कदम बढ़ाता है।

अलगाव- जब व्यक्ति स्वयं को समाज से भिन्न समझने लगता है उसे ऐसा अनुभव होता है की अब समाज में उसका कोई अपना नहीं है, व्यक्ति को अकेलेपन का अनुभव होने लगता है। व्यक्ति का मोह समाज से भंग होने लग जाता है तब उसमें आत्महत्या की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

चिन्ता- जब व्यक्ति किसी कार्य विशेष को अपनी जिम्मेदारी समझता है और वह उस जिम्मेदारी को सही से पूर्ण नहीं कर पाता तो चिन्ता उसे घेर लेती है तब वह लंबे समय तक चिन्तन करता रहता है जो चिन्ता, आत्महीनता तथा ग्लानि के रूप में सामने आती है। चिन्ता बहुत तेजी से तनाव उत्पन्न करती है और उसी के चलते व्यक्ति आत्महत्या जैसे कृत्य कर देता है।

कुण्ठा- जब व्यक्ति की आकांक्षाएँ अत्यधिक होती हैं वह उनको पूरा करने के लिए लगातार कार्य भी करता है किन्तु किन्हीं कारणों से आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होती व्यक्ति को हताशा ही मिलती है तब व्यक्ति कुंठित हो जाता है। कुंठित मानसिकता वाला व्यक्ति आत्महत्या की ओर प्रेरित होता है।

भय- जब व्यक्ति किसी ऐसे कार्य को अंजाम देता है जो समाज में गलत

माना जाता है। भयग्रस्त होने के कारण वह उस कार्य की सच्चाई को समाज के सामने न आने के लिए अनेक कार्य करता है। भय के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण वह तनाव और अवसाद में प्रवेश कर अंत में आत्महत्या को चुन लेता है।

आत्मग्लानि- जब व्यक्ति समाज से छुप कर किसी ऐसे कार्य को करता है जो निकृष्ट होता है। जब उसे इस बात का एहसास होता है की जो उसने किया है वह अत्यंत ही घृणित है तब उसे आत्मग्लानि होती है। उसी आत्मग्लानि के चलते वह तनाव में आ जाता है और आत्महत्या की ओर कदम बढ़ाता है।

भौतिक कारण :-

शारीरिक स्वास्थ्य:- जब व्यक्ति किसी असाध्य रोग के कारण अत्यंत पीड़ित होता है। तब वह उस पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या की ओर कदम बढ़ा देता है।

शारीरिक अंग का भंग होना- व्यक्ति के किसी अंग विशेष की क्षति हो जाती है और उसकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं रहता है तब भी व्यक्ति आत्महत्या की ओर प्रेरित होता है।

सामाजिक कारण :-

पारिवारिक कारण- पारिवारिक कलह होने के कारण भी व्यक्ति मानसिक रूप से दबाव का अनुभव करता है जिसके कारण उसमें आत्महत्या की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

अभिभावकों का दबाव- अभिभावकों द्वारा बच्चों पर लगातार दबाव बनाए रखना, जैसे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने का दबाव, विशेष स्थान पर जाने या ना जाने का दबाव बच्चों में आत्महत्या की प्रवृत्ति को जन्म देता है।

अध्यापकों का दबाव- अध्यापकों का अपने छात्र-छात्राओं पर पढ़ाई व काम को लेकर लगातार दबाव बनाना भी तनाव उत्पन्न करता है। विभिन्न संस्थानों में अपने स्कूल कॉलेज का परिणाम सुधारने के लिए बच्चों पर लगातार दबाव बनाया जाता है जिससे उनमें तनाव उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में बच्चों द्वारा आत्महत्या को अपनाया जाता है।

सामाजिक प्रताड़ना- जब किसी व्यक्ति को समाज में रंग, जाति, लिंग, समुदाय, अमीर-गरीब तथा क्षेत्र आदि के नाम पर प्रताड़ित किया जाता है तब भी व्यक्ति आत्महत्या की ओर अग्रसर हो जाता है।

आर्थिक कारण :-

आर्थिक हानि- जब किसी व्यक्ति को व्यापार, उद्योग आदि में अचानक से हानि हो जाती है तब व्यक्ति उस आर्थिक दबाव को नहीं झेल पाता और आत्महत्या की ओर कदम बढ़ाता है।

आर्थिक विपन्नता- जब व्यक्ति के पास परिवार चलाने के लिए पर्याप्त धन नहीं होता वह आर्थिक तंगी से जूझ रहा होता है तब आर्थिक तंगी के कारण भी व्यक्ति के मन में आत्महत्या करने के विचार उत्पन्न होते हैं।

कर्जधारी होना- जब व्यक्ति बैंक, साहूकारों से कर्ज लेकर अपना जीवन यापन करता है और उस कर्ज की अदायगी समय से नहीं कर पाता है तब बैंक एवं साहूकारों द्वारा धन चुकाने का दबाव बनाए जाने के कारण व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है जैसे किसान, उद्योगपति आदि।

आत्महत्या की प्रवृत्ति का योगिक प्रबंधन:- आत्महत्या एक प्रकार से स्वयं की सत्ता को नकारने के परिणाम के रूप में सामने आती है। आत्महत्या जैसी मानसिक प्रवृत्ति को रोकने के लिए योग के अभ्यास कारगर हो सकते हैं। योग का प्रारम्भ स्वयं के उपस्थित होने का अहसास सजगता, जागरूकता के साथ प्रारम्भ करता है। आत्महत्या की प्रवृत्ति एक मानसिक रोग है। इससे बचने के लिए भी हमें मानसिक रूप से दृढ़ होना पड़ेगा। योग शरीर के साथ-साथ मन पर भी प्रभाव डालता है जिससे हमारी शारीरिक व मानसिक शक्ति दृढ़ होती है। महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन में मानसिक स्थिति को दृढ़ करने के लिए विभिन्न आयाम बताए गए हैं।

जैसे:- यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, भावना चतुष्टय आदि।

यम:- यमों के अभ्यास से हम अपने व्यवहार पर नियंत्रण रख सकते हैं। दैनिक जीवन में इनका अभ्यास किया जाए तो आत्महत्या जैसी प्रवृत्ति को रोका जा सकता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, तथा अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।¹ जिनका वर्णन महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में किया है।

अहिंसा- अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्रकार का कष्ट न देना। पतंजलि कहते हैं कि जब हम किसी को कष्ट नहीं देते हैं तो हमें भी कष्ट नहीं मिलता है। अहिंसा का पालन करने से सभी प्राणी हमारे प्रति बैर त्याग देते हैं।² हम चिंता एवं तनाव से मुक्त रहते हैं जिससे आत्महत्या जैसे विचार नहीं आते।

1. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥ योग दर्शन 2/30॥

2. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः॥ योग दर्शन 2/35॥

सत्य- पतंजलि कहते हैं कि जब हम निरंतर सत्य का पालन करते हैं तो हमारे मुख से जो भी वाणी निकलती है वह स्वतः सत्य हो जाती है।¹ यदि हम एक झूठ बोलते हैं तो उस एक झूठ को छिपाने के लिए हमें बार-बार झूठ बोलना पड़ता है जो हमारे तनाव का कारण बनता है। जब व्यक्ति का झूठ लोगों के सामने आता है तो आत्मग्लानि होती है जिससे व्यक्ति आत्महत्या करने की सोचने लगता है। सत्य बोलने से मन पवित्र होता है। व्यक्ति को सदैव सत्य बोलना चाहिए जिससे विचारों भावनाओं के स्तर पर उलझा हुआ न हो और वह आत्महत्या जैसे कृत्यों से बच जाए।

अस्तेय- अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। अर्थात् हमें कभी-भी किसी भी वस्तु की चोरी नहीं करनी चाहिए। जब हम अस्तेय का पालन करते हैं तो हमारे सामने रत्न की पिटारियाँ खुल जाती हैं² अर्थात् सभी प्रकार का धन हमारे सामने प्रकट हो जाता है। चोरी करने से हमारे मन में एक प्रकार का भय बना रहता है। मनुष्य में चोरी करने की प्रवृत्ति मन और भावनाओं को अशांत कर देती है। चित्त कलुषित हो जाता है। चोरी करने के उपरांत चोर हमेशा सोचता है कि वह पकड़ा न जाए, किसी को पता न चल जाए कि उसने चोरी की है इसी उधेड़बुन में रहते हुए हर पल चिंतित, व्यथित रहता है। जब लोकलाज, मान प्रतिष्ठा पर बात आती है तो आत्महत्या के विचार उत्पन्न हो जाते हैं। अतः ऐसे निकृष्ट विचार उत्पन्न न हों इसके लिए हमें चोरी न करने का भाव जागृत करना चाहिए। अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति का मन शांत रहता है।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य का पालन करने से व्यक्ति की बुद्धि का विकास होता है। वीर्य लाभ होता है जिससे हमारी स्मृति भी अच्छी होती है³, ब्रह्मचर्य के विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से देवताओं ने मृत्यु पर विजय पायी है और उसी ब्रह्मचर्य से इन्द्र ने देवताओं पर राज किया है।⁴ ब्रह्मचर्य का पालन करने से व्यक्ति की ऊर्जा नष्ट नहीं होती जिससे व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक स्थिति दृढ़ एवं स्वस्थ रहती है। शारीरिक व मानसिक स्वस्थता होने पर व्यक्ति कष्टों से बाहर निकाल जाता है और आत्महत्या जैसे हीन विचार उसके मन में नहीं आते हैं।

1. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥ योग दर्शन 2/36॥

2. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥ योग दर्शन 2/37॥

3. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः॥ योग दर्शन 2/38॥

4. ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमपाप्नतः इन्द्रोहः ब्रह्मचर्येण देवेभ्यस्वराभरत्॥ अथर्ववेद 11/5/19॥

अपरिग्रह- अपरिग्रह से तात्पर्य है आवश्यकता से अधिक संपत्ति न रखना। हमें जितने की आवश्यकता हो केवल उतनी ही संपत्ति रखनी चाहिए किन्तु वर्तमान समय में मनुष्य की इच्छाएं एवं आकांक्षाएँ अधिक प्रबल होती जा रही हैं। धन संपत्ति आने के साथ-साथ इससे जुड़े विकार भी मनुष्य को घेरने लगते हैं। रामकृष्ण परमहंस कहते थे की मनुष्य के मार्ग में कंचन और कामिनी ही सबसे बड़ी बाधा है। मनुष्य के चित्त को विकार ग्रस्त होने से रोकने के लिए अपरिग्रह का पालन करना चाहिए।

नियम:- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।¹ जिनका वर्णन महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में मिलता है।

शौच- शौच का अर्थ है शुद्धि या सफाई। महर्षि पतंजलि सभी प्रकार से शरीर की बाह्य शुद्धि के साथ-साथ आंतरिक शुद्धि की बात करते हैं।² अर्थात् वे किसी भी प्रकार के द्वेष, क्लेश से मुक्त रहने की बात करते हैं। जब हम चिंता, कुंठा, तनाव आदि से मुक्त रहेंगे तब हमारे मन में आत्महत्या जैसे विचार नहीं आएंगे।

संतोष- संतोष का अर्थ है जो हमारे पास है उसी में खुश रहना अर्थात् संतुष्ट रहना। जब किसी व्यक्ति को यह असंतुष्टि होने लगती है कि मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। तब उसे यह बताया जाए की जो उसके पास है वो न जाने कितने व्यक्तियों के पास नहीं है। संतोष से बड़ा कोई सुख नहीं होता है जैसे पतंजलि ने कहा है कि संतोष से उत्तम सुख कुछ और है ही नहीं।³ संतोषी व्यक्ति में आत्महत्या की प्रवृत्ति पनपने का प्रश्न ही नहीं उठता। शारीरिक अंग भंग होने, आर्थिक हानि आदि होने पर हमें संतोष करना चाहिए संतोष का भाव चित्त के विचलन को शीत करता है।

तप- तप का अर्थ है किसी भी कार्य को सजगता के साथ मेहनत और लगन से पूरा करना। हमें गलत कार्यों को छोड़ देना चाहिए, अच्छे कार्य करने चाहिए, ये ही हमारा तप है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि तप से शरीर और इंद्रियों की शुद्धि होती है।⁴ जिससे हमारा मन व शरीर स्वस्थ व तनाव मुक्त रहता है। तप से कष्टों को सहने की क्षमता आ जाती है, घात-आघात को सहन कर व्यक्ति आगे बढ़ जाता है। तपस्या ही है जो हमें समस्याओं से निकलने का मार्ग प्रशस्त करती है। तपस्वी विचारधारा के व्यक्ति में आत्महत्या के विचार उत्पन्न ही नहीं होते हैं।

1. शौचसंतोषतपस्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥ योग दर्शन 2/32॥

2. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च॥ योग दर्शन 2/41॥

3. संतोषादनुत्तमः सुखलाभः॥ योग दर्शन 2/42॥

4. कार्येन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयातपसः॥ योग दर्शन 2/43॥

स्वाध्याय- सद्ग्रंथों का पठन-पाठन, मंत्रों के जप को स्वाध्याय कहा गया है। मन को उत्कृष्टता, उज्ज्वलता की ओर ले जाने वाला उपाय स्वाध्याय है। सद्ग्रंथों के पठन-पाठन से वैचारिक उलझन सुलझती है, भावनाओं का विचलन शांत होता है। अतः निकृष्टता के सभी विचार स्वाध्याय करने वाले व्यक्ति के मन में प्रभावी नहीं होते हैं। महर्षि पतंजलि ने कहा है कि स्वाध्याय के पालन से ईष्ट देवता की प्राप्ति होती है¹।

ईश्वर प्राणिधान- अपने किए गए कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित करने के भाव को ईश्वर प्राणिधान कहा गया है। यह धारणा ईश्वर प्राणिधान कहलाती है। महर्षि पतंजलि ईश्वर प्राणिधान का फल बताते हुए कहते हैं कि ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है² ऐसी भावना आने पर व्यक्ति के मन में आत्महत्या जैसे विचार नहीं आएंगे। मनुष्य अपने विचार और भावनाओं को किसी एक स्थान पर स्थित कर सकता है तो वह ईश्वरीय सत्ता है। ईश्वर के होने का अर्थ ही हमारा कोई सहायक है, जो हमें इस भवसागर से पार उतारेगा जब व्यक्ति का यही भाव प्रगाढ़ता ले लेता है तो ईश्वर प्राणिधान हो जाता है।

आसन- यम-नियमों का पालन करने से मानसिक दृढ़ता आती है। मानसिक दृढ़ता लाने के लिए शरीर का सुदृढ़ होना आवश्यक है। शरीर की दृढ़ता के लिए महर्षि घेरण्ड आसन का अभ्यास बताते हैं। आसन के अभ्यास से दृढ़ता आती है³ स्वामी स्वात्माराम जी आसन के लाभ के रूप में बताते हैं कि आसन के अभ्यास से शरीर पतला, अरोगी तथा अंगों में हल्कापन आता है।⁴ महर्षि पतंजलि स्थिर होकर सुख पूर्वक बैठने को आसन की संज्ञा देते हैं⁵ और आसन के फल के रूप में बताते हैं कि आसन से द्वंद्वों को सहने की क्षमता आ जाती है⁶ अर्थात् किसी भी प्रकार के कष्ट व्यक्ति को नहीं सताते हैं। जब व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ होगा शरीर में दृढ़ता होगी तब व्यक्ति किसी भी कार्य को करने में सक्षम होगा। उसके मन में शारीरिक अक्षमता या अपंगता को लेकर नकारात्मक विचार उत्पन्न नहीं होंगे। वह सभी कार्यों का निष्पादन अच्छे से कर सकेगा उसके मन में आत्महत्या जैसे विचार उत्पन्न नहीं होंगे।

-
1. स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः॥ योग दर्शन 2/44
 2. समाधिसिद्धिरीश्वरप्राणिधानात्। योग दर्शन 2/45
 3. आसनेन भवेद्दृढम्। घेरण्ड संहिता 10
 4. कूर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्। हठप्रदीपिका 1/17
 5. स्थिरसुखमासनम्। योग दर्शन 2/46
 6. ततो द्वंद्वानभिघातः। योग दर्शन 2/48

भावना चतुष्टय- चित्त अर्थात् मन को निर्मल करने के उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि भावना चतुष्टय की बात करते हैं।¹ जिसमें वे निर्देश देते हैं कि सुखी व्यक्ति के साथ मित्रता का भाव रखना चाहिए, दुखी व्यक्ति के साथ करुणा का भाव रखना चाहिए, पुण्य करने वाले व्यक्ति के साथ प्रसन्नता, तथा पापी व्यक्ति की हमेशा उपेक्षा करनी चाहिए।² जब व्यक्ति इस प्रकार कि भावना अपने मन में रखता है तो उसके मन में कभी गलत विचार उत्पन्न ही नहीं होते, वह तनाव आदि से मुक्त रहता है। उसके मन में उत्पन्न होने वाले नकारात्मक विचार स्वतः समाप्त हो जाते हैं। इन नकारात्मक विचारों के समाप्त होने पर व्यक्ति निश्चित ही आत्महत्या जैसे कृत्यों से बचा रह सकता है।

प्राणायाम- नकारात्मक विचारों को समाप्त करने के उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि प्राण वायु को बारंबार बाहर निकालने तथा बाहर ही रोक कर रखने के अभ्यास की बात करते हैं³ जिससे नकारात्मक विचार नष्ट होते हैं, मन शांत होता है, क्रोध शांत होता है। सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है। महर्षि पतंजलि प्राणायाम की चार विधियों का वर्णन करते हैं बाह्य प्राणायाम (प्राण वायु को बाहर निकालना), आभ्यंतर प्राणायाम (प्राण वायु को अंदर ही रखना), स्तंभवृत्ति प्राणायाम (प्राण वायु को अंदर या बाहर कहीं भी रोकना)⁴ तथा विषयाक्षेपी प्राणायाम (प्राण वायु जहां है वहीं पर रोकना)। प्राणायाम का अभ्यास करने से मन की चंचलता शांत होती है। वास्तविक ज्ञान की अनुभूति होती है। मन की चंचलता को शांत करने के लिए स्वामी स्वात्माराम जी प्राणायाम के अभ्यास का निर्देश देते हैं वे कहते हैं की जब तक प्राण वायु को वश में नहीं किया जाता है तब तक मन को भी वश में नहीं किया जा सकता प्राण वायु के साथ-साथ ही मन गतिमान है⁵ इसलिए मन को वश में करने के लिए प्राण वायु को वश में करना चाहिए। जब मन वश में होगा तो नकारात्मक विचारों से बचा जा सकता है और आत्महत्या जैसे विचार मन में उत्पन्न नहीं होंगे। चूंकि मन की चंचलता के कारण ही नकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं।

-
1. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। योग दर्शन 1/33
 2. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। योग दर्शन 1/33
 3. प्रच्छेदनविधारणाभ्याम वा प्राणस्य। योग दर्शन 1/34
 4. बाह्यभ्यंतरस्तंभवृत्तिदेशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। योग दर्शन 2/50
 5. चलेवाते चलचित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्। योगी स्थाणुप्नोती ततो वायुनिरोधयेत्। हठप्रदीपिका 2/2

प्रत्याहार- प्रत्याहार का अर्थ है अपनी इंद्रियों को वश में करना। जब व्यक्ति के मन में किसी प्रकार के नकारात्मक विचार आयें या उसके मन में आत्महत्या जैसे विचार पनपने लगें तब उन विचारों से अपने मन को हटा कर अच्छे एवं सकारात्मक विचार मन में लाने चाहिए। बुरे, नकारात्मक विचारों को अच्छे विचारों में बदलने की क्षमता को ही प्रत्याहार कहते हैं। जब व्यक्ति के मन में किसी अन्य के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जायें, जैसे की अपने प्रतिद्वंदी से आगे निकलने के लिए गलत विचार आयें, चोरी करने की भावना उत्पन्न हो जाए, हिंसादि प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगे तो उन गलत विचारों से बचने के लिए उनके प्रति प्रतिपक्ष की भावना रखने से वे स्वतः समाप्त हो जाते हैं।¹ जैसे शत्रु के प्रति मित्रता का भाव आने पर शत्रुता में कमी आ जाती है। जब हम प्रत्याहार का पालन करते हैं तो मन में आए नकारात्मक विचारों को हावी नहीं होने देते। घेरण्ड ऋषि कहते हैं कि प्रत्याहार का पालन करने से धीरता आती है² अर्थात् व्यक्ति धैर्यवान हो जाता है। धैर्यवान होने पर व्यक्ति आत्महत्या जैसे कृत्यों से बच जाते हैं।

ध्यान- मन में उत्पन्न हुए विक्षेपों को दूर करने के लिए महर्षि पतंजलि ध्यान करने का निर्देश देते हैं।³ मन को स्थिर करने के उपाय के रूप में महर्षि पतंजलि कहते हैं मन को शांत करने के लिए अपने ईष्ट देव का ध्यान करना चाहिए जिसके करने से मन शांत होता है।⁴ जब साधक को ये समझ न आए की ध्यान किसका करना चाहिए उसके लिए महर्षि पतंजलि बताते हैं कि उस - रूपी प्रणव का ध्यान करना चाहिए। उस ओंकार का ध्यान करने से मन शांत और स्थिर होता है।⁵ जैसे दुख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास आदि विक्षेपों को दूर करने का उपाय के रूप में एक तत्व का अभ्यास बताया है।⁶ अर्थात् किसी भी एक वस्तु में ध्यान लगाने से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। इसलिए हमें किसी भी एक वस्तु जैसे इष्ट देव आदि की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए।

निष्कर्ष :- यम-नियमों का पालन करने से व्यक्ति की मानसिक स्थिति में सुधार होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति तनाव, चिंता, कुण्ठा आदि से मुक्त रहता है। आसन के अभ्यास से शारीरिक दृढ़ता की प्राप्ति होती है जिससे व्यक्ति

-
1. वितर्कबाधनेप्रतिपक्षभावनम्। योग दर्शन 2/33
 2. प्रत्याहारेण धीरता। घेरण्ड संहिता 11
 3. यथाभिमतध्यानाद्वा। योग दर्शन 1/39
 4. यथाभिमतध्यानाद्वा। योग दर्शन 1/39
 5. तस्य वाचकः प्रणवः। योग दर्शन 1/27
 6. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः। योग दर्शन 1/32

के मन में आने वाले शारीरिक अक्षमता वाले विचार नष्ट हो जाते हैं। भावना चतुष्टय से व्यक्ति के मन में दूसरे व्यक्ति के प्रति सकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं जिससे उसके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है जिससे व्यक्ति की मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है। अपने ईष्ट देव का ध्यान करने से मानसिक शांति मिलती है जिससे व्यक्ति के नकारात्मक विचार नष्ट होते हैं। महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र में वर्णित उपायों का अभ्यास करने से आत्महत्या जैसी गंभीर प्रवृत्तियों से मुक्ति पायी जा सकती है।



प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में अंकित देवता विष्णु के वैदिक एवं पौराणिक स्वरूपों का विवेचनात्मक अध्ययन

प्रो. प्रभात कुमार*
गौरव सिंह**

यास्क ने निरुक्त¹ में विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति विश् (प्रवेश करना) अथवा वि+अश् (व्याप्त करना) धातु से मानी है। बृहदेवताकार का मत है कि यह शब्द व्याप्ति अर्थवाली विष्, विश् अथवा वेविष् (विष्टु) धातुओं से बना है। समस्त संसार को व्याप्त कर लेने तथा प्रत्येक वस्तु में व्याप्त रहने से सूर्य को ही विष्णु कहा जाता है।

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति का निरूपण करते हुए अनेक पुराणों में प्रायः विष्णु के इसी पक्ष को बल दिया गया है। यथा—

जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे।
विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम्।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम्॥²
प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसंभवतः।
प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत् पुनः॥³

* प्रोफेसर, प्रा. भा. इति. सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार।

** शोध छात्र, यू.जी.सी. नेट एवं जे. आर. एफ. (आई.सी.एच.आर., शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार), प्रा. भा. इति. सं. एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार।

1. निरुक्त, 12/18, विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा

2. मत्स्यपुराण, 248/41

3. वही, 2/30

महाभारत में स्वयं विष्णु के मुख से कहलाया गया है कि “मैंने पृथ्वी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रखा है, जगत् का विक्रमण अर्थात् आच्छादन करने या नाप लेने से मेरी संज्ञा विष्णु है।”¹

ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु की एक अन्य प्राचीन निरुक्ति मिलती है : अथ यद् विषितो भवति तद्विष्णुः। यह शब्द ‘षिञ्-बन्धने’ धातु से बना है और इसका अर्थ है- विस्तृत, मुक्त, स्वतंत्र या खुला हुआ।² गोंदा का मत है कि यह शब्द विष्णु की प्राचीनतम विशेषताओं में से एक की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद में कुछ स्थानों पर विष्णु को इन्द्र की वृत्रवध में सहायता करके जलों को पृथ्वी की ओर प्रवाहित करने में तथा बल के द्वारा बद्ध गायों को मुक्त करने में सहायता करते हुए वर्णित किया गया है।³

वस्तुतः भारतीय परम्परा में विष्णु के प्रारम्भिक तथा मूल स्वरूप की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गई है। बृहद्देवता तथा निरुक्त के उल्लेख से और विष्णु की आदित्य गण में गणना किये जाने से स्पष्ट है कि विष्णु का मूल रूप सूर्य के किसी न किसी प्रकार से अवश्य सम्बद्ध था। सूर्य के उदय के पश्चात् जहां तक भी मनुष्य की दृष्टि जाती है वहां तक उसे प्रकृति की प्रत्येक वस्तु प्रकाश से आवृत दिखाई पड़ती है। विष्णु का सूर्य से सम्बन्ध अनेक वैदिक तथा परवैदिक उद्धरणों से प्रकट होता है। जिस प्रकार सूर्य देव सविता के लिए कहा गया है कि अपनी महिमा से उन्होंने पार्थिव लोक को नाप डाला, उसी प्रकार विष्णु को भी अनेक स्थानों पर पृथ्वीमण्डल को नापते हुए वर्णित किया गया है।

यः पार्थिवानि विममे स एतंशो रंजांसि देवः संविता महित्वना।⁴

निःसंदिग्ध रूप से ऋग्वेद में विष्णु की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता उनके द्वारा तीन पदक्रमों का रखा जाना है तीन प्रकार से विचक्रमण करते हुए उन्होंने सारे जगत् को व्याप्त कर लिया।⁵ ऋग्वेद के अनुसार ही विष्णु के इन्हीं विस्तृत चरणन्यासों के अन्दर सम्पूर्ण लोक विश्राम करते हैं-

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।⁶

1. महाभारत, शान्तिपर्व, 341/42
2. त्रिपाठी, गया चरण, वैदिक देवता उद्भव एवं विकास, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ. 303
3. गोंदा, जे., आस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली वैष्णविज्म, मुंशीराम मनोहर लाल, दिल्ली, 1954, पृ. 55
4. ऋग्वेद, 5/81/3
5. ऋग्वेद, 1/22/17
6. ऋग्वेद, 1/154/2

सम्पूर्ण विश्व विष्णु के इन्हीं तीन चरणों के अन्दर समाया हुआ है। उनके इन तीनों चरणों को मधु से सम्पन्न बताया गया है। किन्तु इनमें से जो तीसरा सबसे ऊपर है उसमें तो मधु का एक अनन्त स्रोत है-

विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।¹

शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट शब्दों में देवों के कार्य के लिए विष्णु के द्वारा पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश को एक-एक पदक्रम से व्याप्त कर लेने का उल्लेख है-

यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्य ऽइमां विक्रान्ति विचक्रमे येषामियं विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन परस्परऽथेदुमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्तमेनैताम्बेवैष ऽएतस्मै विष्णुर्यो विक्रान्ति विक्रमते।²

ब्राह्मण साहित्य में विष्णु की यह विशेषता बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती थी क्योंकि लगभग सभी प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु के इन तीन पगों का अनेक यज्ञिय कृत्यों से सम्बन्ध है। कुछ विशेष यज्ञों में विष्णु से सम्बन्धित कृत्यों के समय पूर्व की ओर तीन पग चलने का विधान किया गया है। एकसा करने से यजमान आंशिक रूप से विष्णु से अपना साम्य स्थापित करता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के इन्हीं उल्लेखों में उस सुन्दर तथा रम्य कथा के बीज वर्तमान हैं जो बाद में विष्णु के वामन अवतार के लम्बे आख्यान के रूप में विकसित हुई। वामन अवतार की कथा विभिन्न पुराणों में देखने को मिलती है। शतपथ ब्राह्मण में वामन अवतार के अतिरिक्त त्रिविक्रम स्वरूप का वर्णन भी पृथक् रूप से प्राप्त होता है। त्रिविक्रम स्वरूप की अवधारणा पूर्णतः वैदिक है, जबकि वामनत्व की अवधारणा पूर्णतः ब्राह्मणकालीन है। ऐतरेय ब्राह्मण में यद्यपि विष्णु के वामन स्वरूप का कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है तथापि उनके द्वारा अपने तीन विक्रमणों से क्रमशः त्रिलोकी, वेद तथा वाक् को आच्छादित करने का वर्णन किया गया है।³ वर्तमान समय में जनमानस में व्याप्त वामन अवतार की अवधारणा का आधार महाकाव्य ग्रन्थ महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित कथा है, जिसमें पराक्रमी असुरराज बलि के द्वारा इन्द्र से त्रैलोक्य का राज्य छीने जाने तथा विष्णु द्वारा उसे पुनः प्राप्त करके इन्द्र को सौंपने और बलि को पाताल भेजने का उल्लेख है।⁴

1. ऋग्वेद, 1/154/5

2. शतपथ ब्राह्मण, 1/1/2/13, 1/9/3/9, 3/6/3/3

3. ऐतरेय ब्राह्मण, 6/3/7

4. महाभारत, शान्तिपर्व, 339/79-83

वैष्णव सम्प्रदाय के आधार स्तंभ विष्णु पुराण में वामन अवतार की कथा का वर्णन अत्यंत संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।¹ हरिवंश, मत्स्य, विष्णु-धर्मोत्तर, ब्रह्म, पद्म, वामन, स्कन्द तथा भागवत पुराणों में यह कथा अत्यन्त विस्तार से प्राप्त होती है। निश्चित रूप से संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में आये हुए कतिपय उल्लेखों के आधार पर ही पुराणों के रचयिताओं ने इतने विशाल आख्यानों का भवन खड़ा किया है।

विष्णु को समस्त संसार में व्याप्त, आदिपुरुष, परमेश्वर के रूप में चित्रित किया गया है और उनके विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है। वे एक पद में पृथ्वी को नाप लेते हैं, आकाश उनके शरीर से घिर जाता है और दिशाएं भुजाओं से। दूसरे चरण से स्वर्, महः, जनः तथा सत्यलोक को नाप लेने के बाद तीसरे चरण के लिए ब्रह्माण्ड में स्थान ही नहीं बचता, अतः दान की प्रतिज्ञा पूरी न कर पाने के कारण बलि को वरुण पाशों से बंधना पड़ता है। बलि का चरित अत्यधिक उत्कृष्ट, महनीय तथा श्लाघ्य है। बलि के गुरु शुक्राचार्य उसे बहुत समझाते हैं कि ऐसा दान प्रशंसनीय नहीं है जिससे अपनी आजीविका चली जाये। किन्तु दृढ़निश्चयी बलि पर इस बात का कोई असर नहीं पड़ता है। शुक्राचार्य की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य होती है। संपूर्ण लोकों को जीत कर सिंहासन पर आसीन वामन तथा उनके पार्षदों पर आक्रमण करते हुए राक्षसों को वह नम्रतापूर्वक रोकता है और वामन द्वारा भर्त्सना किये जाने पर वह क्रुद्ध नहीं होता है। अंत में विष्णु उसे पाताललोक का अखण्ड राज्य प्रदान करते हैं। वहां जीवनभर उसके प्रासाद के बाहर वामन आकार में द्वारपाल के रूप में उसकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हैं और अगले सार्वर्णिक मन्वन्तर में इन्द्र पद प्राप्त करने का वर प्रदान करते हैं।

मत्स्य पुराण में विष्णु के विराट् रूप में आदित्य, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनौ तथा प्रजापति आदि देवों की स्थिति बताई गई है।

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः।
 सर्वदेवमयं रूपं, दर्शयामास तत्क्षणात्।
 चन्द्रसूर्यौ च नयने, द्यौर्मूर्धा चरणौ क्षितिः।
 विश्वेदेवा च जानुस्था जंघ साध्याः सुरोत्तमाः॥²

ब्रह्मपुराण में दो ही पदों से समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने का वर्णन प्राप्त होता है और तीसरे पद के लिए बलि से पूछते हैं तो बलि हंसकर उत्तर देता है “अब आपके तीसरे पद के लिए मैं स्थान कहां से लाऊं? यह जगत् आपका ही

1. विष्णु पुराण, 3/1/42, 43

2. मत्स्यपुराण, 254/52, 53

बनाया हुआ है, मेरा नहीं। अतः यदि आपकी ही गलती से इसमें कमी पड़ गई तो मैं क्या करूँ?”¹

वैदिक विष्णु एवं पौराणिक वामन अवतार के गुणों की साम्यता ऐतरेय ब्राह्मण और पद्मपुराण में वर्णित कथाओं के आधार पर भी स्थापित होती है। पद्म पुराण के सृष्टिखण्ड में यह कथा मिलती है। किन्तु इसमें राजा बलि के स्थान पर वाश्कलि दैत्य का नाम प्राप्त होता है। ब्रह्मा के वर से वह अत्यधिक सामर्थ्यशाली हो जाता है। बलि की भांति उसे भी सद्गुणी तथा अतिथि सत्कारक चित्रित किया गया है। जिस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण² में इन्द्र असुरों से विष्णु के लिए भूमि मांगते हैं उसी प्रकार यहां भी वे वामन को अपने साथ लेकर वाश्कलि के प्रासाद में जाते हैं और कहते हैं कि “ये ब्राह्मण देवता कश्यप के कुल में उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने मुझसे तीन पग भूमि की याचना की है। किन्तु मेरे पास तो अब कुछ है नहीं, अतः तुम्हीं इनकी इच्छा पूर्ण कर दो।” इस अनुरोध पर वाश्कलि गुरु शुक्राचार्य के मना किये जाने पर भी राजा बलि की भांति वामन की इच्छापूर्ति करता है।

विष्णु के द्वारपाल बनने का उल्लेख श्रीमद्भागवत पुराण एवं ऐतरेय ब्राह्मण दोनों में ही प्राप्त होता है। पुराणों में उन्हें राजा बलि का द्वारपाल बताया गया है। जबकि ऋग्वेद के अनुसार अपने सखा के साथ विष्णु गायों के बाड़े को खोलते हैं।³

वैदिक साहित्य में विष्णु के वर्णित गुणों के आधार पर ही पुराणों में विष्णु के विभिन्न अवतारों की परिकल्पना कर उनके गुणों के भव्य आख्यानों का निर्माण किया गया। साथ ही उनके अवतारों की प्रतिमाओं के निर्माण सम्बन्धी निर्देश भी दिये गये। जिनके आधार पर ऐतिहासिक काल में मूर्तिकारों ने विभिन्न मन्दिरों में तथा स्वतंत्र रूप से वामनावतारादि विभिन्न रूपों की मूर्तियों का निर्माण किया।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी वामन एवं त्रिविक्रम रूप के निर्माण सम्बन्धी निर्देश दिये गये हैं, जो कि इस प्रकार हैं -

कर्तव्यो वामनो देवःसंकटैर्गात्रपर्वभिः।

पीनगात्रश्च कर्तव्यो दण्डी चाध्ययनोद्यतः॥

दूर्वाश्यामश्च कर्तव्यः कृष्णाजिनधरस्तथा॥⁴

वामन रूप के शरीर को छोटे-छोटे पर्वों वाला बनाना चाहिए। दण्डी भगवान् को मोटे अंगों वाला तथा सदा अध्ययनरत बनाना चाहिए। उनको दूर्वा के समान

1. ब्रह्मपुराण, 49/50

2. ऐतरेय ब्राह्मण 6/3/7

3. ऋग्वेद, 1/156/4

4. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 85/53-54

श्याम वर्ण का तथा कृष्ण मृगचर्म धारण किए हुए बनाये।

अपराजितपृच्छा में वामन को छत्र, दण्ड धारण किये हुए चार भुजाओं वाला बताया गया है-छत्री दण्डी वामनः स्यादथवास्याच्चतुर्भुजः।¹ रूपमण्डन में श्यामवर्णी एवं दण्ड धारण करने वाला कहा गया है।

वामन प्रतिमा ब्रह्मचारी रूप के अतिरिक्त दूसरा स्वरूप विराट् रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसमें तीन पगों के कथानक को लेकर तीन विभिन्न आकार सामने आते हैं जिसे त्रिविक्रम नाम दिया गया है। लक्षण ग्रन्थों में त्रिविक्रम प्रतिमाओं का विवरण प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार-

सजलाम्बुदसंकाशस्तथा कार्यस्त्रिविक्रमः।

दण्डपाशधरः कार्यः शंखसंचुम्बिताधरः॥

शंखचक्रगदापद्माः कार्यास्तस्य स्वरूपिणः।

नृदेहास्ते न कर्तव्या शेषं कार्यं तु पूर्ववत्॥²

त्रिविक्रम रूप का निर्माण जल भरे मेघ के समान कांतिपूर्ण किया जाना चाहिए। उनके होठों से शंख को लगाये हुए एवं दण्ड तथा पाश धारण किये हुए बनाया जाना चाहिए। उनके शंख, चक्र, गदा एवं पद्म को स्वरूपतः निर्मित किया जाना चाहिए। वैखानसागम के अनुसार प्रतिमा चतुर्भुजी अथवा अष्टभुजी निर्मित होनी चाहिए। यदि वह चतुर्भुजी हो तो उनके दो हाथों में शंख और चक्र हो तथा एक दाहिना हाथ अभय या वरद मुद्रा में हो और एक बायां हाथ ऊपर की ओर प्रसारित वाम पद के समानान्तर प्रसारित होना चाहिए। यदि प्रतिमा अष्टभुजी हो तो पांच हाथों में चक्र, शंख, गदा, शांग, और हल हो तथा शेष तीन हाथ पूर्ववत् हों।

त्रिविक्रम प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तकाल में प्रारम्भ हो गया था। कालांतर में इनकी लोकप्रियता बढ़ी और बादामी, महाबलिपुरम् तथा एलोरा में इनका निर्माण किया गया। बादामी की गुहा संख्या 3 की प्रतिमा अपनी मुद्रा तथा शारीरिक चेष्टाओं से स्वतः अपनी शक्ति एवं दृढ़ता का भाव व्यक्त करती है। बादामी की गुहा संख्या 2 एवं महाबलिपुरम् में त्रिविक्रम प्रतिमा का कथानक शैली में अंकन किया गया है। कर्मदेश्वर मंदिर में द्विभुज वामन का भी एक अंकन मिलता है।³ खजुराहो में विष्णु की एक मात्र त्रिविक्रम अवतार प्रतिमा खण्डित अवस्था में है। इसमें त्रिविक्रम का दक्षिण पाद पृथ्वी पर टिका है तथा ऊपर की ओर प्रसारित वाम पाद खण्डित है। वे हार, ग्रैवेयक, केयूर, मेखला, नूपुर, वनमाला, कौस्तुभमणि आदि आभूषणों को

1. अपराजितपृच्छा, अध्याय 219

2. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 85/55-56

3. मिश्र, रामनाथ, भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, पृ. 245

धारण किये हुए हैं। इस प्रतिमा के चारों हाथ खण्डित हैं। खजुराहो में एक वामन मंदिर भी है, जिसमें एक भव्य वामन प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसमें विष्णु को छोटे अवयवों और मोटे शरीर वाले वामन के रूप में समभंग मुद्रा में खड़े दिखाया गया है। उनके सिर के केश घुंघराले हैं। वे हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, कौस्तुभमणि, केयूर, यज्ञोपवीत, अजिनोपवीत, मेखला एवं वनमाला से अलंकृत हैं। उनकी चारों भुजाएं खण्डित हैं। ग्वालियर से भी त्रिविक्रम की द्विभुजी प्रतिमा प्राप्त होती है। उनके दाहिने हाथ में गदा है और बायें हाथ में शंख है। उनका दाहिना पैर पृथ्वी से टिका है और बायां आकाश की ओर प्रसारित है। ओसियां में त्रिविक्रम स्वरूप की कुल सात प्रतिमाएं विभिन्न मन्दिरों पर उत्कीर्ण की गयी हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में वर्णित विष्णु के गुणों को आधार बनाकर पौराणिक कथाओं का निर्माण किया गया। पुराणों में अवतारवाद की अवधारणा का प्रस्फुटन देखने को मिलता है। जिसमें विष्णु के पांचवे अवतार के रूप में वामनावतार को मान्यता प्रदान की गई है। वामनावतार की अनेक प्रतिमाएं गुप्त काल में देश के विभिन्न मंदिरों में उत्कीर्ण की जाने लगी थीं। इनका अंकन पूर्वमध्यकाल एवं मध्यकाल में और अधिक भव्यता के साथ किया जाने लगा।



उपसर्ग और निपातों का विश्लेषण निरुक्त और अव्ययार्थ के सन्दर्भ में

-सुमति *

प्रस्तावना

वेदार्थ को जानने के लिये वेदवाणी को जानना अत्यावश्यक है। यास्क ने वेदवाक् के चार प्रकार के शब्द स्वीकार किये हैं- **नाम, आख्यात, उपसर्ग व निपात**। सत्त्व की प्रधानता वाला नाम है। क्रिया को प्रकट करने वाला आख्यात है, इसमें भाव प्रधान होता है। अव्यय पदों में से नाम और आख्यात से संयुक्त होकर अर्थबोध कराने वाले शब्दों को उपसर्ग कहते हैं तथा शेष अव्यय पदों को निपात संज्ञा से निर्दिष्ट किया है।¹ महाभाष्य में भी चार प्रकार के पद स्वीकृत हैं।² वाक्यपदीयम् के अनुसार कुछ आचार्य नाम, आख्यात इन दो को ही पद मानते हैं।³ पाणिनि **सुप्तिङन्तं पदम्**⁴ के द्वारा सुबन्त तिङन्त को पद मानते हैं तथा निपात और उपसर्ग को पृथक् दर्शाया है। **चादयोऽसत्त्वे**⁵ सूत्र द्वारा निपात उसी को कहा गया है जो असत्त्व=सत्त्ववाची न हो। यास्क ने सत्त्वप्रधान नाम को माना है अतः नाम से पृथक् निपात को पाणिनि स्वीकारते हैं।

प्रस्तुत लेख के माध्यम से उपसर्ग और निपातों के स्वरूप पर विचार करते हैं, जो किसी भी भाषा के लिये अत्यावश्यक है।

उपसर्ग

‘उप’ उपसर्ग पूर्वक् सृज धातु से घञ् प्रत्यय करने पर उपसर्ग शब्द बनता है। उप अर्थात् समीप या लघु शब्दार्थ होगा समीप सर्जन या लघु रचना। महर्षि यास्क उपसर्गों के विषय में लिखते हैं- “न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान् निराहुरिति शाकटायनः। नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति। उच्चावचाःपदार्था

* शोधच्छात्रा, वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

1. निरुक्त- 1.1.1
2. महाभाष्य- पस्पशाह्निक
3. वाक्यपदीयम् -3.1.1
4. अष्टाध्यायी- 1.4.4
5. अष्टाध्यायी-1.4.57

भवन्तीति गार्ग्यः। तद्य एषु पदार्थः प्राहुरिमे तं नामाख्यातयोरर्थं विकरणम्।¹
अर्थात् नाम और अख्यात से वियुक्त उपसर्ग अर्थों को नहीं कहते ऐसा शाकटायन मानते हैं किन्तु नाम आख्यात से युक्त होकर ही वे अर्थ विशेष को दर्शाते हैं। गार्ग्याचार्य उपसर्गों के अनेक प्रकार के अर्थ मानते हैं। वे उपसर्ग नाम और आख्यात के अर्थ को स्पष्टता से बताते हैं।

उपसर्गों की संख्या

यास्काचार्य ने उपसर्गों की संख्या बीस मानी है-आ, प्र, परा, अभि, प्रति, अति, सु, निर्, दुर्, नि, अव, उत्, सम्, वि, अप, अनु, अपि, उप, परि, अधि। पाणिनि के मत में बाईस उपसर्ग हैं इन्होंने निस्, निर्तथा दुस्, दुको पृथक्-पृथक् उपसर्ग माना है जबकि यास्क इनमें से एक-एक का ही ग्रहण करते हैं। यदि दोनों को एक ही मानें तो वस्तुतः बीस ही उपसर्ग बनेंगे।

पाणिनि सूत्र **प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे**² के अनुसार जब उपसर्ग धातु के साथ सम्बद्ध होते हैं तभी वे उपसर्ग कहाते हैं यथा- अनुगच्छति, संतिष्ठते आदि। पाणिनि ने गति और कर्मप्रवचनीय दो संज्ञाओं का प्रयोग उपसर्ग के लिए किया है। **छन्दसि परव्यवहितवचनं च** वार्तिक के नियम से व्याकरण में जो-जो गति और उपसर्ग संज्ञक शब्द हैं, वे वेद में क्रिया के पीछे दूर अर्थात् व्यवधान में भी होते हैं। यथा- **उप प्रयोभिरागतम्**³ यहाँ आगतम् क्रियावाची के साथ उप लगता है तथा **आयातमुप**⁴ यहाँ उप आयातम् क्रिया से पूर्व लगता है। जबकि लोक में ये उपसर्ग क्रिया के पूर्व ही दिखाई देते हैं।

‘निरुक्त’ और ‘अव्ययार्थ’ में उपसर्ग

धातु के साथ लगने से उपसर्गों के बहुविध अर्थ होते हैं। परन्तु यास्क ने उपलक्षणार्थ एक उपसर्ग का एक ही अर्थ उद्धृत किया है।

1. आ - यह उपसर्ग यास्क ने अर्वाक् = इधर अर्थ में पढ़ा है यथा- आ पर्वतात् गुरुकुलम् गुरुकुल पर्वत से इधर है। अव्ययार्थ में यही उपसर्ग वाक्य और स्मरणार्थ में पठित है यथा-(वाक्य) आ एवं नु मन्यसे, (स्मरण) आ एवं किल तत् पाणिनि सूत्र **आङ् मर्यादावचने**⁵ नियम से आङ् वाक्य और स्मरणार्थ में अङित्

-
1. निरुक्त- 1.3
 2. अष्टाध्यायी-1.4.58
 3. यजुर्वेद - 7.8
 4. ऋग्वेद- 1.2.6
 5. अष्टाध्यायी-1.4.88

जाना जाता है अतः अव्ययार्थ में 'आ' उपसर्ग वाक्य और स्मरणार्थ में पढ़ा है।

2. प्र - उपसर्ग प्रातिलोम्य = आ से विपरीत उधर इस अर्थ में पठित है जैसे- प्रगतः उधर चला गया जबकि 'अव्ययार्थ' में प्रकर्ष और गतादि अर्थ में पढ़ा है जैसे- प्रभुः प्रकर्ष में, प्रगतः आचार्यः प्राचार्यः गताद्यर्थ में।

3. परा- उपसर्ग भी यास्क ने उधर में ही पढ़ा है उदा.-परागतः उधर गया। प्रकर्ष और अनुत्कर्ष अर्थों में अव्ययार्थ में निर्दिष्ट है। परागतः उधर गया प्रकर्ष में, पराजयः पराजित हुआ अनुत्कर्ष में।

4 अभि - यह आभिमुख्य = सामने अर्थ में निरुक्त में पठित है अभिगतः सामने गया अव्ययार्थ में इस अर्थ से अतिरिक्त अन्य पाँच अर्थों में अभि उपसर्ग पठित है। 1. समीप- प्रयागमभितो गंगा प्रयाग के समीप गङ्गा। 2. दोनों ओर- अभितो भवतु सेना दोनों ओर सेना हो 3. शीघ्र- अभितोऽधीष्व शीघ्र पढ़ो 4. चारों ओर-अभितो वनं दग्धम् चारों ओर से वन जल गया 5. सभी ओर - अभितो वर्षति मेघः बादल सभी ओर से बरस रहा है। अष्टाध्यायी सूत्र अभिरभागे¹ में 'अभि' उपसर्ग इन अर्थों से भिन्न अन्य तीन लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, वीप्सा अर्थों में भी पढ़ा है।

5. प्रति- इसे अभि के प्रातिलोम्य = विपरीत लौटना अर्थ में पढ़ा गया है। प्रति गच्छति दूसरी ओर जाना जबकि अव्ययार्थ में 'प्रति' उपसर्ग छः अर्थों में निर्दिष्ट है-1. प्रतिनिधि- मन्त्री राज्ञः प्रति मन्त्री राजा का प्रतिनिधि है 2. प्रतिदान- प्रति तिलेभ्यो माषान् देहि तिल के बदले उड़द दो 3. लक्षण-वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् वृक्ष को देखकर बिजली चमकी 4. इत्थम्भूताख्यान-प्रगल्भं प्रति सम्भाषणीयम् असत्य के प्रति सम्भाषण यह ऐसा है 5. भाग-इदं मां प्रति स्यात् यह मेरा भाग होवे 6. वीप्सा- वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चप्रत्येक वृक्ष को सींचो। अष्टाध्यायी में प्रतिःप्रतिनिधिप्रति-दानयोः², लक्षणेत्थम्भूताख्यान.³ सूत्रानुसार 'प्रति' के उपर्युक्त अर्थ निर्दिष्ट हैं।

6. अति- उपसर्ग को अभिपूजार्थ=अत्यधिक स्नेह/आदरार्थ में पढ़ा है अति पूजयति जबकि पूजनार्थ सहित अन्य पाँच अर्थों में पढ़ा है- 1. क्रान्त-मालमति क्रान्तोऽतिमालः। 2. प्रकर्ष-अत्युत्तमो विद्वान्। 3. लंघन -अतिवेलम्भुङ्क्ते। 4. अतिशय- अतिबली देवदत्तः। 5. पूजन -अत्यादृतः। अतिरतिक्रमणे⁴ च सूत्रानुसार 'अति' उपसर्ग अतिक्रमण उल्लंघन और पूजार्थ में निर्दिष्ट है।

1. अष्टाध्यायी-1.4.90

2. अष्टाध्यायी-1.4.91

3. अष्टाध्यायी-1.4.89

4. अष्टाध्यायी-1.4.94

7. सु- उपसर्ग भी अभिपूजार्थ में है। अव्ययार्थ में भी इसी अर्थ में है। सुपुरुषः अच्छा पुरुष। सुः पूजायाम्¹ सूत्रानुसार 'सु' पूजार्थ में निर्दिष्ट है।

8. निस्, निर्- उपसर्गों को अभिपूजार्थ के विपरीतार्थ में यास्क ने पढ़ा है- निर्दोषः दोषरहित। अव्ययार्थ में निस्, निनिश्चय और निषेध इन दो अर्थों में पढ़े गये हैं। निश्चय - निरुक्तोऽर्थो यास्केन यास्क द्वारा उक्तार्थ का निश्चय। निषेध - अधर्मी निष्काशनीयः अधर्मी निकलना चाहिए।

9. दुस्, दुर- ये दोनों उपसर्ग भी अभिपूजित के प्रतिलोम = निन्दार्थ में पठित हैं। यथा- दुर्भाषी बुरा वचन बोलने वाला। अव्ययार्थ में भी निन्दार्थ में दुस् उपसर्ग पठित है- दुर्बुद्धिः।

10. नि, अव- ये उपसर्ग विनिग्रह = नीचे करना/दबाना इस अर्थ में निरुक्त में निर्दिष्ट हैं जैसे- निगृह्णाति, अवगृह्णाति दबाता है। विनिग्रह अर्थ के अतिरिक्त 'अव' उपसर्ग क्रियायोग अर्थ में भी अव्ययार्थ में है। अवतिष्ठते नीचे बैठता है क्रियायोग में।

11. उत् - यह नि, अव के प्रतिलोम = ऊर्ध्व को कहता है उदगृह्णाति ऊँचा उठता है। अव्ययार्थ में इसे अन्य दो उत्कृष्ट तथा क्रियायोग अर्थों में पढ़ा है। उत्तमः यह उत्कृष्टार्थ में, उद्यम्यते यह क्रियायोग में।

12. सम् - उपसर्ग एकीभाव अर्थ को दर्शाता है संगच्छध्वम्² एक होओ। इस अर्थ से भिन्न एक ओर आनन्द अर्थ में अव्ययार्थ में पठित है। समागतः सत्पुरुषान् सज्जनों को आनन्द।

13. वि, अव - सम् उपसर्ग के प्रतिलोम विपरीतार्थ में प्रयुक्त होते हैं - वियोग और समागम बिछुड़ना व जुदाई। अव्ययार्थ में 'अप' उपसर्ग पृथग्भाव अर्थ में ही पठित है यथा- अपेतः अलग हुआ।

14. अनु- यह सादृश्यापरभाव सदृश=समान और अनुसरण पीछे अर्थ को कहता है। अनुव्रतः पितुः पुत्रो³ पुत्र पिता के अनुरूप हो, गुरुमनुगच्छति शिष्यः शिष्य गुरु का अनुसरण करता है। उपर्युक्त दोनों अर्थों से भिन्न अन्यचार अर्थों में 'अनु' अव्ययार्थ में पठित है। 1. लक्षण-वृक्षमनुविद्योतते विद्युत्वृक्ष पर बिजली चमकती है। 2. इत्थम्भूताख्यान- साधुर्विद्वाननु निश्चय ही विद्वान् सज्जन है। 3. भाग- यदत्रमामनुस्यातद्देहि यहाँ जो मेरा भाग है उसे दो। 4. वीप्सा (द्वित्व)- पदपदमनुचिन्तयति

1. अष्टाध्यायी-1.4.93

2. ऋग्. 10.191.2

3. अथर्ववेद 3.30.2

पग पग पर चिन्तन करता है। पाणिनि सूत्र लक्षणोत्थम्¹ में उपर्युक्त चारों अर्थ निर्दिष्ट हैं।

15. अपि - उपसर्ग संसर्ग भी अर्थ को निर्दिष्ट करता है उदा. बालकोऽपि गच्छति बालक भी जाता है। अव्ययार्थ में 'अपि' उपसर्ग सात अन्य अर्थों में भी पढ़ा गया है। 1. पदार्थ - सर्पिषोऽपि स्यात् घी भी हो। 2. सम्भावना- अपि सिञ्चेत् मूलकसहस्रम् सम्भव है ये हजार मूली तक सींच दे। 3. गर्हा - देवदत्तमपि कामिनम् - कामी देवदत्त को धिक्कार। 4. समुच्चय - पठोऽपि पाठय पढ़ो भी और पढ़ाओ भी। 5. शङ्का-अपि चोरो भवेत्? चोर भी हो सकता है। 6. प्रश्न - त्वं किमपि जानासि? तुम कुछ जानते हो? **अपि: पदार्थ....**² सूत्र में उपर्युक्त इन पाँच अर्थों को पाणिनि ने पढ़ा है।

16. उप - उपजन समीप अर्थ को कहता है जैसे-उपनदम् नदी के समीप। समीपार्थ से भिन्न क्रियायोग अर्थ में अव्ययार्थ में निर्दिष्ट है। उपतिष्ठते बैठता है। **उपोऽधिके च**³ में 'उप' अधिक और हीन अर्थ में पठित है। उपखार्या द्रोणः खारी से अधिक द्रोण, उपशाकटायनं वैयाकरणाः शाकटायन से सभी वैयाकरण छोटे हैं।

17. परि - उपसर्ग सर्वतोभाव सब ओर से होने वाला अर्थ में निरुक्त में पठित है यथा - **स पर्यगात्...**⁴ वह परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है। अव्ययार्थ में इसे 'परितस्' सर्वतोभाव में ही पढ़ा है- आयान्तु परितः श्रियः। अष्टाध्यायी में 'परि' उपसर्ग वर्जन, लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग, वीप्सा अर्थों में पठित है।

18. अधि - यह उपसर्ग ऊपर होना तथा ऐश्वर्य इस अर्थ में यास्क द्वारा निर्दिष्ट है। उदा.- **यश्चाधितिष्ठति**⁵ जो परमेश्वर सबके ऊपर स्थित है। **चक्षुषोरधिपतिः** चक्षुओं का स्वामी। इन दो अर्थों से भिन्न क्रियायोग इस अर्थ में अव्ययार्थ में पढ़ा है। यथा- अधिगच्छेत्तु तान्स्वयम्। **अधिरीश्वरे**⁶ सूत्रानुसार अधि स्वस्वामिभाव सम्बन्ध में पठित है। अधि पञ्चालेषु देवदत्तः पञ्चालों का स्वामी देवदत्त।

इस प्रकार निरुक्त और अव्ययार्थ में 'आ' उपसर्ग अर्वाक्, वाक्य और स्मरणार्थों में पठित है। प्र, परा विपरीतार्थ, प्रकर्ष तथा अनुत्कर्ष में पढ़ा है। 'अभि' सामने, समीप, दोनों ओर, शीघ्र, चारों ओर, सभी ओर, लक्षण, इत्थम् भूताख्यान और

1. अष्टाध्यायी-1.4.89

2. अष्टाध्यायी-1.4.95

3. अष्टाध्यायी-1.4.86

4. यजु. 40.8

5. अथर्व. 10.8.1

6. अष्टाध्यायी 1.4.96

वीप्सा अर्थों में पठित है। 'प्रति' लौटने, प्रतिनिधि, प्रतिदान, लक्षणादि अर्थों में। 'अति' आदरार्थ, क्रान्त, प्रकर्ष, लंघन, अतिशय, पूजादि अर्थों। 'सु' पूजार्थ में। 'निस्, निर्' पूजार्थ से भिन्न निश्चय, निषेधार्थ में। 'दुस्, दुर्' भी निन्दार्थ में। 'नि, अव' विनिग्रह=नीचे करना, दबाना, क्रियायोग अर्थ में। 'उत्' ऊपर और उत्कृष्टार्थ में। 'सम्' एकीभाव और आनन्द अर्थ में। 'वि, अप' वियोग और पृथग्भाव में। 'अनु' सदृश, अनुकरण, लक्षणादि अर्थों में। 'अपि' संसर्ग, पदार्थादि, शङ्का, प्रश्नार्थों में। 'उप' समीप, क्रियायोग, अधिक, ही नार्थों में। 'परि' सब ओर से होने वाला, वर्जन, लक्षणादि अर्थों में तथा 'अधि' उपसर्ग ऐश्वर्य, ऊपर, क्रियायोग, स्वस्वामिभाव सम्बन्धों में पठित है।

उपसर्गों का विश्लेषण करने के उपरान्त निपातों का विश्लेषण किया जाता है।

निपात-

'नि' उपसर्ग पूर्वक पत् धातु से घञ् प्रत्यय करके निपात शब्द सिद्ध होता है। अनेकार्थ में प्रयुक्त होने के कारण ये निपात कहाते हैं। महर्षि यास्क निपातों के विषय में लिखते हैं- **अथ निपाताः। उच्चावचेष्वर्येषु निपतन्ति। अप्युपमार्थे, अपिकर्मोप-संग्रहार्थे, अपि पदपूरणाः।**¹ अर्थात् अनेकार्थों में गिरने से, अनेकार्थों को प्रकट करने से इन्हें निपात कहाते हैं। ये कभी उपमार्थ में, कभी कर्मोपसंग्रहार्थ में, तो कभी पद पूरणार्थ में आते हैं। महर्षि यास्क ने निपातों के स्वतन्त्र अर्थ भी दिये हैं तथा उनसे सम्बन्धित नियम भी दर्शाये हैं। यास्क ने निपातों को तीन भागों में विभाजित किया है-

(क) उपमार्थक निपात-

तेषामेते चत्वार उपमार्थे भवन्ति² उनमें से ये चार निपात उपमार्थ में प्रयुक्त होते हैं- इव, न, चित् और नु।

1. **इव**- इव निपात लोक और वेद दोनों में होता है। यथा- अग्निरिव, राम इव। अग्नि के समान, राम जैसा। **इन्द्र इव**³, इन्द्र के समान।

2. **न** - न लोक में निषेधार्थ और वेद में उपमा व निषेध दोनों अर्थों में होता है। यथा- लोक में न गच्छ मत जाओ, वेद में **नेन्द्रं देवममंसत**⁴ इसके बिना तुम

1. निरुक्त 1.2

2. निरुक्त 1.2

3. ऋग्. 10.166.2

4. ऋग्. 10.86.1

जीवात्मदेव को नहीं जान सकते यहाँ न पूर्व में आने से निषेधार्थ में तथा **दुर्मदासो न सुरायाम्**¹ सुरा पीने पर जिस प्रकार उन्मत्त शरीर की परवाह नहीं करते यहाँ न का प्रयोग बाद में होने पर उपमार्थ में प्रयोग है।

3. चित् - यह निपात अनेकार्थों में प्रयुक्त होता है। यथा- दधिचित् दही जैसा यहाँ उपमार्थक। 'आचार्यश्चिदिदं ब्रूयात्' आचार्य ही यह कह सकता है दूसरा नहीं यहाँ सम्मान पूजार्थक। 'कुल्माषाश्चिदाहर' तू कुल्माष ही ले आ और क्या लायेगा यहा निन्दार्थक में 'चित्' निपात प्रयुक्त है। अव्ययार्थ में इन तीन अर्थों से अतिरिक्त 'असाकल्य' अर्थ में भी चित् निपात निर्दिष्ट है। असाकल्य-एषु कश्चित् करोति इनमें से कोई करता है।

4. नु - यह निपात भी अनेकार्थक है। हेतु वचन में -इदं नु करिष्यति इसको करेगा। अनुपृष्ट पुनः पूछने पर- कथं नु करिष्यति, कैसे करेगा? उपमार्थ में - **वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः**² वृक्ष की शाखा के समान चारों ओर फैली हुई। अव्ययार्थ में 'नु' अन्य तीन अर्थों में पठित है 1. शीघ्र- नु गच्छ जल्दी जाओ। 2. पृच्छा- को नु धर्मोऽस्ति धर्म क्या है? 3. विकल्प - अयं पण्डितो न्वयं पण्डितः ये पण्डित है अथवा ये।

(ख) कर्मोपसंग्रहार्थक निपात-

महर्षि यास्क के अनुसार- 'अथ यस्यागमादर्थपृथक्त्वमह विज्ञायते, न त्वौद्देशिकमिव, विग्रहेण पृथक्त्वात् स कर्मोपसंग्रहः'³ अर्थात् जिसके आने से अर्थ की पृथक्ता तो ज्ञात होती है, किन्तु उद्दिष्ट अर्थ के समान नहीं होती अपितु विग्रह विस्तार से पृथक्ता जानी जाती है वह कर्मोपसंग्रहार्थक निपात होता है। किसी दूसरे अर्थ का संग्रह करने से इसे अर्थोपसंग्रह निपात भी कहते हैं। ये निपात दो या दो से अधिक सामासिक पदों के बीच आकर अर्थों या धातुओं की भिन्नता को दर्शाते हैं।

1. च - यह निपात समुच्चय जोड़ने अर्थ में प्रयुक्त है यथा- **अहं च त्वं च**⁴ मैं और तू संयुक्त हों। अव्ययार्थ में इसे अन्वाचय, समाहार, इतरेतर और पादपूरणार्थक चार अन्य अर्थों में भी पढ़ा है। 1. अन्वाचय- विद्यां पठ गुरुं च सेवस्व। 2. समाहार- संज्ञा च परिभाषा च = संज्ञापरिभाषम्। 3. इतरेतर - धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च=धर्मार्थकाममोक्षाः। 4. पादपूरण-स च प्राह सुशान्ताय।

1. ऋग्. 8.2.12

2. ऋग्. 6.24.3

3. निरुक्त 1.5

4. ऋग्. 8.62.11

2. आ - यह भी समुच्चयार्थ में पठित है। यथा- देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च आ¹ विद्वान् और गुरुजनों की विद्याओं का। समुच्चय से भिन्न वाक्य और स्मरणार्थ में अव्ययार्थ में 'आ' पठित है। वाक्य - आ एवं नु मन्यसे। स्मरण - आ एवं किल तत्।

3. वा - विचारण तथा समुच्चय इन दो अर्थों में निरुक्त में पठित है। उदा. हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधामीह वेह वा² यहाँ विचारार्थ है। वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा³ यहा समुच्चयार्थ में।

4. अह, ह - ये दोनों विनिग्रहार्थ अलग करने अर्थ में है। यथा - अयम् अह इदं करोतु, अयम् इदम् = यह मनुष्य यह कार्य करे, यह मनुष्य यह करे। ये निपात दोनों वाक्यों में से प्रथम वाक्य के साथ जुड़ते हैं। इदं ह करिष्यति इदं न करिष्यति यह यह कार्य करेगा, यह कार्य नहीं करेगा। दोनों ही उदाहरणों में 'अह' तथा 'ह' प्रथम वाक्य के साथ संयुक्त हैं। अव्ययार्थ में विनिग्रहार्थ से भिन्न अन्य दो अवधारण और पाद पूरण अर्थ में ह निपात पठित है। अवधारण- अय मिदं ह करिष्यति, पादपूरण- तं हाऽध्यापयति प्राज्ञः।

5. उ - यह निपात भी विनिग्रह तथा पदपूरणार्थ में पठित है। ये दो वाक्यों में से दूसरे वाक्य के साथ संयुक्त होता है। यथा- मृषा इमे वदन्ति, सत्यम् उ त वदन्ति ये झूठ बोलते हैं, वे सच बोलते हैं। पदपूरण - इदमु⁴, तदु⁵। पदपूरण से भिन्न रुषोक्त, अनुकम्पा, नियोग, और सम्बन्ध इन चार अर्थों में 'उ' अव्ययार्थ में निर्दिष्ट है। रुषोक्त-उ उत्तिष्ठ दुष्टेः। अनुकम्पा- उ अभ्यौषधं कुरु। नियोग - उ अयं द्वारि तिष्ठतु। सम्बन्ध - उ अयं मम प्रियः।

6. हि- यह अनेकार्थों में पठित है। हेतुवचन - इदं ह करिष्यति इस काम को करेगा। अनुपृष्ट - कथं हि करिष्यति कैसे करेगा? असूया - कथं हि व्याकरिष्यति ए! कैसे करेगा? अव्ययार्थ में इन तीन अर्थों से भिन्न अवधारण, पादपूरण, विस्मय अर्थों में भी 'हि' निपात पठित है। अवधारण निश्चय-इदं हि कर्तव्यम्। पादपूरण-अहं हि यास्यामि वरं पुरं तव। विस्मय - बलं हि वीरस्य समीक्ष्यतां नराः।

1. ऋग्. 1.164.31

2. ऋग्. 10.118.9

3. तैत्तिरीय संहिता 17.7.2

4. ऋग्. 4.51.1

5. ऋग्. 1.62.3

7. **किल** - यह विद्याप्रकर्ष ज्ञानातिशय अर्थ में पठित है। जैसे- एवं किल - यह इस प्रकार है। दुबारा पूछने में 'न' 'ननु' के साथ 'किल' का प्रयोग होता है यथा- न किल एवम् क्या ऐसा नहीं है? ननु किल एवम् क्या ऐसा है? विद्याप्रकर्ष से भिन्न निश्चय, वार्ता, और संभाव्य इन तीन अर्थों में अव्ययार्थ में पठित है। निश्चय- एवं किलेदमस्ति, वार्ता- जघान कंसं किल वासुदेवः, संभाव्य-विद्वांसं किलाश्रयेयुर्विद्यार्थिनः।

8. **मा, खलु**- ये प्रतिषेध निषेधार्थ में है। मा कार्षीं मत कर, खलु कृत्वा न करके। इनसे भिन्न 'खलु' पदपूर्ति में भी आता है यथा- खलु तद्बभूव वह इस प्रकार हुआ। अव्ययार्थ में भी मा वारणार्थ में पढ़ा है मा कुर्वधर्मे मनः। 'खलु' निषेधार्थ से अतिरिक्त वाक्यालङ्कार, जिज्ञासा, तथा अनुनय इन अर्थों में भी अव्ययार्थ में पठित है। वाक्यालङ्कार-एतत्खल्वाहुः, जिज्ञासा-व्याकरणं खलु पठामि, अनुनय- विद्यां खल्वध्यापय।

9. **शश्वत्** - विचिकित्सा संशय अर्थ में लोक में पठित है। अनुपृष्टार्थ में- शश्वदेवम् क्या ऐसे है? यहाँ दुबारा पूछने। अस्वयं पृष्ट-एवं शश्वत् हाँ ऐसे हैं। यहाँ दूसरे के पूछने पर इन तीन अर्थों से भिन्न अन्य दो पुनः तथा सदा अर्थ में अव्ययार्थ में पठित है। पुनः-शश्वत् संध्यामुपासीत, सदा- शश्वत् सत्यं वदेत्।

10. **नूनम्** - यह निपात भी लोक में संदेहार्थ में वेद में संदेह तथा पदपूर्ति दोनों अर्थों में प्रयुक्त है। संदेह- न नूनमस्ति...¹ पदपूरणार्थ- नूनं सा ते...² अव्ययार्थ में निश्चयार्थ में पढ़ा है नूनं धर्मः सेवनीयः।

11. **सीम्** - यह परिग्रह= सब ओर तथा पदपूर्ति में प्रयुक्त है। यथा- प्र सीमादित्यो असृजत्...³ चारों ओर से ग्रहण किया फैलाया। वि सीमतः सुरुचो वेन आवः⁴ सर्वत्र सृष्ट्युत्पत्ति के समय अपना तेज फैलाया। अव्ययार्थ में इसे सीमा अर्थ में पढ़ा है।

12. **त्वः, त्व** - यह निपात विनिग्रह, सर्वनाम, अर्द्धनाम अर्थों में प्रयुक्त है। पृथक्करणार्थ में त्व निपात है, अर्द्ध अर्थ में त्व सर्वनामवाची है। पृथक्करणार्थ- ऋचां त्वः पोषमास्ते⁵। सर्वनाम- त्वे गच्छति, त्वस्मै देहि। अर्द्धनाम- गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु⁶। अव्ययार्थ में भी इन्हीं अर्थों में पठित है।

1. ऋग्. 1.170.1

2. ऋग्. 2.11.21

3. ऋग्. 2.28.4

4. यजु. 13.3

5. ऋग्. 10.71.11

6. ऋग्. 10.71.11

13. त्वत् - समुच्चयार्थ में पठित है। त्व के अर्थ में 'त्वत्' नाम है, यास्क ने निपात ही माना है। उदा.- पर्याया इव त्वदाश्विनम्¹ यहाँ इव, त्वत् दोनों पद समुच्चयार्थक हैं।

(ग) पादपूरणार्थक निपात -

इनको निरर्थक निपात भी कहा जाता है। महर्षि यास्क का कथन है- 'अथ ये प्रवृत्तेऽर्थेऽमिताक्षरेषु ग्रन्थेषु वाक्यपूरणा आगच्छन्ति पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः कम्, ईम्, इत्, उ इति'²। अर्थात् जो किसी पद्य या गद्य में मात्र वाक्यपूर्ति के लिये प्रयुक्त होते हैं वही निपात जब मिताक्षर = किसी छन्दोबद्ध ग्रन्थ में आते हैं तब भी मात्र पाद पूर्ति अथवा छन्दपूर्ति के लिये आते हैं। इस प्रकार के निपात जो गद्य/छन्द में मात्र वाक्यपूर्ति/छन्दपूर्ति हेतु आते हैं, इनका जब अर्थ करना कठिन हो, वाक्यार्थ में कोई विशेष अर्थ न निकले तभी ये अनर्थक होते हैं। अन्यथा तो अर्थवान् ही होते हैं। महर्षि यास्क ने इस प्रकार के निपातों की संख्या चार निर्दिष्ट की है। कम्, ईम्, इत्, उ इव)।

1. कम्- पदपूरणार्थ कही है। शिशिरं जीवनाय कम्³। अव्ययार्थ में वारि, मूर्द्धा, सुख, अर्थों में पड़ा है। वारि-कं पिब। मूर्द्धा -कं भूषय। सुख- मह्यं कं देहि।

2. ईम्- पदपूरणार्थक। एमेनं सृजता सुते⁴। एमेनं=आ+ईम्+एनम्।

3. इत्- पदपूरक। तमिद्वर्द्धन्तु नो गिरः।⁵

4. उ- पदपूरक। अयमु ते समतसि⁶। अव्ययार्थ में रुषोक्त- उ उत्तिष्ठ दुष्टेः। अनुकम्पा- उ अभ्यौषधं कुरु। नियोग-उ अयं द्वारि तिष्ठतु। सम्बन्ध- उ अयं मम प्रियः।

5. इव- यह भी कहीं कहीं पदपूरक में पठित है। सुविदुरिव⁷, सु विज्ञायेते इव⁸। अव्ययार्थ में उपमा अर्थ में पठित है। आप्त इवायं वदति।

1. शांखायन ब्राह्मण 17.4

2. निरुक्त 1.3

3. निरुक्त 1.3

4. ऋग्. 1.9.2

5. ऋग्. 9.61.14

6. ऋग्. 1.30.4

7. काठक संहिता 8.3

8. काठक संहिता 6.2

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि महर्षि यास्क ने इव, न, चित्, नु ये निपात उपमार्थक में निर्दिष्ट किये हैं। च, आ, वा, अह, ह, उ, हि, किल, मा, खलु, शश्वत्, नूनम्, सीम्, त्वः, त्व, त्वत्, ये कर्मोपसंग्रहार्थ में पढ़े हैं। कम्, ईम्, इत्, उ, इव ये पादपूरणार्थ में प्रयुक्त किये हैं। अतः कह सकते हैं ‘उच्चावचाः पदार्थेषु निपतन्तीति निपाताः’ अर्थात् जो अनेकार्थों को दर्शाते हैं वे निपात कहाते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. यास्काचार्य निरुक्तम् अजमेर, वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज वि. सं. 2060, दशम संस्करण
2. महर्षि दयानन्द सरस्वती अव्ययार्थः अजमेर, वैदिक यन्त्रालय, वि. सं. 2048, अष्टम संस्करण
3. पाणिनि अष्टाध्यायी रामलाल कपूर ट्रस्ट, संवत् 2067, सन् 2010 ईस्वी, नवदश संस्करण
4. पाणिनि धातुपाठ रामलाल कपूर ट्रस्ट, माघ 2072, फरवरी 2016, दशम संस्करण
5. ऋग्वेदसंहिता अजमेर, वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज वि. सं. 2064 नवदश संस्करण
6. अथर्ववेद संहिता अजमेर, वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज वि. सं. 2064 नवदश संस्करण
7. यजुर्वेद संहिता अजमेर, वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज वि. सं. 2064 नवदश संस्करण



वेदार्थ-वीथिका

प्रो० रामप्रकाश वर्णी

जनिजुषां सर्वविधहितसम्पादनाय सर्गारम्भे जगदीशो यज्ज्ञानं ददौ, तदेव लोके 'वेद' इत्यभिख्यामाजगाम। तदानीन्तना जना वेदार्थं वेदेनैव विदन्ति स्म। तेषाङ्कृते वेदाङ्गोपाङ्गानां तादृग्ज्ञानं नैवावश्यकं बभूव-यथेदानीन्तनानां वेदार्थविज्ञानजिज्ञासुनां कृतेऽस्तीति। अस्येदङ्कारणन्तेषां जिज्ञासुनां मातृभाषादेवभाषा दैवीवाग्वाऽऽसीदिति। परं कालक्रमेण यथा-यथा मानवानामाध्यात्मिक्येऽरुचिस्समजनि भौतिक्ये चाऽऽकर्षणमजायत तथा तथा सत्त्वे नैयून्यं, रजसि च व्यर्द्धिरजायेताम्। फलतो मानवीयबौद्धिक सामर्थ्येऽपि न्यूनताऽविर्बभूव, कालक्रमेण च मानवीय-भाषायां नैके विकारा जनिमालेभिरे। तैरियं देववाणी स्वाभाविकरूपेण पर्यवर्तत मनुष्याश्च वेदतो वेदार्थमवगन्तुमक्षमा बभूवुः। मानवानामिदमेव मतिमान्दं वेदार्थस्यानेकप्रक्रियाणां जनिता बभूव। वेदार्थस्यविविध-प्रक्रियारूपप्रयत्नेषु पदपाठः, याज्ञिकीप्रक्रिया, बहून्याख्यानानि, नैकेब्राह्मणग्रन्था, वेदाङ्गानि च सृष्टानि। वेदार्थस्यैतेषु प्रयत्नेषु सत्सु वेदार्थसम्बन्धिसौविध्यसार्थमजायतेति सत्यम्, तथाऽपि मतिमान्दान् मानवा याज्ञिकादिप्रक्रियाणां रहस्यरूपहार्दभावमवगन्तुमसमर्था एवातिष्ठन्, अक्षम्यानि स्खलनानि च विदधिरे। यतः साध्यं वेदः, साधनञ्च शास्त्राणि तानि च शब्दमयानीति ऋते शब्दज्ञानान्नैवार्थोपलब्धेः। अर्थज्ञानायावश्यं प्रयतितव्यम्। तथा चोक्तं वाक्यपदीये हरिणा-"तस्मादर्थविद्याः सर्वाः शब्दमात्रासु निश्चिताः।¹ शब्दैरेवार्थावगतिरिति शाब्दिकाः।² न खलु वयं शब्दस्य स्वरूपमात्रेणैव तस्यार्थमवबोद्धुं क्षमाः, नैकानर्थसम्भावनापत्तेः।³ तद्यथा-'पिता दुहितुर्गर्भमाधात्'⁴, "कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनः",⁵

* निदेशकः, श्रद्धानन्द वैदिक शोधसंस्थान, गुरुकुल कांगड़ी (सम-विश्वविद्यालय) हरिद्वार

1. वाक्यपदीयम् - 1/119, 'वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती। न प्रकाशः प्रकाशे त सा हि प्रत्यवमर्शिनी। तत्रैव इदमन्धन्तमः कृत्स्नंजायेत भुवनत्रयम्। यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते। -1/4
2. अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्। तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते। वाक्यपदीयम्-1/13
3. अर्थवादाः स्वार्थप्रतिपादने प्रयोजमलभमाना लक्षणया क्रतोः प्राशस्त्यं प्रतिपादयन्ति, स्वार्थमात्र-परत्वे आनर्थक्यप्रसङ्गात्। मीमांसान्याय, खण्ड-5, शाब्दीभावना।।
4. ऋग्वेदसंहिता - 1/164/33
5. अथर्ववेदः - 13/3/26

“एष ते¹ रुद्र भागः सह स्वस्त्राऽम्बिकया ते जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः।¹

शब्दस्तस्यार्थश्चोभौ नित्यौ, तयोः सम्बन्धोऽपि नित्यः।² एतेषां क्षेत्रन्त्वतिविरुतर-विस्तीर्णम्।³ न खल्विदं परिमितसाधनैस्सामर्थ्यैश्चावगन्तुं शक्यते। एतस्य किल शब्दस्य सम्यगर्थप्रत्ययो लोकव्यवहारेणैव जायते। तथा चोक्तं यास्केन “शब्दार्थस्य परिज्ञाने लोक एव हि कारणम्।⁴” निरुक्तश्लोकवार्तिकस्यास्य ‘लोके’ पदस्य तात्पर्यम् ‘मातृभाषा’ भवति। सैव लोकपदेनेहालिखितास्ति। तयैवार्थोऽवबुध्यते, न खलूपायान्तरेणेति, अत एवेहार्थावबोधे तस्या अनितरसाधरणं महत्त्वम्। इत्थं तु लोके-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।

वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यवः सिद्धपदस्य वृद्धाः।।⁵

इति कारिकानुसारं ‘व्याकरणम्, उपमानम्, कोषः, आप्तवाक्यं, वृद्धव्यवहारः वाक्यशेषः (प्रकरणम्), विवृतिः (व्याख्या) प्रसिद्धपदस्य सान्निध्यज्वेति ‘शक्तिग्रहस्य’-शब्दार्थबोधस्य हेतवो भवन्ति। महाभाष्यकृतपतञ्जलिः, न्यायदर्शनकरो गौतमश्च निर्दिदिशतु-“चतुर्भिः प्रकारैस्तस्मिन् सः इत्येतद्भवति-‘तात्स्थ्यात्, ताद्धर्म्यात्, तत्सामीप्यात्, तत्साहचर्याच्चेति।⁶” “सहचरणस्थान-तादर्थ्य-वृत्त-मान-धारण-सामीप्य-योग-साधन-आधिपत्येभ्यो ब्राह्मण-मञ्च-कट-राज-सक्तु-चन्दन-गंगा-शाटक-अन्न-पुरुषेष्वतद्भावे तदुपचारः।⁷” इह पतञ्जलि-गौतमौ शब्दः कदा कथं च स्वार्थं विहाय ‘अर्थान्तरं भजत’ इति सुस्पष्टं निजगदतुः। अत्र हीमान्युदाहरणान्यवलोकनीयानि यष्टिकां भोजया। यष्टीः प्रवेशय-अत्र हि यष्टि-पदेन न खलु ‘वेणु-दण्डः’ अभिप्रेतः, प्रत्युत तामादाय इतस्ततोऽटाट्यमानो ब्राह्मणः, दण्डधृद् ‘ब्रह्मचारी’ वाऽभिप्रेतः। अयमेव ‘साहचर्य-नियमः।’ तत्साहचर्यात् ताच्छब्दम्। एवमेव ‘मञ्चाः क्रोशन्ति’ इत्यस्य नायमर्थो यन्मञ्चाः शब्दायन्त इति, प्रत्युत तत्रस्थाः पुरुषा उच्चैरुच्चारयन्तीत्येव। अत्राधेये ह्याधारस्यारोपञ्चकार प्रयोक्तेति स्पष्टम्। ‘अग्निं चिनोति, अग्निमारोहन्ति, अग्निं प्रोक्षति’ इत्यादिष्वपि नैवाग्निपदेन दाहकत्वावच्छिन्नज्वालमालाकलापो विवक्ष्यते प्रत्युत, एतेन पदेनास्याधाररूपोऽत्रस्थण्डिल एवार्थत्वेन विवक्षितः। अत्राप्यधिकरण आधेयत्वारोपः। तदेवं ब्राह्मणग्रन्थेषु बहुत्र ‘आधाराधेय

1. यजुर्वेदसंहिता - 3/57

2. नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्राम्नाता महर्षिभिः। वाक्यपदीयम्

3. महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः। सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाः चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः०॥ महाभाष्यम्, पस्पशाह्निकम्॥

4. निरुक्तश्लोकवार्तिकम् - 1/1/72

5. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली - शब्दखण्डः

6. महाभाष्यम् - 2/248

7. न्यायदर्शनम् - 2/2/6

योरभेदोपचारो' दृश्यते। तेनायं नियमः 'तात्स्थ्यात् ताच्छब्दम्' इत्येवमवबोद्धव्यः। तैत्तिरीयसंहिताया 'आयुर्वै घृतम्'¹ इत्यस्य वाक्यस्यापि 'घृतमेवायुरिति' नैवार्थः, परं दीर्घायुष्यलाभाय घृतस्य सततमशनं निमित्तमित्येवेति। तथा चायमाह महाभाष्यकृत्पतञ्जलिः अन्तरेणापि निमित्तशब्दं निमित्तार्थो गम्यते।² तद्यथा-आयुर्घृतिम्, आयुषो निमित्तमिति गम्यते। अत्र कारणकार्ययोरभेदोपचारः। एवमेव 'यज्ञो वा आयुः'³ 'प्राणो वा आयुः'⁴ 'आयुर्वै गायत्रम्'⁵ 'अन्नम् वाऽआयुः',⁶ प्रभृतिषु स्थलेषु सुधीभिरर्थो विवक्षित इति वेद्यम्। अत्र सर्वत्र 'तादर्थ्यात्ताच्छब्दम्' इति नियमः प्रसरीसतीति विज्ञाः। एतस्य नियमस्य प्रभविष्णुतामधस्ताद् विलोकयामः - 'अमृतमायुः'⁷ 'अमृतेनैवाऽऽयुरात्मन् धत्ते'⁸ 'प्रजापतिर्यज्ञः'⁹ 'प्रजापतिर्यज्ञमसृजत्'¹⁰ 'गङ्गायां घोषः', गङ्गायां गावश्चरन्ति' इत्यत्र गङ्गापदं नैव भगीरथरथ-खातावच्छिन्नजलमयिप्रवाहे शक्तं प्रत्युत तीरत्वावच्छिन्न एवेति वदन्त्यालङ्काराः।¹¹ अयं नियमः 'ताद्धर्म्यात् ताच्छब्दम्' इत्युच्यते। अस्यैव प्रकृष्टाच्छय 'विष्णुर्वै यज्ञः'¹² इत्यादिष्वलोक्यते। अस्य प्रतिच्छायमिव 'तत्सादृश्यात् ताच्छब्दम्' इति। इममाश्रित्यैव यास्काचार्यः स्वकीये निरुक्ते बहून् शब्दान् व्याचख्यौ। अत्रोपमानोप मेययोरैकार्थ्यमारोप्यते। तथाह यास्कः-'तत्प्रकृतीतरत् सन्धिसामान्यात्'¹³ अतोऽतिरिक्तम् 'काकेभ्यो दधिरक्ष्यताम्'¹⁴ इत्याद्युपलक्षणात्मके, औपचारिके च प्रयोगे 'अवयवेषु समुदायस्य कथनम्',¹⁵ 'समुदायेचावयवस्य कथनं',¹⁶ अन्यतरव्यपदेशः'¹⁷,

-
1. तैत्तिरीयसंहिता - 2/3/2/2
 2. महाभाष्यम् - 1/159
 3. ताण्ड्यब्राह्मणः - 6/4/4
 4. ऐतरेयब्रा० - 2/38
 5. जैमिनीयब्रा० - 1/292
 6. शतपथब्रा० - 9/2/3/16
 7. तत्रैव - 3/8/2/27
 8. तैत्तिरीयब्रा० - 3/3/4/3
 9. ऐतरेयब्रा० - 2/17
 10. तत्रैव - 7/19
 11. द्र०- काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पणश्च-लक्षणानिरूपणप्रसङ्गः।
 12. ऐतरेयब्रा० - 2/17
 13. द्र०-निरुक्तम् -1/20
 14. तद्बोधकत्वेसतितदितरबोधकत्वमुपलक्षणत्वम्।
 15. समुदायेषु हि शब्दाःप्रवृत्ता अवयवेष्वपि वर्तन्ते। महाभाष्यम्-पस्पशाह्निकम्।
 16. तद्यथा- आढ्यमिदं नगरमिति।
 17. तद्यथा- देवदत्तस्य पुत्रः, देवदत्तायाः पुत्र इति।

तत्सम्बन्धात् ताच्छब्दम्,¹ तद्विषयत्वात् ताच्छब्दम्, 'विद्यमानस्या-विवक्षा,² अविद्यमानस्य च विवक्षा,³ भेदेऽभेदः, अभेदे च भेदव्यवहारः प्रभृति-प्रयोगसमाचाराः भाषायामवलोक्यन्त इति सार्वजनीनम्। अयमत्राशयः-कस्यापि विशिष्टार्थस्याभिव्यक्तिहेतवे कस्यचिच्छब्दस्य प्रकृति-प्रत्यययोगजन्या केवला बाह्या-रूपरचना नैव समर्था भवति। अत्र हि तदव्यतिरिक्तानि बहूनि कारणानि भवन्ति।

ब्राह्मणग्रन्थेष्विमे भाक्तप्रयोगाः प्राचुर्येण विद्यन्ते। अस्मादुचितमेव बभासे यास्काचार्यः 'बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि।'⁴ प्रायशः सर्वत्र ब्राह्मणेषु साधन-साध्ययोरभेदार्थ एव स्वीकृतः। यथा हि- 'श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति।'⁵ 'श्रोत्रं वै ब्रह्म।'⁶ एतेनेदमवबोधनीयम्- 'शब्दब्रह्म' इत्यस्य पदस्यार्थः 'शब्देन ब्रह्म ज्ञायते' तस्मादसौ 'शब्दब्रह्म' इत्यभिधीयते, न खलु 'शब्द एव ब्रह्मे'ति। अन्यथा केनोपनिषदः 'नेदं ब्रह्म यदिदमुपासते'⁷ इत्यादिसन्दर्भः कथं साङ्गत्यं व्रजेत्। यतो हि वाक्-श्रवणयोर्विषयभूतः शब्दो नैव ब्रह्मपदभाग् भवितुमर्हति। शब्द आकाशगुणः, गुणश्च गुणी नैव जायते कदाचन। अत्र केचिद् भ्रान्ताः भ्रान्तिमिमां लोके प्रसारयामासुः। अर्थबोधे शब्दस्य स्वरूपमात्रमेव कारणं मन्वानाः परास्ताः। एवमेव ब्राह्मणग्रन्थेषु 'विशेषण-विशेष्यभावादा'वपि तुल्यार्थता प्रदर्श्यते बहुत्रेति। तस्मात्ते ब्राह्मणग्रन्थसन्दर्भाः महत्या सावहिततयैवाध्येतव्याः नोचेद् बहुत्रानर्थापत्तेः। तद्यथा- बृहदारण्यकोपनिषदः 'अहं ब्रह्मास्मि'⁸ इति वाक्यस्यार्थः "कश्चिन्मुक्तजीवो ब्रह्मसहचारित्वाद् ब्रह्मस्थत्वाद्, ब्रह्मणोऽत्यन्तनिकटस्थत्वाद् ब्रह्मधर्मसंयुक्तत्वाच्चात्मानं ब्रूते- 'अहं ब्रह्मास्मी'ति। इदं तदीयं गौणकथनम्। असौ ब्रह्मस्थः सन्नेवात्मानं गौणत्वेन 'अहं ब्रह्मास्मी'त्याह, न खलु मुख्यतयेति। तदेवमस्य व्याहृतेर्मुख्यार्थमविज्ञायैव केचिद् 'अद्वैतवादस्य' भव्यातिभव्यं प्रासादमतिष्ठिपन्। मित्रं प्रति मित्रस्य 'अभिन्नहृदयः' इति लेखनमुपचार एव न खलु याथार्थ्यं, तयोः परस्परं भिन्न-भिन्नत्वादिति। इत्थं भाषायां वाग्व्यवहारव्यवस्थामविज्ञायैव कस्यचिच्छब्दस्य वर्णानुपूर्वीमात्रमवलम्ब्यार्थानुसन्धानं महतेऽनर्थाय कल्पत इति निश्चयः। अत्रेदं कूटपद्यमुदाहरणम् -

1. अवकीर्यत इत्यवकरः-अन्नमलम्। तत्सम्बन्धात् देशोऽपि तथा (अवकर उच्यते) उच्यते। काशिकावृत्तिः - 6/1/148
2. सतोऽप्यविवक्षा भवति। तद्यथा- अनुदरा कन्या। महाभाष्यम् - 1/4/24
3. असतश्च विवक्षा भवति- समुद्रः कुण्डिका, विन्ध्योर्वर्धितकमिति। महाभाष्यम् - 1/4/24
4. निरुक्तम् - 7/24
5. ऐतरेयब्रा० - 2/40
6. द्र० - तत्रैव 2/40
7. द्र० - केनोपनिषद् - 1/4/7
8. बृहदारण्यकोपनिषद् - 1/4/10

केशवं पतितं दृष्ट्वा द्रोणो हर्षमुपागतः।
 रुदन्ति कौरवाः सर्वे हा! केशव हा! केशव॥
 एको ना विशन्तिस्त्रयः स्नानार्थं सरयुं गताः।
 एको व्याघ्रेण भक्षितो विंशतिः पुनरायाताः॥

एतस्य पद्ययुगलस्य सामान्यार्थं यो ह्यनर्थ एव तं हित्वा भूतार्थ एव चिन्तनीयः। यतो हि स अतीवाह्लादकरो मनोरञ्जकश्चास्तीति। संस्कृतकाव्येषु वक्रोक्तचलङ्कारस्य बहून्युदाहरणान्यस्माकं कथनस्योपोद्वलकानीति तानि तत्रैव द्रष्टव्यानि। हार्दिकभावा-
 नामभिव्यक्तेरयं प्रकारो बहुषु वेदमन्त्रेषु ब्राह्मणवचनेषु च दृश्यते। एनमेवाभिलक्ष्योवाच यास्कः ‘परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः’, ‘ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यासंयुक्ताः’ इति।¹

वेदार्थ-विज्ञानजिज्ञासोर्वैदिकीभाषायां विशेषाधिकारः परमंव्याप्रियते। वेदवक्तृ-
 परमात्मनोऽन्तः स्थित-निगूढाशयस्य निजहृदि सुदृढतायै तत्सान्निध्यं ततोऽपि परम-
 मावश्यकम्² एतेनासौ देश-काल-परिस्थितिमतिक्रम्य लोकव्यवहारादिकञ्चापि सम्यगतीत्य-
 पुरातनमृषियुगं व्रजेत्, स्वयमप्यृषिर्भवेदिति।³ तदैवासौ वेदानां वास्तविकमर्थं स्वाभाविकतया
 स्वयमेव साक्षात्करिष्यतीति रहस्यम्।⁴ षडङ्गाध्ययनमितरमार्षवाङ् मयस्यानवरतं श्रद्धयाध्ययनं
 परम-मावश्यकम्। नैकेनापि केनापि शास्त्रेण भाषा नियमेषु निगडितुं शक्या। अत्र हि
 बहुश्रुतत्वं नितरामपेक्षते। तथा चोवाच तन्त्रवार्तिककृत्- “वाच्य-वाचकसम्बन्धो
 नाचार्यैरुपदिश्यते”⁵ इति। अत एव शास्त्राणि पन्थानमेवानुदिशन्ति सर्वाणि। न तैर्वेदार्थो
 विशकल्यावगम्यते। शब्दस्य बाह्यरूपरचनामाश्रित्य केचिद् वेद भाष्याणि प्रणिन्यरेऽभि-
 धात्मकानुवादरूपाणि, तानि यज्ञार्थमेव बभूवुः, न खलु यथार्थविद्याऽवद्योतनायेति। याज्ञिकानां
 ब्राह्मणानां हि ते ग्रन्थाः। न वा अन्येषामिति। अत एव विद्वान्सस्तेषां याज्ञिक प्रक्रियायामेवार्थान्
 चक्रुः। तेषामयमहेतुकोऽर्थसङ्कोचो वेदानां बृहतीं क्षतिं विदधौ। अयमेव च महर्षेरन्येषां
 च भाष्येषु भेदः।

लोके सामान्य-लौकिकसंस्कृतसाहित्यस्यावबोधाय नैके लौकिकसंस्कृतकोषाः
 निर्मितास्सन्ति परन्तु तेषामेकोऽपि नैव वेदभाष्याय साहाय्यं प्रयच्छति, तस्मात्तेऽत्र नैव

1. निरुक्तम् - 10/10/46

2. ब्रह्मणः सायुज्यमृषयोऽगच्छन्। तैत्तिरीयारण्यकः - 2/9/2

3. ‘न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा’। निरुक्तम् - 13/12। ‘न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम्’।
 बृहदेवता - 8/129

4. तद्यदेनैस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भुः (अपौरुषेयो नित्यो वेदार्थः) अभ्यानर्षत्। त ऋषयोऽभवन्।
 तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते। निरुक्तम् - 2/11

5. तन्त्रवार्तिकमीमांसा - 3/4/4

सहयोगिन इति नैवेतस्मा अध्येतव्या इति। इदमेव कारणं गोः गव्यार्थं नैवानुमोदते वाचस्पत्यम्, शब्दकल्पद्रुमो वा। निरुक्तकृद्यास्को निऋति-शब्दं द्विधा निरुवाच, प्रथमं तावत् 'पृथ्वी'ति निर्वचनं निऋतेः, द्वितीयञ्च 'पाप्मा वै निऋतिरिति। अत्राह कश्चिन्निरुक्तभाष्यकारः कश्चिन्निरुक्तेः- निऋतेः प्रथमोऽर्थः 'पृथिवी'ति नैव 'वाचस्पत्यं' प्रभृतिभिः कोशैरनुमोदितो भवतीति। सर्वेषु कोशेषु क्लेशकरी निऋतिरित्येव निर्दिदि-शुस्तत्प्रणेतार इति। चतुर्वेदभाष्यकृत्सायणोऽपि स्ववेदभाष्येषु 'गोत्रा' शब्दस्य कुत्रापि 'पृथिवी' इत्यर्थं नैवादीदृशत्। अनुकृतिपरायणानामतपस्विवेदभाष्यकाराणां भाष्याणामयमेव परिणामः अत्र महर्षिस्वामिदयानन्ददर्शिता उपाया एवोचिताः। तदनुसृत्यैव चिन्तनीयं मननीयञ्चेति यशस्कामैः। अत्र हरिरप्याह 'वेदशास्त्राविरोधी च तर्कश्चक्षुरपश्यताम्।'¹ महर्षिः यास्कोऽपि तथैव मेने।²



1. वाक्यपदीयम् - 1/135

2. मनुष्या वा ऋषिषूक्तामत्सु देवानब्रुवन्- को न ऋषिर्भविष्यतीति? तेभ्य एवं तर्कम् ऋषिं प्रायच्छन्मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। निरुक्तम् - 13/12

वेदेषु राष्ट्रियभावना

-डॉ. प्रकाश चन्द्र पन्तः

प्रस्तावना

प्राचीनः आर्याणां वैदिकधर्मः। आर्यहिन्दवः वेदानेव स्वधर्ममूलं मन्यन्ते। प्रायेण सर्वे भारतीयविचारकाः चिरकालादेव वेदान् धर्ममूलमिति मत्वा समर्चयन्ति। आर्याणां सभ्यतासंस्कृतेः, साहित्यस्यारम्भश्च वेदाविर्भावादेव। भारतीयधर्मसाहित्यसभ्यता संस्कृतिकलादीनां विकासे वेदानां महत्त्वपूर्णस्थानमस्ति। सर्वेषामेतेषां मूलं तु वेदा एव। अपि च भारतीयधर्मसंस्कृतेः भव्यः प्रासादो वेदानामेवाधारशिलायां विनिर्मितः वर्तते। वेदान् प्रति पुराकालादेव समेषामास्था, श्रद्धा चास्ति। पृथिव्याः कश्मिश्चिदपि कोणे स्थितः हिन्दुजनः स्वधर्मसंस्कृतेः मूलाधाररूपं वेदानेवाङ्गीकरोति। प्रत्येकं धार्मिकपर्वणि सामाजिकसमारोहेषु हिन्दूनां गृहेषु वेदमन्त्राणामुच्चारणं परमया श्रद्धया क्रियते। भारतवर्षेऽस्मिन् प्राचीनकालादेव धर्मदर्शनसदाचारादिविषये विभिन्नानि मतानि प्रचलितानि वर्तन्ते। परं तैः सर्वैरपि स्वस्वमताधाररूपेण वेदास्स्वीकृताः। प्राचीनाचार्याश्चापि स्वमतानां पुष्टिं वेदमन्त्रैरेव चक्रुः।

भारतीयसाहित्ये वेदानां गुणगानं सर्वैरेव कृतम्। वेदोत्तरकालस्य साहित्ये ब्राह्मणारण्यकोपनिषत्सु वेदाङ्गेषु दर्शनस्मृतिग्रन्थेषु च वेदाः ईश्वरकृता अपौरुषेयाश्च मत्वा वेदानामेव प्रामाणिकताङ्गीकृता। वस्तुतः सर्वमपि साहित्यं वेदानामेव व्याख्या वर्तते। मनुना तु प्रोक्तं यद् नास्तिको वेदनिन्दकः। भारतीयदर्शनेषु प्रतिपादिताः विभिन्नाः सिद्धान्ताः वेदमन्त्रप्रमाणैर्पुष्टाः वर्तन्ते। केवलं भारतस्यैव नहि, अपितु नैकाः पाश्चात्यविद्वांसो वेदेषु सन्निहितं ज्ञानं विलोक्य प्रभाविताः। तैः स्वीकृतं यद् वेदानां ज्ञानं मानवानां कृते अत्यावश्यकमुपयुक्तं हितकरञ्चास्ति। वेदा अपौरुषेयाः सन्ति, इत्येतस्य पुष्टिर्भवति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां तथाहि-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।^१

* सहायकाचार्यः, शिक्षाशास्त्रविभागे, उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्।

1. ऋग्वेदे- 10/90/9

यस्मादृचो अ॒पात॑क्षन् यजु॒र्यस्माद॒पाक॑षन्।
सामा॑नि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्॥¹

बृहदारण्यके तु वेदा ईश्वरस्य निःश्वासरूपाः निगदिताः सन्ति। तद्यथा- एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः²

शतपथब्राह्मणे विलिखितमस्ति यदग्निवायुसूर्याणां तपसा त्रयो वेदाऽजायन्त। तथाहि-

तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो
वायो॒र्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।³

भारतधरणीयमस्माकं जननी। तत्पुत्रत्वेन तस्या मातुः स्वराष्ट्रस्य देशस्य वा संरक्षणं भारतमातुः पुत्राणामस्माकं परमं कर्तव्यं भवति। आवश्यकतायां सत्यां, सति चावसरे मातृभूमेः, स्वराष्ट्रस्य च संकटनिवारणाय सर्वेऽपि वयं प्राणार्पणं कर्तुमपि तत्पराः भवामः। अयमेव भावः खल्वत्रार्थर्ववेदे प्रकटितो वर्तते। तद्यथा- व॒यं तुभ्यं बलि॑हृतः स्याम। (अथर्ववेदः 12/1/62)

मान्याः! का सा भावना? यया भावनया राष्ट्रभक्तिभावभरिता भारतीयवीराः, सैनिका, देशभक्ता नागरिकाः, दीपशिखायां पतङ्गवत् स्वकीयान् प्रियान् प्राणान् समर्पयितुं सततं सिद्धाः भवन्ति। सा भावना राष्ट्रभक्तिभावना, किं वा देशभक्तिभावना। देशभक्तिः राष्ट्रभक्तिरेव साऽद्वितीया शक्तिर्विद्यते यया जनाः सर्वमपि विहाय राष्ट्रहितं सम्पादयितुं समुत्सुका भवन्ति। अत एव राष्ट्रहितं राष्ट्रप्रेम च सर्वोपरि भवति। अयमेव भावः आंग्लभाषाकविना बैरन (BYRON) महादेयेनापि प्रकटितो वर्तते। असौ निगदति यत्-यो न राष्ट्राय स्निह्यति सः स्नेहं (प्रेम) कर्तुमेव न जानाति। यथा- 'He who can't love his country can love nothing.'

यो नरः स्वदेशहितचिन्तनं न करोति, स्वराष्ट्रदेवं नार्चति, स मनुष्यो न, स तु साक्षात्पशुरेव। प्रसङ्गेऽस्मिन् संस्कृतस्य प्रसिद्धेन कविना डॉ. कपिलदेवद्विवेदिना साधु लिखितं वर्तते यत्- 'यस्य जीवने मातृभूमेः राष्ट्रस्य हितचिन्तनं राष्ट्ररक्षणं, राष्ट्राय बलिदानभावो न भवति, वस्तुतस्तस्य जीवनं तु श्मशानतुल्यमेव भवति।

न यत्र देशोद्धृतिकामनाऽऽस्ते न मातृभूमेर्हितचिन्तनं च।
न राष्ट्ररक्षा बलिदानभावः, श्मशानतुल्यं नरजीवनं तत्॥

वस्तुतो राष्ट्रहितं राष्ट्रहितव्याजेन समाजस्य हितं, राष्ट्रस्य शत्रूणामुन्मूलनं, समाजोन्नतिः,

1. अथर्ववेदे- 10/7/20

2. बृहदारण्यकोपनिषदि-2/4/10

3. शतपथब्राह्मणे- 10/52/3

राष्ट्रस्य सर्वविधं सुदृढीकरणञ्च राष्ट्रहितं गण्यते। संस्कृतभारत्यां तु राष्ट्रहितस्य भावा वेदेषु तदुत्तरवर्तिनि साहित्ये, पुराणेषु च पदे पदे सन्त्येव। संस्कृतसाहित्यानन्तरं जाते हिन्दीसाहित्ये तथा चांग्लसाहित्येऽपि राष्ट्रहितचिन्तनपराः भावाः काले काले कैश्चिद् कविभिः कवितासु काव्येषु वा लिखितास्सन्ति। यथा-

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है॥

(मैथिलीशरणगुप्तस्य)

प्रसङ्गेऽस्मिन्नत्रैवांग्लभाषाया अपि कविद्वयस्य भावा उल्लेखनीयाः इति मे मतिः। तत्र डेनियल वेब्स्टर महोदयो लिखति यदस्माकं जीवनोद्देश्यमेव समग्रं राष्ट्रं नान्यत् किञ्चिदपि। यथा- 'Let our object be our country. Our whole country and nothing but our country.'

एवमेव द्वितीयेन हावार्डमहोदयेनापि विलिखितं वर्तते यत् देशहितसम्पादनमस्माकं सर्वोत्कृष्टं कर्तव्यं भवतीति। तद्यथा- 'Our country's welfare is our first concern and who promotes the best proves his duty' HAVARD.

सुरभारतीसमुपासकैः कविभिः पुराणेष्वपि राष्ट्रहितचिन्तनं विहितं वर्तते। विष्णुपुराणे तु लिखितं यत् भारतधराया गीतानि तु देवा अपि गायन्ति। यथा-

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

-विष्णुपुराणम्-2/3/24

सर्वभूतहितसाधनमेवास्माकं प्रमुखं लक्ष्यमिति सुरभारतीसेवकैः तदुक्तमेव। राष्ट्रद्रोहो राष्ट्रभेदस्तु विपज्जनक एव। वेदेषु तथा च साम्प्रतिकलौकिककर्मकाण्डादिषु क्रियासु यत् 'स्वाहा' इति पदं प्रयुज्यते तत्तु वस्तुतः स्वार्थभावनायाः सर्वथा त्यागायैव। वैदिकयज्ञप्रक्रियायां सर्वत्र स्वार्थत्यागपूर्वकं परार्थसाधनमेव शिक्ष्यते। तस्माद् सम्प्रति यदि सुरभारतीसाहित्यार्णवात् किञ्चिदपि ज्ञानं जनाः धारयेयुस्तदा इदानीन्तनसमस्यानां परिहारो नूनं स्यादेव। यतोहि वैदिकसाहित्ये लौकिकसंस्कृतवाङ्मये च ये उदात्तभावा वर्णितास्सन्ति ते तु सर्वतो जनेषु राष्ट्रभक्तिबीजानि एव वपन्ति। अस्माकं तत्त्वदर्शिभिः पूर्वमेव भणितं वर्तते यत् **इदं न मम, राष्ट्राय स्वाहा, इदं राष्ट्रायेति**। अथ च निजत्वपरत्वभावना त्वल्पधियां जनानामेव भवति। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकमिति। साम्प्रतं नातिविस्तरेण वेदेषु वर्णितां राष्ट्रियभावानत्र समुपवर्णयामि।

वेदेषु राष्ट्रियभावना

स्वराष्ट्रस्य भूमिर्जनसमुदायः, संस्कृतिः, सभ्यता, इतिहासः, धर्मः, साहित्यं, कला, राजनीतिः, जीवनादर्शाश्च राष्ट्रमिति। राष्ट्रं प्रति जनानां मनसि तस्य गरिमणो

महिम्नश्च यत्रैसर्गिकं स्वाभिमानमुत्पद्यते, सैव राष्ट्रियभावना निगद्यते। इयमेव सा भावना विद्यते यया भावनया भाविताः, मोहिताः, वशीभूताश्च जनाः राष्ट्राय स्वकीयं सर्वस्वं समर्पयन्ति समर्पितवन्तः वेति। अनया भावनया एव न जाने कियन्तो देशभक्ताः स्वीयं जीवनं मुदा राष्ट्रदेवार्चनायां समर्पितवन्तः। अस्य बलिदानस्य कारणभूता राष्ट्रियभावना एवास्ति।

राष्ट्रियभावनेयं न केवलमद्यापितु सृष्टिप्रारम्भकालादेव, किञ्च वैदिककालादेवेति। यथा- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्ववेदे- 12/01/12) इत्युक्त्वाथर्ववेदस्य ऋषिः मातृभूमिं प्रति स्वात्मभावं प्रकटयति। न केवलमथर्ववेदे किञ्च ऋग्वेदेऽपि स्थाने-स्थाने देशस्वतन्त्रतायाः प्रार्थना कृताऽस्ति। राष्ट्रशब्दः यजुर्वेदस्य दशमेऽध्याये मुहुर्मुहुः प्रयुक्तो वर्तते। तथाचान्यासु वैदिकसंहिताष्वपि राष्ट्रकल्याणस्य भावपूर्णाः प्रार्थनाः कृताऽस्ति। यजुर्वेदस्य द्वाविंशेऽध्याये प्रार्थनेयं नितरां विलोकनीया पठनीया मननीयेति। तथाहि- आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्राष्ट्रे राजन्यः शूरैः षष्ठ्योति व्याधीर्महारथोज्जायताम्वोग्धी'धेनुर्वोढा नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रियोषाजिष्णूरथेष्ठाः। सभेयोयुवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो'व्वर्षतुफलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।¹

प्रार्थनेयं तु विश्वेतिहासे स्वर्णाक्षरैः लेखनीया येनाग्रेऽपि जनानां मनस्सु स्वराष्ट्रं प्रति प्रेमभावानोत्पद्येत। वैदिकैः ऋषिभिः सम्पूर्णविश्वमेव राष्ट्रशब्देनोद्घोषितं विद्यते। वैदिककविभिः राष्ट्रियविकासाय सङ्गठननिर्माणायैकतायै च नैकोपदेशाः प्रदत्ताः वयं सर्वैः सह मिलित्वा चलेम, मिलित्वा वदेम, मिलित्वैव सर्वैः सह सौमनस्यं कुर्याम, सर्वेषामुद्देश्यानि समानानि स्युः, तथा च समेषां मनांसि निश्छलानि स्युः। तथाहि-

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानानामुपासते॥²

विविधधर्मान् धारयन्तो विविधभाषाभाषिणो जनाः पृथिव्यां तथा संवासं कुर्युः यथैकस्य परिवारस्य जनाः गृहे सन्निवसन्ति। एतस्योल्लेखः अथर्ववेदस्य द्वादशे काण्डे समुपलभ्यते। यथा-

जनं विश्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवीं यथौकसम्।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥³

वैदिकसाहित्ये स्वराष्ट्रस्य भूमिनिदीपर्वतवनानि प्रति सम्मानभावना सर्वत्रैव दृग्गोचरी भवति, तथाहि-

1. यजुर्वेदे- 22/22

2. ऋग्वेदे- 10/191/2/4

3. अथर्ववेदे- 12/01/45

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
 यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै¹ देवाय हविषा विधेम।¹
 हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गमः।
 आपो¹ ह्यं तद् देवीर्ददन हृदयोतमेषजम्॥²

इमं मे¹ गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं¹ सचता परुष्ण्या। अस्मिकन्या
 मरुद्बृधे वितस्तया ऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥³ इत्थं खलु वयं वक्तुं शक्नुमो
 यद्वेदेषु राष्ट्रविषये यत्र तत्र वर्णनं समुपलभ्यते नूनमेवेति।

राष्ट्रोत्थानाय सत्यभावना

विश्वस्य नानाविधरमणीयेषु पदार्थेषु सत्यं सदा विभाति। सत्यमेवावधार्यान्नादयो
 विविधाः खाद्यपदार्थाः काम्यन्तेऽस्माभिः। ऋतस्यैव हेतोः सूर्याकराः सलिलेष्वन्तः
 प्रविश्य तान्यूर्ध्वं नयन्ति। सत्याचरणपूताः शिक्षितवाचस्तथैव सत्यब्रह्माप्नुवन्ति यथा
 गावो वत्सस्थानम्। अस्योल्लेखः ऋग्वेदेऽपि विलोक्यतेऽस्माभिर्यथा-

ऋतस्य दृळहा धरुणानि सन्ति पुरुणि चन्द्र वपुषे वपूषि।
 ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्षं ऋतेन गावं ऋतमा विवेशुः॥⁴

केवलं ऋग्वेदे एव नहि सत्यस्य महिमा त्वन्यत्राऽपि गीता यथा- द्युलोकं
 बाह्यरूपेण देवस्सविता सन्धारयति तथैवान्तररूपेण सत्यस्येवाश्रयेण भूरियं सन्धारयति।
 वस्तुतस्तु संसारादस्मात् सत्येपगते न कोऽपि कश्मिश्चिदपि कदापि विश्वसेत् तथा च
 सर्वेऽपि लोकव्यवहाराः राज्यव्यवहारा एवोच्छिदेरन्। तस्मात् सत्यमेव भूमेराधारो विद्यते।
 अतः राष्ट्रभक्तैः, राष्ट्रनायकैश्च सत्यमाचरणीयमिति वेदादेशः पूर्णतया यथार्थः इत्याभाति
 तथाहि- सत्येनोत्तंभिता भूमिः सूर्येणोत्तंभिता द्यौः⁵ अथर्ववेदस्य मातृभूमिकासूक्तेऽपि
 पृथिव्याः सन्धारकेषु सप्तपदार्थेषु प्रथमं सत्यमेवपरिगणितं दरीदृश्यते यथा-

सत्यं बृहदुतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मं यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
 सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥⁶

एवमेव यजुर्वेदे प्रोक्तं यद् सृष्टिकृदीश्वरः सत्यासत्ययोरुभयोः रूपे विविच्य ते
 पृथक्-पृथक्करोत्। तयोः श्रद्धया पात्रता सत्येऽस्ति, अश्रद्धायाश्चानृते।

1. ऋग्वेदे- 10/121/04
2. अथर्ववेदे- 6/24/9
3. ऋग्वेदे- 10/75/5
4. ऋग्वेदे- 4/23/9
5. ऋग्वेदे- 10/85/1
6. अथर्ववेदे- 12/1/1

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥¹

तथैवाप्यन्यत्राप्युक्तं यद् व्रताचरणेनैव मनुष्यो दीक्षाम् (उन्नतजीवनं) धारयितुं योग्यतां लभते, दीक्षया स दक्षिणाम् (प्रयत्नसाफल्यं) लभते, दक्षिणया च सः स्वादर्शेषु श्रद्धां, श्रद्धया च सत्यमवाप्नोतीति यथा-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्नोति॥²

अत एव वेदेषु एवं प्रार्थितः परमेश्वरः यदहं हि वाचि सत्यं लभेयम् 'वाचः सत्यमशीमहि'³ यज्ञेनाहं सत्यं श्रद्धां च विन्देयं तद्यथा-

सत्यञ्च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च
मे विश्वञ्च मे महश्च मे क्रीडा च मे।
मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे
सूक्तञ्च मे सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥⁴

वेदेषु राष्ट्रियतायाः भावाः प्रायेण सर्वत्र वर्णिताः सन्ति। तेषु क्वचित् सूत्ररूपेण क्वचिच्च विशद्वूपेण। यदि राष्ट्रवासिनः सत्याचरणं कुर्वन्ति, सत्यमेव व्यवहरन्ति, तर्हि तद्वाष्ट्रं तु निश्चितमेवोन्नतं राष्ट्रं भवति। तस्य राष्ट्रस्य कदापि कापि हानिर्भवितुमेवाशक्ता। यतोहि- वेदवाक्यमिदं वर्तते यद् सत्यस्य पृथि रक्षति ईश्वरः अपि च ऋतस्य पृथि वेधा अपायि⁵ सर्वेषां जनानां राष्ट्रप्रेमभावनया सहैव भावनेयं स्यात् यद् अतोऽह-मनृतादपगतः सत्यं समाश्रये- अहमनृतात्सत्यमुपैमि⁶ सत्ये प्रकाशे च साम्यमभेदं चास्ति। अत एव सविताऽपि सत्यमेव वितनोति यथा- सत्यं तनोति सूर्यः⁷। सनातन-वैदिकसंस्कृतिसमाश्रितो हिन्दुसमाजो यद्यपि चतुर्षु वर्णेषु विभाजित आसीत् तथापि तत्र कर्मप्राधान्यं जन्मप्राधान्यं जग्राह।

यावनैरत्याचारैर्भारतीया संस्कृतिः परम्पराः तत्त्वचिन्तनञ्च सर्वथा लुप्तप्रायमिवाभवत्, सर्वे वैदिकसंस्कृतिं परित्यक्तवन्तः। साम्प्रतं प्रायेण जनाः परस्परं छलकपटैः असभ्यतया च व्यवहरन्ति। ज्येष्ठानां गुरुणामार्चायाणां कृते जनानां मनस्सु न कापि श्रद्धा दृश्यते।

1. यजुर्वेदे- 19/77
2. तत्रैव-19/30
3. तत्रैव- 39/4
4. तत्रैव 18/5
5. ऋग्वेदे- 6/44/8
6. यजुर्वेदे- 1/05
7. ऋग्वेदे- 01/105/22

अस्माकं वैदिकी संस्कृतिः तु ननु मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, इति शिक्षयति। यदि नाम सर्वे राष्ट्रियाः जनाः इत्थमाचरेयुः तर्हि राष्ट्रोन्नतिर्भविष्यति नास्त्यत्र सन्देहः। राष्ट्रमपि वयं मातृरूपेण मन्यामहे तत्रोच्यते यत् भारतमाता, वन्दे मातरम् इत्यादि। या श्रद्धा स्वजन्मदात्रीं मातरं प्रति भवत्यस्माकं सैव श्रद्धाभावना मातृभूमिं प्रति भवेत्। अतः मातृभूरपि मातृवदेव समर्चनीयाऽस्ति।

राष्ट्रव्यवहारो समाजव्यवहारश्च

अङ्गोपाङ्गेभ्यः पृथक् अङ्गिनो यथा तथैव जलकणेभ्यः पृथक् सागरस्य चास्तित्वमिव व्यक्तिभ्यः पृथक् समाजस्य, समाजात् पृथक् राष्ट्रस्यापि कापि सत्ता नास्ति। अत एव व्यक्तेः जीवनस्योत्थाने समष्टिजीवनस्य राष्ट्रस्योत्थानं निहितमास्ति। व्यक्तीनां चाधःपतनमेव राष्ट्रस्याधःपतनाय कल्प्यते। यतोहि व्यक्तीनामेव समूहः परिवारो भवति, परिवाराणां समूहः समाजः, समाजस्य समूहः राष्ट्ररूपं धारयति। राष्ट्रस्यः व्यवहारः, संस्कृतिः, स्थितिः, उन्नतिः, विकासश्च, कल्पनीयश्चेद् पूर्वं व्यक्तेः व्यवहारसंस्कृतिविकासादिकं कल्पनीयं भवति। यतोहि कस्याऽपि समस्यायाः समाधानं तदुत्पत्तिश्च व्यक्तिकारणादेव भवति। अतः व्यक्तिविकासः समाजविकासः। समाजविकास एव राष्ट्रविकासः। एवमेव यदि कस्यापि राष्ट्रस्य व्यक्तिर्ज्ञानवती, शीलवती, नीतिवती, भवति तर्हि तद्राष्ट्रं सदैवोन्नतिपथमुपैति। जनानां धारणेऽयं स्याद्यत् समाजस्योत्थानमेव राष्ट्रस्योत्थानं, राष्ट्रोत्थानमेवात्मोत्थानमिति। इत्थं समुन्नतं सुदीर्घचिन्तनं यस्य राष्ट्रस्य भवति तदा राष्ट्रं सदैव वर्धते।

वेदविहिता कौटुम्बिकसौमनस्य भावना

वेदेषु सर्वत्र सर्वेष्वपि जनेषु समानता, परस्परसौहार्दस्य च भावना प्रकटीकृता दृश्यते। तत्र इयं भावना विलोक्यते यत् परिवारस्य समेपि सम्बन्धिनः प्रेम्णा सङ्गतास्सन्तो निवसेयुः। राष्ट्रस्य मूलं हि परिवारो विद्यते। परिवारस्थाः सदस्याः ये सन्ति पितरौ, भ्रातरौ, स्वसारः, जायापतिः, भगिन्यः, बालाः, पितामहादयः। एतेषां समूहस्यैव नाम विद्यते कुटुम्बकमिति। यजुर्वेदेऽपि एतादृशाः भावाः प्रकटीकृताः दृश्यन्ते। इदमित्थं चिन्तनीयं यदाहं सर्वथाऽसमर्थोऽल्पवयः शिशुरासं तदास्याः खल्वमितस्नेहमय्याः मातुर्माधुर्यामृतभरिते क्रोडे सुखं शयित्वा, प्रमुदितः सन्, स्तन्यामृतं पिबन्, पादाघातैस्तां भृशमताडयम्। तथैव लालनपालनादिना वर्धितोऽहमिदानीं समर्थोऽस्मि सज्जातः। पूज्यौ च तौ मदीयौ जनकाविदानीं वृद्धावशक्तौ चावस्थायां वन्द्यौ मातापितरौ न मया कदापि कथमपि पीडितौ तुदितौ स्याताम्। किन्तु मदीयेन प्रशस्तसेवासत्कारादिना तौ सदा सन्तुष्टावेव तिष्ठेतां, तयोस्सेवया प्रसन्नताव्याजेन चाहं तदीयानृण्यं सम्पादयेयम्। यथाहि-

यदा पिपेष मातरं पुत्रं प्रमुदितो धर्यन्
एतत्तदग्रे अनुणो भवाम्यहंतौ पितरौ मया।¹

तथैव खलु पारिवारिकसदस्येषु सौमनस्यभावनेत्थं प्रतिपादिता तत्रार्थवर्णनेवेदे यत् पुत्रः सदा पितुरनुकूलमेव कार्यं विदध्यात्, न कथमपि प्रतिकूलम्। मातरं प्रत्यपि सः सुमनस्स्यान्न तु कदापि दुर्मनाः। एवञ्चोभावपि मातापितरौ प्रति श्रद्धासत्कारसेवाभावं सदैव सन्दधीत। एवमेवोपलक्षणन्यायेन सुताऽपि पित्रोरनुकूलमेव कर्म सदा विदधीत्। तथैव खलु भार्या स्वपतिं प्रति सदैव मधुरामाह्लादकरीं, सुखदां, कर्णप्रियां, मधुरामेव वाचमेव प्रयुञ्जीत न तु कदापि द्वेषेण कुभावेन वा क्षोभप्रदां दुःखदां कटुवाणीं व्यवहरेत्। न केवलं पत्नी मधुरां वाचं वदेत् प्रत्युत पतिरपि भार्या प्रति तद्वदेव मधुरं व्यवहारं कुर्यात्। एवञ्च परिवारस्य समेऽपि सदस्याः सुमनसस्सन्तः परस्परशुभमाचरन्तोऽन्योऽन्यं प्रति सुखसम्पादिकां भद्रामेव वाचमुद्गिर्युः, तेनैव वयं परिवारः, समाजः, स्वराष्ट्रं च सुखिनं समृद्धिशालिनं कर्तुं शक्नुमो, यतोहि परिवारेण समाजः, समाजेन च राष्ट्रस्य निर्माणं भवतीति।



1. यजुर्वेदे- 19/11

धर्मशास्त्रीयव्यवहारपदविमर्शः

-अभिजित् देवशर्मा*

शोधसारः- धर्मस्य प्रदिपादनं येन शास्त्रेण भवति तद् धर्मशास्त्रं कथ्यते। धारणाद्धर्मः अर्थात् ये केऽपि दयाक्षमादिगुणाः अस्माभिः धारिताः तत्सर्वं धर्म उच्यते। आचारव्यवहारप्रायश्चित्तत्रयेण धर्मशास्त्रं प्रतिपादितम्। एतत्त्रिषु व्यवहारपदमिदं बहुमहत्त्वपूर्णम्। समाजे प्रतिदिनं विवादो दृश्यते। न्यायालये विवादविषयानां प्राचुर्यं नित्यं वर्धते। धर्मशास्त्रेषु एतादृक्षाणां विवादानां निर्णयसाधनं व्यवहारपदेनोच्यते। आचार्यैः विषयेऽस्मिन् नाना ग्रन्थाः विलिखिताः। व्यवहारपदमाश्रित्य आचार्याणां भिन्नं भिन्नं मतं वर्तते, तेषामुपस्थापनं विधीयते। व्यवहारस्य लोकसम्मतं शास्त्रसम्मतं व्याख्यानं विवेच्यते। तथा तस्य समाजे आवश्यकताविषयेऽपि समासेन वर्ण्यतेऽस्मिन् शोधपत्रे।

कूटशब्दाः- व्यवहारः, धर्मशास्त्रम्, कात्यायनः, विवादः, नारदस्मृतिश्च।

विपुलं ज्ञानविज्ञानपूर्णं संस्कृतवाङ्मयं वर्तते। यस्मिन् पुरा ऋषिमुनिभिः समाजस्य कल्याणाय विविधाः विद्याः प्रतिपादिताः। यथा याज्ञवल्क्येन चतुर्दशविद्यास्थानं वर्णितम्¹। येषु विद्यास्थानेषु धर्मशास्त्रैकं यस्य महत्त्वं केवलं प्राचीनकालैव नापित्वद्यापि नितरामस्ति। शास्त्रमिदं भारतस्य सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक-धार्मिक-विधिकाध्ययनादिविषयान् सुष्ठु वर्णयति। धर्मशास्त्रस्य प्रतिपाद्यं त्रिषु भागेषु विभज्यते-आचार-व्यवहार-प्रायश्चित्तञ्च। येन वर्णाश्रमराजसामान्यधर्मादीनां व्याख्यानं विधीयतेऽसौ आचारभागः कथ्यते। व्यवहारभागे राजकर्तव्यानां न्यायव्यवस्थायाश्च चर्चा विधीयते। तथा प्रायश्चित्तभागे निमित्तधर्मरूप-प्रायश्चित्तकर्मादयः वर्ण्यन्ते। व्यवहारभागे मुख्यं व्यवहारपदं यस्य तात्पर्यं न्यायः विवादः वा। कस्मिंश्चिदपि राज्ये न्यायं बह्वावश्यकं भवति यतो हि एतेनैव राज्यं प्रतिष्ठितं सुस्थिरं च भवति। राज्यसंचालनाय प्रामुख्येन राजा नियुक्तो भवति। विष्णुधर्मसूत्रं कथयति-

* शोधच्छात्रः, संस्कृतप्राच्यविद्याध्ययनसंस्थानम्, जवाहरलालनेहरुविश्वविद्यालयः, नवदेहली

1. याज्ञवल्क्यस्मृतिः 1/3, कमलनयनः(व्याख्याकारः), जगदीशसंस्कृतपुस्तकालयः जयपुरम्, प्रथमसंस्करणम्, 2018

**स्वयमेव व्यवहारान्यश्येत्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सार्धम्।
व्यवहारदर्शने ब्रह्मणं वा नियुञ्ज्यात्॥¹**

अर्थात् राजा स्वयं हि न्यायविषयान् सत्कर्मणि संयुक्तविद्वद्भिः ब्राह्मणैः सहोभयोर्पक्षं श्रुत्वा सम्यक्विचार्य च संपूरयेत्। एतत्सममेव याज्ञवल्क्यमतेन राज्यस्य नृपतिः धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधादिकं त्यक्त्वा न्यायकार्याणि कुर्यात् तथा व्यवहारदर्शनाय न्यायदर्शनाय वा विद्वांसः ब्राह्मणाः नियोक्तव्यास्सन्ति।² न्यायालये न्यायं कुर्वन् राजा कस्यचित् वशेऽपि नागच्छेत् धनस्य लोभोऽपि तेन वर्जितव्य इति कात्यायनेनोक्तम्-

**न राजा तु वशित्वेन धनलोभेन वा पुनः।
स्वयं कार्याणि कुर्वीत नराणामविवादिनाम्॥³**

प्राचीनकाले राज्यस्य राजैवाधिष्ठाता भवति स्म अतः प्रजानां विवादविषयाणां समाधानं राज्ञः प्रमुखकार्यमासीत्। प्रजायाः सुखे सुखी, प्रजायाः दुःखे दुःखी च राजा भवति स्म-

**प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥⁴**

व्यवहारादतिरिच्य राज्ञः कानिचन अन्यकर्तव्यानि यजुर्वेदे समुपलभ्यन्ते-

**इयं ते राड् यन्ताऽसि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः।
कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा॥⁵**

अर्थात् राष्ट्रस्य शासने भूपतेः चतुर्विधानि कार्याणि भवन्ति यथा- 1. कृष्युन्नतिः 2. प्रजाकल्याणम् 3. राज्यस्यार्थिकवृद्धिः 4. राष्ट्रस्य सुदृढत्वम् च। रक्षणाद् भरणात् च पार्थिवः प्रजानां पिता भवतीति महाकविना कालिदासेन रघुवंशमहाकाव्ये राजा दिलीपस्य गुणवर्णने व्याख्यायते।⁶

-
1. https://archive.org/details/20200315_20200315_0911/page/n1/mode/2up (विष्णुधर्मसूत्रम् 3/71-72)
 2. याज्ञवल्क्यस्मृतिः 1/327, 2/1
 3. कात्यायनस्मृतिसारोद्धारः, श्लोकः 27, पी.वी.काणे, हिन्दु-लॉ-क्वार्टर्ली मुम्बई, 1895, पृ. 3
 4. कौटिलीय-अर्थशास्त्रम् 1/14/18, वाचस्पति गौरोला (व्याख्या.), चौखम्बा विद्याभवनम्, वाराणसी, संस्करणं, 2021
 5. यजुर्वेदः 9/22, दामोदरः (व्याख्या.), प्रसन्नप्रकाशनं नासिकः, 2010
 6. प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ (रघुवंशम् 1/14)

सहस्रवर्षाणि पूर्वं यदा सर्वे जनाः सत्यवादिनः धर्मपालकाः अहिंसाप्रियाः चासन् तदा व्यवहारस्य आवश्यकतैव नासीदिति नारदस्मृतौ आचार्यनारदेन भणितम्-

धर्मैकतानाः पुरुषा यदासन् सत्यवादिनः।

तदा न व्यवहारोऽभून्न द्वेषो नापि मत्सरः॥¹

किन्तु कालान्तरे जनाः पतिताः कामक्रोधलोभमोहादिदुर्गुणैः संपृक्ताः संजाताः, ते कुमार्यं प्रवर्तयन्ति स्म। एतादृशीं स्थितिं विलोक्य विश्वकल्याणाय धर्मस्य पुनःस्थापनाय सुदृढव्यवस्थायै च व्यवहारस्य (न्यायस्य) स्थापना विहिता² व्यासेनोच्यते-

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे।

नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्तते॥

इतरेष्वगमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोप्यते।

चौर्यकानृतमायाभिरधर्मश्चोपचीयते॥³

अर्थात् संसारेऽस्मिन् आदौ सत्ययुगे सर्वे सत्यवादिनः आसन् किन्तु कालान्तरे जनाः दुराचारिणः जाताः, सर्वत्र त्राहि-त्राहि मां जातम्, धर्मस्यावनतिः प्रारब्धा। एतादृश्यां स्थितौ समाजस्य कल्याणाय व्यवहारमावश्यकम्। भगवान्मनुरपि कथयति कामक्रोधादिभिः वशीभूतमनुष्येषु अराजकता उत्पद्यते, परस्परं कलहः उत्पद्यते, एतेषां कलहानां निवारणाय व्यवहारं संस्थापितम्-

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः।

दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते॥⁴

बृहस्पत्यनुसारमपि-

धर्मप्रधानाः पुरुषाः पूर्वमासन्नहिंसकाः।

लोभद्वेषाभिभूतानां व्यवहारः प्रकीर्तिताः॥⁵

-
1. नारदस्मृतिः 1/1, ब्रजकिशोरः (व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, पुनर्मुद्रित-संस्करणम्, 2015
 2. नष्टे धर्मे मनुष्याणां व्यवहारः प्रवर्तते।
द्रष्टा च व्यवहाराणां राजा दण्डधरः स्मृतः॥ (नारदस्मृतिः 1/2)
 3. महाभारतं शान्तिपर्व 231/23-24, रामनारायणः (व्याख्या.) गीताप्रेस गोरखपुरम्, सप्तदश-संस्करणम्, 2016
 4. मनुस्मृतिः 7/22, गिरिधरः (व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानं देहली, पुनर्मुद्रितसंस्करणम्, 2020
 5. देवभट्टस्य स्मृतिचन्द्रिका व्यवहारकाण्डः द्वितीयपरिच्छेदः पृ. 1, श्रीनिवासः (सम्पा.) बिबलियोथेका-संस्कृत-नं 48, गवर्नमेंट-ब्रांच-प्रेस मैसूर, 1916

धर्मसूत्रेषु स्मृतिग्रन्थेषु च व्यवहारस्य अनेकार्थाः आदानप्रदानं, विवादः, न्यायं, न्यायसाधनानि च विद्यन्ते।¹ परन्तु शास्त्रेषु सर्वाधिकं विवादविषयार्थैव व्यवहारस्य प्रयोगः दरीदृश्यते। यथा महाभारतस्य उद्योगपर्वणि उक्तं यद् अत्यधिकं दयायुक्तराजा, व्यभिचारिस्त्री, राजकर्मचारी, पुत्रः, भ्राता, वत्सोपेताविधवा, अधिकारहीनपुरुषः चेत्येतैः सह भूपतेः व्यवहारः विवादो वा न भवेत्² राज्ये नृपः न्यायार्थम् आगतयोः वादिप्रतिवादिनोः वचनं सम्यक्तया शृणुयात् तथा राज्ञः कार्यव्याकुलतायां अमुना न्यायपीठपरिचालनाय सदैव सर्वार्थदर्शिनः निपुणाः सत्यवादिनः विद्वत्पुरुषाः स्थापयेयुः यतो हि विशुद्धनिष्णाते न्यायैव राज्यं राष्ट्रं वा प्रतिष्ठितं भवतीति महाभारतस्य शान्तिपर्वणि आह—

श्रोतुं चैव न्यसेद् राजा प्राज्ञान् सर्वार्थदर्शिनः।

व्यवहारेषु सततं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम्॥³

मनुमहोदयेन भणितमेव यद् व्यवहाराणां समाधानाय तत्परः राजा न्यायं ज्ञातृभिः विद्वद्भिः मन्त्रज्ञैः सुपरीक्षितैः मन्त्रिभिश्च सह विनम्रभावेन न्यायालयं प्रविशयेत् तथा न्यायं सम्पादयेत्।⁴ वशिष्ठस्मृतौ विवादार्थे हि व्यवहारः प्रयुज्यते— अथ व्यवहाराः॥ राजमन्त्री सदःकार्याणि कुर्यात्। द्वयोर्विवदमानयोरत्र पक्षान्तरं गच्छेद्यथासनमपराधो ह्यन्ते नापराधः समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो ह्याद्यवर्णयोर्विधानतः संपन्नता— माचरेद्राजा वालानामप्राप्तव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तद्वत्॥⁵ याज्ञवल्क्यस्मृति— कारेणापि व्यवहारपदं विवादार्थे प्रयुज्यते।⁶ एवं क्रमेण शुक्रनीतिसारेऽपि द्रष्टुं शक्यते।⁷

1. धर्मशास्त्र का इतिहास तृतीयखण्ड पृ. 705, पी.वी.काणे, अर्जुनचौबे (अनु.) हिन्दीसमिति—सूचनाविभाग, उत्तरप्रदेश, चतुर्थसंस्करण 1992
2. घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा वालपुत्रा। सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते॥ (महाभारतम् उद्योगपर्व 37/30)
3. महाभारतं शान्तिपर्व 69/28, रामनारायणः(व्याख्या.), गीताप्रेस गोरखपुरम्, सप्तदशसंस्करणम्, 2016
4. व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः। मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत् सभाम्॥ (मनुस्मृतिः 8/1)
5. अष्टादशस्मृतिः (वशिष्ठस्मृतिः 16/1) पृ. 482, क्षेमराजः(सम्पा.), श्रीवेंकटेश्वरयन्त्रालयः मुम्बई, 1908?
6. याज्ञवल्क्यस्मृतिः 2/1, कमलनयनः (व्याख्या), जगदीशसंस्कृतपुस्तकालयः जयपुरम्, प्रथमसंस्करणम्, 2018
7. शुक्रनीतिसारः 4/5/5, पृ. 421, जीवानन्दः(व्याख्या.), नारायणयन्त्रमुद्रणालयः कोलकाता, द्वितीयसंस्करणं, 1890

विवादे न्यायविधानम् इति व्यवहारस्यार्थमेकं प्रसिद्धम्। गौतमः वक्ति व्यवहरन्त्य-
नेनेति व्यवहारः। तस्य राज्ञः प्रजापालनेऽधिकृतानि न्यायसाधनानि, यथा वेदादिषु
अभिहितं तथा व्यवहरेदिति। कुत्रचित् व्यवहारो लोकमर्यादास्थापनमित्यर्थे प्रयुज्यते-

तस्य च व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्ययोपवेदाः पुराणम्॥¹

शंखलिखितस्यापि मतं-

रक्षेद् राजा बालानां धनान्यप्राप्तव्यवहाराणाम्²

अस्मिन्नेवार्थे आचार्यवशिष्टेण व्यवहारशब्दः अभिहितः-

राजबालधनानि, अप्राप्तव्यवहाराणाम्, प्राप्तकाले तु तदयत्³

कस्यचित्त्विषयस्य निर्णयसाधनम् इत्यर्थे व्यवहारस्य प्रयोगः प्राप्यते यथा गौतमः-

तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राणि अङ्गानि⁴

राज्ये प्रजानां व्यवहाराणां समाधानं राजादौ स्वयं कुर्यात् इति बृहस्पतिनोच्यते
राजा कार्याणि संपश्येत् प्राड्विवाकोऽथवा द्विजः।⁵ व्यवहारविषयाणां सम्पादनं
तदानीन्तने अद्यतनन्यायालयवत् राज्ञः न्यायसभायां भवति स्म। तदा न्यायालयः
धर्मासन-धर्मस्थान-धर्माधिकरणादिनामभिः सुपरिचित आसीत्। यथाचार्येण शंखलिखितेण
उक्तं यत् धर्मस्थानं प्राच्यां दिशि तच्चाग्न्युदकैः समवेतं स्यात्।⁶

व्यवहारशब्दस्य व्युत्पत्त्याधारेणांशत्रयं विद्यते वि+अव+हारः, वीति अनेकार्थाः
अवेति सन्देहः, “हरणं हारः” हारः इत्यनेन हरणम्। एतस्य तात्पर्यं नाना सन्देहानां
निवारणं येन क्रियतेऽसौ व्यवहारः अर्थात् विविधापत्तिसन्देहनिवारकः व्यवहार उच्यते।
अत आचार्यकात्यायनेन सम्यगुक्तम्-

वि नानार्थे ‘अव’ सन्देहे हरणं हार उच्यते।

नाना सन्देहहरणाद्व्यवहार इति स्मृतः॥

1. गौतमधर्मसूत्रम् 2/2/19, उमेशचन्द्रः(व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतसीरीज-आफिस वाराणसी, प्रथमसंस्करणं 1966
2. धर्मशास्त्र का इतिहास तृतीयखण्ड पृ. 705, पी.वी.काणे, अर्जुनचौबे (अनु.), हिन्दीसमिति-सूचनाविभाग, उत्तरप्रदेश, चतुर्थसंस्करण 1992
3. https://archive.org/details/20200315_20200315_0908 (वशिष्टधर्मसूत्रम् 16/8-6)
4. धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीयखण्ड, पृ. 705
5. स्मृतितत्त्वं द्वितीयभागः, पृ.197, जीवनानन्दः(संस्कर्ता), नारायणयन्त्रं कोलकत्ता, द्वितीयसंस्करण 1895
6. स्मृतिचन्द्रिका द्वितीयपरिच्छेदः, पृ. 19, श्रीनिवासः(सम्पा.), गवर्नमेंटब्रांचप्रेस मैसूर, 1916

व्यवहारमयूखे नीलकण्ठेनोक्तम्-

विप्रतिपद्यमान-नरान्तराज्ञाता-

धर्मज्ञापनानुकूले व्यापारो व्यवहारः।

वादिप्रतिवादिकर्तृकः संभवद्भोगसाक्षिप्रमाणको

विरोधिकोटिव्यवस्थापनानुकूलो वा व्यापारः सः।¹

अर्थात् कस्मिंश्चित् विषये अज्ञाततत्त्वज्ञानाय जनयोः जनेषु वा कथोपकथनस्य व्यापारो व्यवहारः निगद्यते। निर्णायकस्य सम्मुखे वादिप्रतिवादिनोः मध्ये व्यवहारः विधीयते। मित्रमिश्रकृते वीरमित्रोदयव्यवहारप्रकाशे व्यवहारस्वरूपं द्रष्टव्यं यथा-

ऋणादानादिलौकिकार्थविषया कथैव व्यवहारः।

कथा व्यपदेशाभावस्तु शास्त्रीयपदार्थाविषयकत्वात्²

हिन्दुविधौ विधिकप्रक्रियायाः पर्यायरूपेण व्यवहारस्य परिकल्पना बहुमहत्त्वपूर्णा। वयं सर्वे जनाः प्रातः उत्थाय रात्रौ शयनपर्यन्तं नाना कार्याणि कुर्वन्ति तथा समीपस्थजनैः सार्धं वस्तूनामादानप्रदानं, वार्तालापं, चर्चापरिचर्चा च नित्यं कुर्वन्ति। एवंविधेषु कार्यकलापेषु कदाचित् वस्त्वादिकारणेन तु कदाचित् वाक्पारुष्यादिकारणेन जनेषु कलहः संजायते। ग्रामे वा नगरे वा सर्वत्र जनानां कलहः दृश्यतैव। कदाचित् विवादः एतावान् महान् भवति यस्य समाधानाय सर्वोच्चन्यायालयो गमनीयो भवति। एवं जनानां विवादः हि व्यवहारशब्देन परिभाषित आचार्यैः। अनेके स्मृतिकाराः टीकाकाराश्च स्वमतेन व्यवहारशब्दं व्याख्यातवन्तः। कात्यायनेन व्यवहारं परिभाषयन्नाह यत् प्रयत्नसाध्ये विच्छिन्ने धर्माख्ये न्यायविस्तरे। साध्यमूलस्तु यो वादो व्यवहारः स उच्यते॥ अर्थात् धर्मपालनाय सम्यक्भाषणमहिंसनं चावश्यकं भवति परं लोभक्रोधद्वेषवशात् धर्मस्य उल्लंघने सति जनानां विवादः व्यवहारः कथ्यते।³

यथा भारतीयदर्शनशास्त्राणामुद्देश्यं परमसत्यान्वेषणं तद्वदेव कात्यायनस्य कथनानुसारं न्यायस्य उद्देश्यं कलहेषु सत्योद्घाटनम्। दीपकलिकायामुल्लेखितं-

ऋणादानादिनानाविवादपदविषयः निराक्रियतेऽ-

नेनेति नानासंशयहारी विचारः व्यवहारः।

1. नीलकण्ठस्य व्यवहारमयूखः पृ.1, पी.वी.काणे (सम्पा.) एशियाटिक सोसाईटि आफ बेंगल, प्रथमसंस्करणम्, 1926
2. व्यवहारप्रकाश पृ. 2, विष्णुप्रसादः(संस्कर्ता), चौखम्बासंस्कृतसीरिज-आफिस बनारस, 1989
3. कात्यायनस्मृतिसारोद्धारः, श्लोकः 25, पी.वी.काणे, हिन्दु-लॉ-क्वार्टर्ली मुम्बई, 1895, पृ. 3

अर्थात् ऋणादानादिविवादानां समाधानं येन विधिना विधीयते सैव व्यवहार अभिधीयते।¹ मदनरत्नेनापि लिखितम्- प्रयत्नसाध्ये कष्टसाध्ये गृहक्षेत्रादिके विषये विच्छिन्ने स्वेच्छया भोक्तुमशक्ये सति न्यायविस्तरे न्यायः प्रमाणं विस्तीर्यते प्रपञ्च्यते निर्णीयते यस्मिंस्तस्मिन् धर्माख्यो धर्मानामके धर्माधिकरणमिति प्रसिद्धे सभालक्षणे स्थले साध्यमूलको यो गृहक्षेत्रादिविषयो वादः स व्यवहार इति। याज्ञवल्क्यस्य मिताक्षराटीकायां विज्ञानेश्वरेण भणितं यत् अन्यविरोधेन स्वात्मसंबन्धि तथा कथनं व्यवहारः। अर्थात् अन्यस्य विरोधकृते सत्यपि स्वोक्तिकथनं व्यवहारः। एवं क्रमेण आचार्ययाज्ञवल्क्यानुसारं श्रुतिस्मृतिविरुद्धं कार्यं कृत्वापि यदि केनचित् कश्चित् तिरस्क्रियते ततः असौ विषयममुं नृपाय अभियुङ्क्ते चेद् व्यवहारपदमभिधीयते।² एतत्सममेव शुक्रनीतौ- परैः स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेण आधर्षितः पुरुषः चेत् यदि राज्ञे आवेदयति तत् व्यवहारपदं ज्ञेयम्।³ स्मृतिचन्द्रिकायां हारीतेनोक्तं यत् स्वधनस्य यथा प्राप्तिः परधर्मस्य वर्जनम्। न्यायेन यत्र क्रियते व्यवहारः स उच्यते।⁴ विज्ञानेश्वरमहोदयेन भणितं व्यवहारः तस्य पदं विषयः।⁵ परस्परं विरोधिपक्षद्वयोः केनचित् विषयेन सम्बद्धं असत्याज्ञातस्य ज्ञापने सहायकं व्यापारं व्यवहार इति- विप्रतिपदयमाननरान्तरगताज्ञाताधर्मज्ञापनानुकूलो व्यापारो व्यवहारः।⁶

कौटिल्य-नारदादिभिराचार्यैः व्यवहारपदस्य स्थाने विवादपदः प्रयुक्तो वर्तते यथा- नारदाचार्येणोक्तम्-

दत्ताप्रदानिकं नाम तद्विवादपदं स्मृतम्।

अशुश्रूषाभ्युपेत्य एतद्विवादपदमुच्यते।⁷

कुत्रचित् पदमिदं स्थाननाम्नापि अभिधीयते। यथा मनुनोक्तं-

1. दीपकलिका पृ. 36, जगन्नाथः(सम्पा.), धर्मशास्त्रग्रन्थमाला ग्रन्थाङ्कः 26, प्रथमसंस्करणं 1939
2. स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः। आवेदयति चेत् राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्॥ (याज्ञवल्क्य-स्मृतिः 2/5)
3. शुक्रनीतिः 4/5/68, जगदीशः (व्याख्या.) चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनं वाराणसी, संस्करणं 2012
4. धर्मशास्त्र का इतिहास तृतीयखण्ड, पृ. 706
5. याज्ञवल्क्यस्मृतिः 2/1 (मिताक्षराटीका), व्याख्या-कमलनयनः, जगदीशसंस्कृतपुस्तकालयः जयपुरम्, प्रथमसंस्करणम्, 2018
6. नीलकण्ठस्य व्यवहारमयूखः पृ.1, पी.वी.काणे (सम्पा.), एशियाटिक सोसाईटि आफ बेंगल, प्रथमसंस्करणम्, 1926
7. नारदस्मृतिः दत्ताप्रदानिकं 1, अभ्युपेत्याशुश्रूषा 1, ब्रजकिशोरः(व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृत-संस्थानम्, वाराणसी, पुनर्मुद्रितसंस्करणम्, 2015

**एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम्॥¹**

अर्थात् एतेषु व्यवहारेषु भूयिष्ठं विवादं कुर्वतां जनानां न्यायं धर्ममाश्रित्य पक्षपातं विना सम्पादयेत्।

पुरातनकाले आचार्यैः अष्टादश व्यवहारपदानि परिगणितानि। यतो हि समाजे जायमानाः जनानां सर्वे विवादाः एतेषु व्यवहारपदेष्वेव सम्मिलिताः भवन्ति। स्वयं मनुना लिख्यते यद् संख्येयम् आदर्शभूता तु नास्ति परन्तु सर्वे जनकलहाः एतेष्वन्तर्निहिताः भवन्ति। भाष्यकारमेधातिथिना कुल्लुकेन चापि वचनमिदं स्पष्टीकृतम्। मन्वादिस्मृतिकारेषु व्यवहारपदानां संख्याविषये मतवैभिन्नं वर्तते। तालिकया विव्रियतेऽत्र²—

मनुः	कौटिल्यः	याज्ञवल्क्यः	नारदः	बृहस्पतिः (स्मृ. च.2 प9)
1. ऋणादानं	नाम नास्ति	ऋणादानं (3/2/4)	ऋणादानं	कुसीदः
2. निक्षेपः	दायभागः	उपनिधि	निक्षेपः	निधिः
3. अस्वामिविक्रयः	सीमाविवादः	दायभागः	सम्भूयसमुत्थान	अदेयाद्यः
4. सम्भूयसमुत्थान	समस्यानपाकर्म	सीमाविवादः	दत्ताप्रदानिकः	सम्भूयसमुत्थान
5. दत्तस्यानपाकर्म	ऋणादानं	स्वामिपालविवादः	अभ्युपेत्याशुश्रूषा	भृत्यदानम्
6. वेतनादान	उपनिधिः	अस्वामिविक्रयः	वेतनस्यापाकर्म	अशुश्रूषा
7. सविद् व्यतिक्रम	कर्मकरकल्पः	दत्ताप्रदानिकः	अस्वामिविक्रयः	भूवादः
8. क्रयविक्रयानशय	सम्भूयसमुत्थान	विक्रीयासंप्रदानम्	अस्वामिविक्रयः	
9. स्वामिपालविवाद	क्रयविक्रयानशय	अभ्युपेत्याशुश्रूषा	क्रीतानुशयः	क्रयविक्रयानशय
10. सीमाविवाद	दत्तस्यानपाकर्म	सविद् व्यतिक्रम	समस्यानपाकर्म	समयातिक्रमः
11. वाक्पारुष्यम्	अस्वामिविक्रयः	वेतनादान	क्षेत्रजविवादः	स्त्रीपुंसयोगः
12. दण्डपारुष्यम्	साहससंग्रहणम् (4/12)	द्यूतसमाह्वयः	स्त्रीपुंसयोगः	स्तेयम्
13. स्तेयम्	वाक्पारुष्यम्	वाक्पारुष्यम्	दायभागः	दायभागः
14. साहसः	दण्डपारुष्यम्	दण्डपारुष्यम्	साहसः	अक्षदेवनम्

1. मनुस्मृतिः 7/22, गिरिधरः (व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानं देहली, पुनर्मुद्रितसंस्करणम्, 2020
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीयखण्ड पृ. 707; अर्जुन चौबे (अनु.), हिन्दीसमितिसूचनाविभाग उत्तरप्रदेश, चतुर्थसंस्करण 1992

15. स्त्रीसंग्रहणम्	द्यूतसमाह्वयः	साहसः	वाक्पारुष्यम्	वाक्पारुष्यम्
16. स्त्रीपुंधर्मः	प्रकीर्णकः	विक्रीयसंप्रदानम्	दण्डपारुष्यम्	दण्डपारुष्यम्
17. विभागः	...	सम्भूयसमुत्थान	द्यूतसमाह्वयः	वधः
18. द्यूतसमाह्वयः	...	स्तेयम्	प्रकीर्णकः	स्त्रीसंग्रहः
19. ...	...	स्त्रीसंग्रहणम्	...	प्रकीर्णकः
20. ...	...	प्रकीर्णकः	...	...

आचार्यमनुमहोदयेन स्वीकृतव्यवहारा एव केवलमत्रोल्लेख्यन्ते-

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।
 संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च॥
 वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।
 क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः॥
 सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।
 स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च॥
 स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।
 पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह॥¹

व्यवहारस्य प्रक्रियासम्पादनाय नियुक्तैः राजाप्राड्विवाकब्राह्मणपुरोहिताश्चादिभिः न्यायालयं द्वयोः राज्ययोः सीमाप्रदेशे, दश ग्रामानां केन्द्रे, चतुर्शतं ग्रामानां केन्द्रे, अष्टशतग्रामानां केन्द्रे च संस्थाप्य सम्मेल्य विवादविषयाः समाधातव्याः² राजा राजपुरुषादौ विवादं नोत्पादयेत् न वर्धयेच्च। न्यायकर्ता प्राप्तधनलोभेनापि कथंचित् प्रकारेण न विवादं प्रकटयेत् इति मन्वाचार्येण वर्ण्यते-

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः।
 न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथंचन॥³

व्यवहारान् निर्णेतुं राजा प्रत्यक्षम् अनुमानं वा प्रमाणं आश्रयेत् यथा मृगयुः शस्त्रेण आहतमृगाद् पतन्तं रक्तबिन्दुं दृष्ट्वा मृगस्थानं प्राप्नोति तथैव नृपेण प्रजानां

1. मनुस्मृतिः 8/4-7, गिरिधरः(व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानं देहली, पुनर्मुद्रितसंस्करणं 2020
2. कौटिलीय-अर्थशास्त्रं तृतीयाधिकरणम्, पृ. 255, वाचस्पतिगौरोला (व्याख्या.), चौखम्बा-विद्याभवनं वाराणसी, संस्करणं 2021
3. मनुस्मृतिः 8/43, गिरिधरः(व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानं देहली, पुनर्मुद्रितसंस्करणं 2020

विवादाः समाधेयाः। न्यायकाले नृपेण सुबुद्धिना विवादस्य सत्यता, साक्षीवचनं, देशकालश्च नूनं विचारयितव्याः भवन्ति।¹ एवंप्रकारेण यदि कश्चित् व्यवहारान् गुप्तरूपेण, गृहाभ्यन्तरे, रात्रौ, जंगले, एकान्ते च छलकपटेन कुर्वन्ति चेदपि ते सर्वे न्यायविरुद्धाः भवन्ति तथा नियमविरुद्धस्य कार्यकर्तारः निश्चयेन साहसदण्डेन दण्डयितव्याः। धर्मः व्यवहारः चरित्रं, राजशासनं च एते चत्वारि विवादस्य निर्णयसाधनत्वात् एते राष्ट्रस्य चत्वारः पादाः अपि। एतेषामाश्रयेनैव आराज्यं स्थिरं भवति। एतेष्वपि धर्माद् व्यवहारः, व्यवहाराद् चरित्रम्, चरित्राद् राजाज्ञा श्रेष्ठा भवतीति।²

उपर्युक्तविवेचनेन निष्कर्षरूपेण वक्तुं शक्यते यत् अद्यत्वे प्रौद्योगिकीयुगे यदा जनेषु नैतिकत्वं नितरां न्यूनीजायते तदा धर्मशास्त्रस्य विवेचनं निश्चयेन ह्युचितमेव। धर्मशास्त्रेऽस्मिन् समाजस्य कल्याणाय आचारव्यवहारादिकं सारेल्यन विवृतम्। न्यायानुशासनं नृपतेः पवित्रतमं कार्यं तथा व्यवहारस्य (न्यायस्य) सुष्ठु निष्पक्षप्रयोगेन पवित्रयज्ञैः प्राप्तफलवत्फलं प्राप्यत इति स्पष्टयति आचार्यः याज्ञवल्क्यः-

यो दंड्यान्दंडयेद्राजा सम्यक्वध्यांश्च घातयेत्।

इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः॥

इति संचिन्त्य नृपतिः क्रतुतुल्यफलं पृथक्।

व्यवहारान्स्वयं पश्येत्सभ्यैः परिवृतोऽन्वहम्॥³

अत्र धर्मशास्त्रे नृपतिः इत्यनेन वर्तमानकालिके अस्माकं देशस्य प्रधानमन्त्री कालानुगुणं मन्तुं शक्यते। व्यवहारस्य असम्यग्प्रयोगेन राजा दोषभाक् पापी भवति। सैव (राजा) यदि निरपराधिनं दण्डयति तथापराधिनं त्यजति तु साक्षात् नरकं प्राप्नोतीति उल्लेखितम्- अदण्ड्यान्दण्डयात्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशोमहदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥⁴

एवमद्यापि सर्वत्र जनेषु विवादाः दृश्यन्तैव, तान् विवादानाधारीकृत्य पुरास्माकं धर्मशास्त्रकारैः याज्ञवल्क्यकौटिल्यकात्यायनबृहस्पतिमनुनारदादिभिः अष्टादश व्यवहाराणि कल्पितानि यानि अधुनातनकालेऽपि विशिष्टं महत्त्वं भजन्ते। आचार्याः केवलं व्यवहारमेव न विवृतवन्तः अपितु तेषां निर्णयापराधदण्डादिकं सर्वं निपुणं विस्तार्येण ख्यातवन्तः। अतः देशस्य न्यायव्यवस्थायां व्यवहारपदस्य विवरणं समाजोपयोगि बहुमहत्त्वपूर्णं चेति॥



1. मनुस्मृतिः 8/44-45

2. कौटिलीय-अर्थशास्त्रम्, तृतीयाधिकरणम्, पृ. 259

3. याज्ञवल्क्यस्मृतिः 1/349-360, कमलनयनः(व्याख्या), जगदीशसंस्कृतपुस्तकालयः जयपुरम्, प्रथमसंस्करणम्, 2018

4. मनुस्मृतिः 8/128, गिरिधरः(व्याख्या.), चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानं देहली, पुनर्मुद्रितसंस्करणम्, 2020

उपनिषत्सु योगः

डॉ. नरेन्द्रकुमारपाण्डेयः *

वैदिकसाहित्ये उपनिषदां महत्त्वपूर्णस्थानं वर्तते। वेदानामन्तिमो भागः उपनिषद एव। उपनिषत्सु वैदिकऋषिभिः आध्यात्मिकविद्यायाः गूढतमरहस्यानां विशदं विवेचनं विहितम्। भारतीयतत्त्वज्ञानस्य मूलं श्रोतः उपनिषद एव। भारतीयदर्शने त्रयः प्रस्थानग्रन्थाः सन्ति, ये वैदिकधर्मानुसारं गन्तव्यमार्गस्य तत्साधनस्य च प्रतिपादकाः सन्ति। ते च ग्रन्थाः— उपनिषदः, श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्रञ्च उपनिषत्स्वाश्रिते। अत एवोपनिषदां विशिष्टं महत्त्वमस्ति।

प्राचीनकाले एकैकस्याः वैदिकशाखायाः स्वीया विशिष्ट उपनिषद् आसीत्, किन्तु सम्प्रति तावत्य उपनिषदो नोपलभ्यते। मुक्तिकोपनिषदि प्रदत्तसमुपलब्धोपनिषदामनुक्रमणिकानुसारं 108 (अष्टोत्तरैकशत) मिताः उपनिषदाः। विविधभारतीयदर्शनेषु योगदर्शनस्य स्थानं अत्यन्तं महत्त्वपूर्णम्। ईश्वरकृष्णस्य सांख्यशास्त्रम् अस्य अपरोक्षपुरुषानुभूतेः विषये सर्वथा मौनं तिष्ठति। न्यायः, वैशेषिकः, मीमांसादर्शनम् अपि वृत्तिज्ञानात् अधिकं कस्यचित् अपरोक्षस्य उत्तमज्ञानस्य कल्पनां नैव कर्तुं प्राभवत्। अद्वैतवेदान्तदर्शनं प्रायः एतत् अपरोक्षानुभूतिरूपज्ञानमेव मोक्षस्य वास्तविकहेतुं स्वीकरोति। गौडपादः एतत् अपरोक्षानुभवम् ‘अस्पर्शयोगस्य’ संज्ञां प्रदत्तवान्¹। विज्ञातारम रे केन विजानीयादिति², यन्मनसा न मनुते³ इत्येताः श्रुतयः एतत् सिद्ध्यन्ते। उभयप्रकारेण शुद्धज्ञानं प्राप्तुं प्रक्रिया महती जटिला दुरूहा च वर्तते। अस्याः उभयस्तरीयप्रक्रियायाः रचनात्मकं स्वरूपमेव योगसाधना अस्ति।

* सहायकाचार्यः संस्कृतपालिप्राकृतविभागः, हिमाचलप्रदेशकेन्द्रियविश्वविद्यालयः,
धर्मशाला-176215

1. मनसो ह्यमनीभावे, द्वैतं नैवोपलभ्यते।—मा० का० 3/31
अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते।
ब्रह्मज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते॥—मा० का० 3/33
अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः।
योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः॥—मा० का० 3/39
2. बृहदा० उप० 2।4।14
3. केनोपनिषद्- 115

उपनिषदिति शब्दस्य व्युत्पत्तिः- ‘उपनिषद्’ शब्दः ‘उप’ ‘नि’ पूर्वकं षद् लृ विशरणगत्यवसादनेषु इति धातोः क्विप् प्रत्यये सति निष्पद्यते। ‘उपनिषद्’ शब्दः मुख्यतया ब्रह्मविद्यायाः द्योतकः। अस्याः विद्यायाः अध्ययनेन, अनुशीलनेन च मुमुक्षूणां संसारबीजभूता अविद्या विनश्यति, सा ब्रह्मप्राप्तिं कारयति, मनुष्यस्य च दुःखानि शिथिलीभवन्ति। सैवाऽध्यात्मविद्या उपनिषद्। ‘उपनिषद्’ शब्दे ‘षद्’ धातुः अनेकार्थः यथा विशरणं-विनाशः, गतिः-ज्ञानं, प्राप्तिश्च अवसादनं शिथिलीभवनं, समाप्तिश्चेत्येते अनेकेऽर्थाः। सर्वेषां सङ्गतिः ‘उपनिषद्’ इतिशब्देन सह जायते। अनया दृष्ट्या उपनिषच्छब्दस्याऽयमर्थो यद् सा विद्या समस्तान् अर्थोत्पादकान् सांसारिकक्रियाकलापान् विनाशयति, येन संसारस्य कारणभूतायाः अविद्यायाः बन्धनानि शिथिलीभवन्ति, समाप्तिं वा गच्छन्ति, यया च विद्यया ब्रह्मज्ञानं प्राप्यते सैव विद्याऽस्ति समस्तानामुपनिषदां प्रतिपाद्यः विषयः। उपनिषदिति सर्वानर्थकरसंसारं विनाशयति, संसारकरणभूतामविद्यां च शिथिलयति च, ब्रह्म च गमयतीति प्रतिपाद्यः उपनिषद्।

अथ च उप+नि+षद् नाम व्यवधानरहितस्य सम्पूर्णस्य ज्ञानस्य च प्रतिपादकास्सन्ति उपनिषदः। अत्रेदं तत्त्वं तत् सर्वोत्तमं ज्ञानम्, यद् ज्ञेयाभिन्नं देशकालवस्तुपरिच्छेदरहितं परिपूर्णं ब्रह्म, तदेवास्ति ‘उपनिषदिति शब्दाभिप्रेतं ज्ञानम्। यतो हि ज्ञानं स्वतः प्रमाणम्, स्वयं प्रकाशः, देशकालावधिपरिच्छेदरहितं, विषयपरिच्छेदरहितं, कर्तृत्वज्ञेयत्वभेदातीतं हेतुफलात्मकं, शून्यम्, अबाध्यम् अनिर्वचनीयञ्चाऽस्ति, अतएव तादृशज्ञानस्य प्रतिपादकाः उपनिषदोऽपि तद्वद्विशिष्टाः एव।

श्रीमता वामनशिवरामआप्टेमहोदयेन¹ स्वकीये “संस्कृतइंग्लिशडिक्शनरी” (संस्कृत-आङ्ग्लकोषः) इत्यभिधेये ग्रन्थे “उपनिषच्छब्दस्य व्युत्पत्तिः प्रदर्शिता। तदनुसारम् ‘उपनिषद्’ इतिशब्दः स्त्रीलिङ्गे। अस्य व्युत्पत्तिः उप-निपूर्वात् ‘सद्’ (गतिनिवृत्तिः-बैठना) इति धातोर्जाता। अस्याऽर्थः-गुरुचरणेषु स्थित्वा प्राप्तं ज्ञानमस्ति, किन्तु भारतीयविदुषां मतानुसारम् उपनिषदो निर्वचनं किञ्चिद् भिन्नमस्ति। तत्र ब्रह्मज्ञानोपदेशमुखेनाऽविद्यां विनश्य संसारिकजीवनरूपबन्धनस्योच्छेदकरणमेवोपनिषदां ज्ञानम्।

श्री शङ्कराचार्यः² स्वीकरोति यत् आत्मविस्मृतिपूर्वकं श्रद्धया भक्त्या च ये

1. उपनिषद् (Said to be from उप-नि-सद् knowledge deriver from sitting at the feet of the preceptor, but according to Indian authorities, it means to de-destroy ignorance bay recicating the knowledge of the supreme spiritual cutting of the hands of wordly exitance.(V.S. Apte-Sanskrit-English Dictionary PP.).
2. या इमां ब्रह्मविद्यामुपयन्त्यात्मभावेन श्रद्धा भक्तिपुरः सरः सन्तस्तेषां गर्भजन्यजरारोगाद्यवर्गं विनाशयतिपरं वा ब्रह्म गमयति, अविद्या संसारकारणं चात्यन्तमवसादयति इत्युपनिषद् उपनिषदस्य सादरेवमर्थसंस्मरणात्- Sankar (bid, Page)

ब्रह्मविद्यां लभन्ते, तेषां गर्भवास-जन्ममरणजरारोगाद्यवर्गं विनाशयति, ज्ञेयं परं ब्रह्म च गमयति, तेषामविद्यादिसंसारकारणं समूलं विनाशयति इत्युपनिषद्, उप-नि-पूर्वकं 'षद्'-धातोरित्येवमर्थकरणादिति।

योगशब्दस्य व्युत्पत्तिः- योगशब्दः युज्धातोः 'घञ्' प्रत्यये सति निष्पन्नः। पणिनीयव्याकरणानुसारं युज्धातुः त्रिषु गणेषु प्राप्यते। दिवादिगणस्य युज्धातोः घञ्प्रत्यये कृते निष्पन्नस्य योगशब्दस्य अर्थः समाधिः भवति¹। रुधादिगणीये युज्धातोः 'घञ्' प्रत्यये जाते निष्पन्नस्य योगशब्दस्य अर्थः योगः इति निर्मीयते। चुरादिगणस्य युज्धातोः घञ्प्रत्यये जाते युज् धातोः अर्थः संयमनम् अस्ति² संस्कृतवाङ्मये एषां त्रयाणां अर्थानां 'योगः' इतिशब्दः प्रयुक्तः। सांख्ययोगशास्त्रे 'योगस्य' अभीष्टः अर्थः समाधिः तन्नाम चित्तवृत्तिनिरोधः एव स्वीकरोति किया³ चिकित्साशास्त्रे विभिन्नानाम् औषधीनां मिश्रणं योगे, ज्योतिषशास्त्रे, ग्रहाणां विभिन्नस्थितयः योगः इति कथ्यन्ते।

उपनिषत्सु योगः-उपनिषदाम् आविर्भूतं ज्ञानम् अद्वैतधाराणां प्रस्तावनां करोति। अतः सांख्ययोगः मतवादं प्रति तासम् उपेक्षादृष्टिः प्रतीयते। पुनरपि योगस्य महत्तायाः उपयोगितायाश्च आकलनम् उपनिषत्सु जातम्। काठोपनिषदि आत्मज्ञानस्य एकमेव साधनरूपेण योगः स्वीक्रियते-

1. अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।⁴
2. तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥⁵
3. पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥⁶

बृहदारण्यकः उपनिषद् अपि आत्मदर्शनाय समाधिम् अनिवार्यरूपेण प्रतिपादयति-
'तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति।'⁷
मैत्रायणौ उपनिषदि अपि समाधिना चित्तस्य शुद्धिं कृत्वा एव आत्मानुभूतेः आनन्दः सम्भवः इति बोधितः- 'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत।'⁸

1. दिवादिगण, युज् समाधौ, धातुपाठ , पृष्ठ-32
2. चुरादिगण, युज् दृच् संयमने, धातुपाठ , पृष्ठ-41
3. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः-यो.सू.1/2
4. कठोपनिषद् -1/2/21
5. कठोपनिषद्-2/6/11
6. कठोपनिषद्-2/1/1
7. बृहदारण्यकोपनिषद्-4/4/23
8. मैत्रायणी उपनिषद्

श्वेताश्वेतारोपनिषद् तु योगस्य मुक्तकण्ठेन प्रशंसां करोति। योगसम्बद्धाः अनेकाः सूचनाः ददाति-

1. लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥¹

2. न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्²

गर्भोपनिषद् तु जन्म-मरणबन्धनात् मुक्तिं प्राप्तुं योगाभ्यासं अद्वितीयसाधनरूपेण प्रतिपादयति- 'यदि योऽन्याः प्रमुच्येऽहं तत्सांख्यं योगमभ्यसे।'

योगस्य अङ्गानि- महर्षिपतञ्जलिः स्वीये ग्रन्थे पातञ्जलयोगसूत्रे योगस्य अष्ट अङ्गानि अवर्णयत्। केषुचित् उपनिषत्सु अपि पतञ्जलिरिव योगस्य अष्ट अङ्गानि मान्यन्ते। किन्तु केषुचित् केवलं षडङ्गानि एव अमान्यन्ते।³ शाण्डिल्योपनिषदि यम-नियमादीनि अष्ट अङ्गानि योगदर्शनस्य समानानि एव स्वीकृतानि यद्यपि मैत्रायणिः, ध्यानबिन्दुः, योगचूडामणिः अमृतनादः इत्येषु उपनिषत्सु योगस्य केवलं षडङ्गानि स्वीकृतानि। एषु योगचूडामणिः ध्यानबिन्दुः इत्यनयोः उपनिषदोः समानरूपेण एकः श्लोकः प्राप्यते। एषु यम-नियमान् विहाय शेषाः षडङ्गानि पतञ्जलिरिव स्वीकृतानि-

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्॥⁴

मैत्रायणौ उपनिषदि, अमृतनादे उपनिषदि च समानरूपेण प्रत्याहारः, ध्यानं, प्राणायामः, धारणा, तर्कः समाधिश्च योगस्य एतानि षडङ्गानि स्वीक्रियन्ते। उभयत्र अन्येषाम् उपनिषदाम् अपेक्षया आसनस्य स्थाने तर्कः उपस्थापितः। योगराजे उपनिषदि केवलम् आसनं, प्राणायामः, ध्यानं, समाधिः इत्येतानि चत्वारि एव योगस्य अङ्गानि मान्यन्ते।⁵

योगस्य प्रकारः- दत्तात्रेययोगशास्त्रे योगस्य चत्वारः प्रकाराः मान्यन्ते-

मन्त्रो योगो लयश्चैव हठयोगस्तथैव च।

राजयोगश्चतुर्थं स्याद्योगानामुत्तमस्तु सः॥⁶

1. श्वेताश्वेतारोपनिषद्-2/13

2. श्वेताश्वेतारोपनिषद्-2/12

3. वराहोपनिषद् 5.11.12, ब्रह्मपुराण 12.1-2, जाबालिदर्शनोपनिषद् 14.5।

4. ध्यानबिन्दु-श्लोकः-44, योगचूडामणिः- श्लोक-02

5. आसनं प्राणसंरोधो ध्यानं चैव समाधिकः।

एतच्चतुष्टयं विद्धि सर्वयोगेषु सम्मतम्॥ योगराज उपनिषद्-1-2

6. दत्तात्रेय योगशास्त्र-18.19

योगशिखोपनिषदि उक्तानां चतुर्णां योगानां महायोगः कथ्यते।¹

1. **मन्त्रयोगः**। योगशिखोपनिषदनुसारं मन्त्रः योगस्य लक्षणं सोऽहं सोऽहमिति कथितम् अस्ति।

2. **हठयोगः**— योगशिखोपनिषदि हठस्य हकारेण सूर्यस्य ग्रहणं, ठकारेण चन्द्रमसः ग्रहणं कृतम् अस्ति। सूर्यचन्द्रमसोः ऐक्यमेव हठयोगः मान्यते। योगस्य अन्येषु ग्रन्थेषु सूर्यचन्द्रमोभ्यां इडापिगला नाड्योः ग्रहणमपि क्रियते।

3. **लययोगः**— सूर्यचन्द्रमसोः ऐक्यसिद्ध्या साधकस्य चित्तस्य विलीनस्थितिः लययोगः कथ्यते।² लययोगेन प्राणाः स्थिराः भवन्ति, आत्मानन्दस्य प्राप्तिः भवति।

4. **राजयोगः**— रजस्य रेतसो च योगः एव अत्र राजयोगः कथ्यते। योगशिखोपनिषदि राजयोगस्य लाभः अणिमादिसिद्धीनां प्राप्तिः कथ्यते।³ मन्त्रः, लयः, हठः, राजयोगः इत्येतान् अतिरिच्य योगस्य कानिचन अन्यानि नामानि अपि उपनिषत्सु प्राप्यन्ते। यथा— अध्यात्मयोगः, भक्तियोगः, कर्मयोगः, ज्ञानयोगः, ध्यानयोगः इत्यादीनि। त्रिशिखे ब्राह्मणोपनिषदि कर्मयोगस्य ज्ञानयोगस्य च रूपेण योगस्य द्वौ भेदौ कृतौ। अत्र योगस्य त्रिविधम् अध्ययनं प्रस्तुतम्—

1. **ध्यानयोगः**— श्वेताश्वतरोपनिषदि कथितं यत् ब्रह्मपनिजनाः ध्यानयोगेन परमात्मनः आत्मशक्तिः दृष्टा।⁴ ध्यानयोगस्य अर्थः तावत् ‘ध्यानं प्रधानं यस्मिन्’ तन्नाम यत्र ध्यानमेव प्रमुखम्। अस्त्यैव ध्यानस्य वर्णनं श्वेताश्वतरोपनिषदि कृतमस्ति। श्वेताश्वतरोपनिषदि श्रीमद्भागवद्गीतायां⁵ कैवल्योपनिषदि⁶ चापि ध्यानस्य अस्याः एव प्रक्रियायाः उल्लेखः वर्तते।

2. **सांख्ययोगः**— अयं ज्ञानयोगः अपि कथ्यते। कठोपनिषदि अयम् अध्यात्मयोगः उच्यते।⁷ आत्मनि अधि इति अध्यात्मं तन्नाम आत्मानं लक्ष्मीकृत्य यदुच्यते तत् अध्यात्मं कथ्यते। सांख्यं ज्ञानशास्त्रं कथ्यते यतः ततोपि पुरुषः, प्रकृतिः इत्येषां ज्ञानं संपाद्यते। अस्त्यैव सांख्ययोगस्य वर्णनं श्रीमद्भगवद्गीतायां कृतम् अस्ति।

1. एकमेव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते— योगशिखोपनिषद्-1.1

2. योगशिखोपनिषद्- 1.131-134

3. रजसो रेतसो योगाद्राजयोग इति स्मृतः। योगशिखोपनिषद्-1.1
अणिमादिपदं प्राप्य राजते राजयोगतः। योगशिखो-1.138

4. ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। श्वेताश्वतरोपनिषद्-1.3

5. श्रीमद्भगवद्गीता-6/11-13

6. कैवल्योपनिषद्-1.5-6

7. अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति। कठोपनिषद्-1.2.12

3. **कर्मयोगः**— अस्य अभिप्रायः निष्कामः कर्मयोगेन अस्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायां योगपदेन प्रायः निष्कामः कर्मयोगः एव उपदिष्टः।¹ अन्यप्रकारेण योगस्य उल्लेखः ज्ञानयोगः, सांख्ययोगः, ध्यानयोगश्च इत्यादिपदैः विहितः। श्रीमद्भगवद्गीतायाः निष्कामयोगी एव योगी सञ्ज्ञितः। अस्यैव योगस्य शरणं गन्तुम् अर्जुनः आदिष्टः आसीत्।²



1. श्रीमद्भगवद्गीता-2/48, 5-1-2, 5/7,5/11

2. तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्। श्रीमद्भगवद्गीता- 2/50

An Approach to Holistic-Health through Śrīmad Bhagavad Gītā

Sweta Malik*

Abstract:

Every action people do in life is aimed at the goal of achieving happiness, and good health is a crucial part of it. However, good health is not something that can be achieved either by spending money in the market or can be acquired from someone, it is the route to take, individually and systematically. As World Health Organization (WHO) defined the term health as a state of complete physical, mental, and social well-being, rather than simply the absence of sickness/infirmity. Holistic wellness is the collective term for physical, mental, and social well-being, and all three are interconnected. The most well-known text, Śrīmad Bhagavad Gītā, is a prominent yogic text which can show people the way to holistic wellness. The Śrīmad Bhagavad Gītā is primarily viewed as a religious and action-motivating text, with the other aspects being unexplored and holistic wellness is one of them. In order to reveal the ultimate truth to Arjuna, Śrī kṛṣṇa delivered several principles that everyone must follow in their life and some of these principles are discussed in this research study regarding the concept of health. As described in Śrīmad Bhagavad Gītā, numerous aspects relating to our everyday routine and many factors essential for physical, mental and social health have been addressed in the text. This paper, through a philosophical analysis, demonstrates that health is multidimensional. It is a natural phenomenon of human beings.

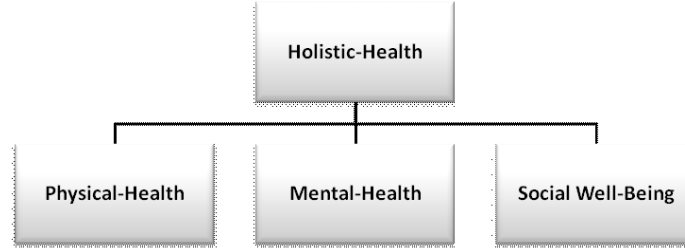
Key-words

Śrīmad Bhagavad Gītā, Holistic-health, well-being, happiness, wellness

* Ph.D, Scholar, Department of Obstetrics and Gynaecology, All India of medical Science, Risikesh (Uttarakhand)

Introduction

Health according to WHO is a state of complete physical, mental, and social well-being, rather than simply the absence of sickness/infirmity.¹



Health is an important part of our life, about which description comes in various Hathayogic and Ayurvedic texts. But it has often been seen that the philosophical texts of yoga, which also include the Śrīmad Bhagavad Gītā, health is defined according to lifestyle, diet, living habits and personal characteristics of Individual. In Gītā, the basic dimensions of health i.e. physical, mental and social well-being have been discussed indirectly, which is related to our everyday life in some way or the other. The literal meaning of Śrīmad Bhagavad Gītā is "song of the Lord", which has been taken from Bhiṣmaparva of the Indian epic "Mahābhārat". Śrīmad Bhagavad Gītā is a prominent yogic text that consists of 18 chapters and is based upon a conversation between Arjuna and Sri Krishna on the battlefield of Kurukshetra right before the start of the Mahabharat's war. The Śrīmad Bhagavad Gītā contains the divine words of the great Sri Krishna himself which were compiled by maharishi vedvyāsa. It is an ocean of wisdom; an infinite store of knowledge with immense glory. The Śrīmad Bhagavad Gītā is the precursor to the kurukshetra war. Maharishi vedvyāsa himself emphasizes the significance of it by saying:

*gītā sugītā kartavyā, kiṃ anyaiḥ śāstrā-sangaraiḥ/
ya svayaṃ padmā-nābhasyā, mukha-padmād vinihsrtā/²*

"Gītā has emerged directly from lotus like lips of Sri Viṣṇu himself. The Śrīmad Bhagavad Gītā alone should be sung, recited, heard, pondered, taught and assimilated properly. Then what is the use of collecting other scriptures?" Gāndhiji, who is regarded as one of the world's wisest

1. World Health Organization <https://www.who.int/about/governance/constitution>
2. Goyandaka J. SRIMAD BHAGAVAD GITA TATTVAVIVECANI (English Commentary). Gita Press Gorakhpur, 2019.

individuals in modern times, wrote "When disappointment stares me in the face and all alone, I see not one ray of light, I go back to the Śrīmad Bhagavad Gītā I find a verse here and a verse there and I Immediately begin to smile in the midst of overwhelming tragedies- and my life has been full of external tragedies and if they have left no visible or indelible scar on me, I owe it all to the teaching of Śrīmad Bhagavad Gītā".¹ It is a text that covers all aspects of life, in which the physical, mental, spiritual, social, religious, intellectual, emotional, and psychological aspects of a person have been highlighted. As Gandhiji said regarding the Gita, other great men have had similar positive experiences like him. Due to this, the advice given in this book is just as relevant and applicable today as it was when maharishi vedvyasaexpressed it many years ago.

Physical Health

Many of the verses in this text deal with our bodily well-being; we'll go over a few of them here, including those dealing with improper lifestyle, diet and postural stability.

a. Diet:

Our bodies are an outcome of the stuff we eat. The yoga of the three guṇa focuses on embedding and elevating the Sattva guṇa among the three guṇa, namely sattva, rajas, and tamas. Guṇa are the characteristics or features of human behavior that are present in all people. The cultivation and enhancement of sattva guṇa can result in the holistic development of one's personality. It has the potential to improve people's well-being. It is said in Śrīmad Bhagavad Gītā:

āyuhṣattvabalārogya sukhaprītivivardhanāḥ/

rasyāḥ snigdhāḥ sthīrā hr̥dyā āhārāḥ sātṭvikapriyāḥ// (17/8)

"Those of a Sattvik mind enjoy naturally palatable foods which are sweet, juicy, succulent and high in prāṇa, which promote cheerfulness, health, vitality happiness and vigor." Similarly, a study explains that happiness is positively correlated with sattva guṇa but negatively correlated with rajas and tamas guṇa.² Gītā explains that sattvik individuals prefer

1. Gandhi MK. Young India Magazine. 1925; pp. 1078-1079.

2. Khanna P, Singh K, Singla S, Verma V. Relationship between Triguna theory and well-being indicators. International Journal of Yoga - Philosophy, Psychology And Parapsychology. 2013; 1(2): 69.

naturally juicy fruits; also, research suggests that increasing the intake of fruits and vegetables may reduce the risk of ovarian cancer.¹

*kaṭvamlalavaṇātyuṣṇa tūkṣṇarūkṣavidāhinaḥ/
āhārū rājasasyeṣṭā duḥkhaśokāmayapradāh// (17/9)*

"Those of a Rājasic mind indulge more in foods that taste spicy, hot, pungent, too sour or bitter and that excite the palate to cause sickness later." People who consume salty foods or use salt additionally in their diet, eat salt-preserved food and fish have been proven to have a higher chance of developing gastric cancer.²

*yātayāmam gatarasam pūti paryuṣitam ca yat/
ucchiṣṭamapī cāmedhyam bhojanam tāmasapriyam// (17/10)*

"People with a tamasic mentality prefer foods which are over-cooked, stale, burnt, unripe, putrid or heavy, that cause laziness and lethargy." People's weight rises as a result of the street food, which is readily available in the market and includes packaged, preserved, and junk food. WHO stated that unhealthy diet is one of the main reasons of NCD (Non-Communicable Diseases).³ Also, the risk of Prostate Cancer and esophageal cancer may be increased by a large diet of preserved foods and hot beverages.^{4,5} Obesity/overweight increases the risk of renal, colorectal, breast (postmenopausal), endometrial, and esophageal cancers⁶ So, we should eat only sattvik foods to maintain a healthy body and mind. Rajsik and tamsik foods can lead to disease, discomfort, misery, and mental

-
1. Zhang M, Yang ZY, Binns CW, Lee AH. Diet and ovarian cancer risk: a case-control study in China. *Br. J. Cancer.* 2002; 86(5):712-7.
 2. Strumylaite L, Žickute J, Dudzevicius JE, Dregval L. Salt-preserved foods and risk of gastric cancer. *Medicina.* 2006; 42(2):164-70.
 3. World Health Organization: Noncommunicable diseases fact sheet. Geneva; 2017. <http://www.who.int/mediacentre/factsheets/fs355/en/>. Accessed 20 June 2018.
 4. Jian L, Zhang DH, Lee AH, Binns CW. Do preserved foods increase prostate cancer risk?. *Br. J. Cancer.* 2004; 90(9):1792-5.
 5. Hung HC, Huang MC, Lee JM, WU DC, HSU HK, WU MT. Association between diet and esophageal cancer in Taiwan. *J. Gastroenterol. Hepatol.* 2004; 19(6):632-7.
 6. Key TJ, Schatzkin A, Willett WC, Allen NE, Spencer EA, Travis RC. Diet, nutrition and the prevention of cancer. *Public Health Nutr.* 2004;7(1a):187-200.

instability, hence, they are truly unfit to eat. Food should be consumed at the proper time and should not be excessive or insufficient, it needs to be hygienic and light.¹ This effect of food on our minds has been communicated beautifully through generations with an age-old Indian saying "*Jaisa Khaye Aann, Waisa Hoya Man*".

b. Life-style:

Aggressive behavior is higher among people who live unhealthy lifestyles than it is among those who do not.² Additionally, those with unhealthy lifestyles experience more stress, anxiety, and sadness.³ Lifestyle-related disorders, such as hypoadiponectinemia and insulin resistance syndrome, can be brought on by unhealthy lifestyles.⁴ Many years ago, Gītā explains healthy lifestyle -

*nātyaśnatastu yogo'sti nacaikāntamanaśnataḥ/
na cātisvapnaśīlasya jāgratonaiva cārjuna// (6/16)*

"Arjuna, Yoga is not for one who eats too much, nor for one who does not eat at all; neither for one who habitually sleeps too long nor surely for one who keeps awake."

*yuktāhāravihārasya yuktaceṣṭasya karmasu/
yuktasvapnābaddhasya yogo bhavati duḥkhaḥ// (6/17)*

"Yoga is attained by the self-regulated, who with determination and will maintain a steady balance in dietary, recreational and sleep habits, and perform all actions in an adequate manner." A proper amount of food and sleep are essential to focus on any activity with complete concentration, and this generates energy in our efforts. There is no way for someone who eats too much or too little, or sleeps too much or too little, to become a Yogi. A life devoid of misery is achieved through balanced food, balanced recreation, balanced working, balanced sleeping and waking, and yoga

1. Rao BR. Astang sangraha. Chaukhamba visvabharati, Varanasi. 2006; Sutrasthan-10/16:193.
2. Pouyamanesh J. The effect of bad lifestyle on increasing aggression. Procedia Soc Behav Sci. 2013; 84:1634-8.
3. Hanawi SA, Saat NZ, Zulkafly M, Hazlenah H, Taibukahn NH, Yoganathan D. et al., Impact of a Healthy Lifestyle on the Psychological Well-being of University Students. IJPRAS. 2020; 9(2):1-7
4. Yokoyama H, Hirose H, Ohgo H, Saito I. Associations among lifestyle status, serum adiponectin level and insulin resistance. Intern. Med. 2004; 43(6):453-7.

practice. All in all, moderation is the key to life. Sleeping more or less is linked to a higher prevalence of hypertension, especially when that duration is extreme like less than 6 hours each night.¹ Disturbed Sleep and suppressing natural urges causes indigestion even when appropriate, light, food consumed on time.² There are a number of healthy lifestyle profiles that seem to be linked to longer gains in life without type 2 diabetes, cardiovascular and respiratory disorders, and cancer.³ Therefore, it is necessary to have a proper lifestyle along with a proper diet; then only physical health will be complete. People in the modern time may be aware of the ideal lifestyle for health, but they rarely adopt it into their daily routine.⁴ Thus, knowing about a healthy lifestyle is not enough; we must put it into practice in order to reap its benefits for our physical health.

c. For postural Stability:

*samaṃ kāyaśirogrīvaṃ dhārayannacalam sthiraḥ/
sampsreṣya nāsikāgraṃ svam diśaścānavalokayan// (6/13)*

In the above verses, sitting posture and sitting place for dhyana are described which help our body to remain steady and stable. It is described that a yogi should sit on a clean floor, which is neither too high nor too low, in such a way that your seat is fixed. By concentrating the mind, keeping the actions of the mind and the senses under control, practice yoga for the purification of the heart. With a strong posture, holding the head and neck straight and fixed, looking at the tip of the nostrils, not looking at other directions, may the careful yogi, who is steadfast in the vow of a brahmacharya, be able to stop the mind and be established in Me, without fear and with a calm conscience. All of these elements are

-
1. Gottlieb DJ, Redline S, Nieto FJ, Baldwin CM, Newman AB, Resnick HE. Et al., Association of usual sleep duration with hypertension: the Sleep Heart Health Study. *Sleep*. 2006; 29(8):1009-14.
 2. Sharma A. *Sushrut Samhita*. Chaukhamba surbharati prakashana, Varanasi. 2006; Sutrasthan 46/499:447.
 3. Nyberg ST, Singh-Manoux A, Pentti J, Madsen IE, Sabia S, Alfredsson L. et al., Association of healthy lifestyle with years lived without major chronic diseases. *JAMA Intern. Med.* 2020; 180(5):760-8.
 4. Sajwani RA, Shoukat S, Raza R, Shiekh MM, Rashid Q, Siddique MS. Et al., Knowledge and practice of healthy lifestyle and dietary habits in medical and non-medical students of Karachi, Pakistan. *J Pak Med Assoc.* 2009; 59(9):650.

specified for our body's stability, which is accountable for our mind's stability. Peace is the consequence of a stable mind and is the precious treasure. Flattening the lumbar spine while sitting and lifting heavy objects is advantageous from a mechanical and nutritional perspective.¹ Sitting with less ischial support and more lumbar support lowered the sitting load on the lumbar spine and the activity of the lumbar muscles, both of which may help to lessen sitting-related low back pain.² However, sitting for more than half of a workday, combined awkward postures, does raise the risk of developing LBP and/or sciatica, and the biggest rise in LBP is caused by the combination of those risk factors.³ It has also the connection to the Śrīmad Bhagavad Gītā verse above that describes the perfect sitting position.

Mental Health

Mental health refers to cognitive, behavioral, psychological and emotional aspects of human. It is an adjustment of human being to the world and to each other with a maximum of effectiveness and happiness.

a. Happy Mindset

*manaḥ prasādaḥ saumyatvaṃ maunamātmavinigrahaḥ/
bhāvasaṃśuddhirityetattapo mānasamucyate// (17/16)*

"A happy mindset encompasses calmness of mind, goodness of heart, stillness, self- control, and purity of conscience." There was found significant relationship between happiness and self-control. Additionally, the strongest predictor of satisfaction is self-control.⁴

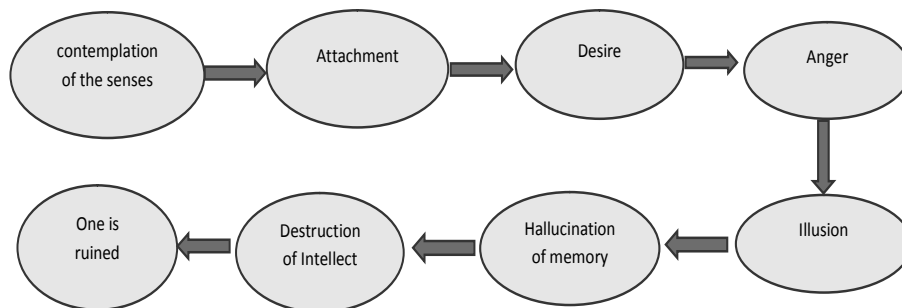
*tejaḥ kṣamā dhṛtiḥ śaucamadroho nātimānitā/
bhavanti sampadam daivī mabhiḥjātasya bhārata// (16/3)*

-
1. Adams MA, Hutton WC. The effect of posture on the lumbar spine. J BONE JOINT SURG BR. 1985; 67(4):625-9.
 2. Makhsous M, Lin F, Bankard J, Hendrix RW, Hepler M, Press J. Biomechanical effects of sitting with adjustable ischial and lumbar support on occupational low back pain: evaluation of sitting load and back muscle activity. BMC Musculoskelet. Disord. 2009; 10:17.
 3. Lis AM, Black KM, Korn H, Nordin M. Association between sitting and occupational LBP. Eur. Spine J. 2007; 16(2):283-98.
 4. Ramezani SG, Gholtash A. The relationship between happiness, self-control and locus of control. IJEPR. 2015; 1(2):100.

"Charm, forgiveness, patience, external cleanliness, no enmity towards anyone and no pride in own veneration, these are the divine virtues (daivīṃ sampadaṃ)."

*trividhaṃ narakasyedaṃ dvāraṃ nāśanamātmanaḥ/
kāmaḥ krodhastathā lobhastasmādetattrayaṃ tyajet// (16/21)*

"Lust, anger and greed - these three types of hellish qualities are the destroyers of the soul, that is, they lead to its degradation. Therefore, all three should be discarded." It is described in Śrīmad Bhagavad Gītā (2/62-63) that while contemplating on the sense objects, one develops attachment to them, and from such attachment lust arises and then anger manifests from lust. Out of anger, complete delusion arises, and from delusion, the power of memory gets confused, when memory gets confused, the intellect perishes, and when the intellect is destroyed, a person falls again into the degradation.



These negative emotions- *anger, greed, fear, jealousy, sadness, or depression*-are so strong that they even prevent a person from properly digesting food when they consume it while they are experiencing them.¹⁶ At a given time, higher levels of anxiety and depression were linked to more frequently expressing outward anger.¹ Anger symptoms have been linked, independently, to a variety of mood, anxiety, and substance use disorders.² Theoretical viewpoints consider that aggressive and angry

1. Park IJ, Wang L, Williams DR, Alegría M. Does anger regulation mediate the discrimination-mental health link among Mexican-origin adolescents? A longitudinal mediation analysis using multilevel modeling. *Dev Psychol.* 2017; 53(2): 340.
2. Barrett EL, Mills KL, Teesson M. Mental health correlates of anger in the general population: Findings from the 2007 National Survey of Mental Health and Wellbeing. *Aust N Z J Psychiatry.* 2013; 47(5):470-6.

impulses that are focused inward are the cause of depressive and suicidal behaviors.¹ The most of the time, anxiety leads to obesity, and there is some data to support this association.^{2,3} Higher levels of anger was associated with lower levels of psychological well-being as well as higher levels of psychological distress.⁴ Research finding demonstrate a significant correlation between mental health, happiness, and life quality. Students with better mental health are happier and have better lives.⁵

b. Speech Austerity

*anudvegakaram vākyam satyam priyahitam ca yat/
svādhyāyābhyasanam caiva vāṇmayam tapa ucyate*/(17/15)

The required level of speech is accurately defined in Śrīmad Bhagavad Gītā. Maintaining one's own words and pledges to others is critical. That is the basis for the Mahabharata's conflict and destruction, when the kauravas failed to keep their pledges of returning the realm to the pandavas. In our daily lives, we frequently witness people making pledges for their own advantage and then failing to follow through on these promises. They are the individuals who lack character and purity in their words and actions. The speech should be pleasant to listen to and beneficial to others. Pleasing others does not imply saying things that aren't true. The speech must be truthful yet being attractive and valuable to others.

-
1. Kotler M, Iancu I, Efroni R, Amir M. Anger, impulsivity, social support, and suicide risk in patients with posttraumatic stress disorder. J. Nerv. Ment. Dis. 2001; 189(3):162-7.
 2. Garipey G, Nitka D, Schmitz N. The association between obesity and anxiety disorders in the population: a systematic review and meta-analysis. Int J Obes (Lond). 2010; 34(3):407-19.
 3. Jorm AF, Korten AE, Christensen H, Jacomb PA, Rodgers B, Parslow RA. Association of obesity with anxiety, depression and emotional well-being: a community survey. Aust N Z J Public Health. 2003; 27(4):434-40.
 4. National Institutes of Health. International journal of psychological research. int.j.psychol.res. 2012; 5(2): 24-36.
 5. Ahmadi Gatab T, Taheri M. The relationship between psychological health, happiness and life quality in the students. Procedia Soc Behav Sci. 2011; 30: 1983-5.

c. Mental Restrain

*asaṁśayaṁ mahābāho mano durnigrahaṁ calam/
abhyāseṇa tu kaunteya vairāgyeṇa ca grhyate* //(6/35)

"Sri Krisna said, O great Baho! No doubt, the mind is going to be fickle and difficult to control. But Arjuna, son of Kunti, it is subdued by practice and dispassion." The senses are so powerful and impetuous that they can easily sweep the mind away. The fickle, unsteady mind has a tendency to stray. Every time the mind wanders away from the self, the controller pulls it back to keep it under control. The joys that come from the senses are simply a source of sorrow as they are not permanent and are transient. As a result, the sensible man does not like them. It is said in the Śrīmad Bhagavad Gītā that controlling and conquering our senses is challenging but doable through practice and detachment. All because of the allure of the surroundings and a swaying mind. We must complete the task with the aid of our senses, which must be kept under control, and this can only be accomplished by practice and detachment. When our senses are under our control, then we are freed from many obstacles that come before us, life is not difficult and we are saved from many obstacles and objects to come. Ultimately it brings peace and happiness in our life and helpful for our mental health.

*rāga dveṣa vimuktaistu viṣayānindriyaiś caran orviyuktais/
ātmavaśyair vidheyātmā prasādam adhi gacchati* //(2/64)

"The man, who has restrained his senses is free from attraction/ attachments and repulsion. That self-controlled man attains peace." The most crucial aspect of mental health and happiness is peace. In today's world, most people lack mental serenity, thus the Gītā might be a beacon of hope for all of them.

Social Health

The social health of individuals refers to that dimension of an individual's well-being that concerns how he/she gets along with other people and how other people react to him/her. Social relationship is also a key to holistic health. Some verses in the Gītā deals with social health and are related to karmas, interpersonal behavior, and mental neutrality.

a. Interpersonal Behavior

*ahimsā satyamakrodhastyāgaḥ śāntirapaiśunam/
dayā bhūteṣvaloluptvaṃ mārdavaṃ hrīracāpalam// (16/2)*

"Do not harm anyone in any way, with thought, action or speech. Sweet speech, not to be angry towards anyone including the one who harms, relinquishing the pride of one's deeds, absence of restlessness of mind, not to criticize anyone, mercy without cause for all living beings, absence of attachment to the senses even when they are combined with objects and shame in conduct contrary to scripture." When a person behaves with others or society in accordance with the above rationale, he establishes excellent behavior, and social health improves. Social support was consistently linked to positive impacts on several components of the immunological, endocrine, and cardiovascular systems, according to an analysis of 81 studies.¹ The perception of social support may not be as relevant to health and wellbeing as the perception of social connectivity. In order to help people, feel more socially involved in society, efforts to improve social relationship can be concentrated on helping them become friends and companions.² Social isolation is a significant risk factor for mortality due to a variety of factors.³

b. Mental Neutrality

*adveṣṭhā sarvabhūtānāṃ maitraḥ karuṇa eva ca/
nirmamo nirahaṅkāraḥ samaduḥkhasukhaḥ kṣamī// (12/13)*

"A person who is friendly and compassionate to all, loves all, hates none, who is free from egoism and all the attachments, who is neutral in pain and pleasure is dear to me." These are the highest attributes, and they are intimately linked to interpersonal behavior in society. These all enhance social well-being of a person. All forms of suffering and misery

-
1. Uchino BN, Cacioppo JT, Kiecolt-Glaser JK. The relationship between social support and physiological processes: a review with emphasis on underlying mechanisms and implications for health. Psychol Bull. 1996; 119(3): 488.
 2. Ashida S, Heaney CA. Differential associations of social support and social connectedness with structural features of social networks and the health status of older adults. J Aging Health. 2008; 20(7):872-93.
 3. House JS, Landis KR, Umberson D. Social relationships and health. Science. 1988; 241(4865): 540-5.

are a direct effect of how people act. A person will receive positive social responses if they behave well, and negative responses if they behave badly.

Conclusion

With reference to the Śrīmad Bhagavad Gītā, we have explored the three dimensions of health as outlined by WHO. This text is a source of hope for those who are afflicted with physical ailments or mental disturbances. According to yog vashisthā, all problems begin at a mental level adhi and if not managed in time, they evolve into bodily diseases vyādhi. Modern medical science also affirms that the majority of today's ailments are psychosomatic. Due to today's intense competition and accelerated pace of life, stress, anxiety, depression, fear, and health issues are on the rise, since the issue is persistent, the knowledge of Gītā can help resolve it in the current situation as well. Hence, it is important to consider rectifying our habits and setting up healthy routines for ourselves. Also, like Cognitive Behavioral Therapy, the philosophical teachings of the Gītā presented in this article, might prove useful towards correcting unhealthy physical, mental and social health amongst those suffering disorders of the kind. This might be particularly useful for humanity.



Exploring the roots of Dance in the Vedic Period

Aishwarya Marathe*

Rekha Wagani**

Abstract

The aim of the present study is to understand the roots of dance in the *vedas* in Indian culture from the ancient times. Dance, since the ancient period has tremendous influence on human life and culture. This study focusses on the unique components of dance which have been rooted in *vedas* and still continue to translate itself in various unique forms like folk and classical dances. This study also attempts to explore and bring together the position of dance in the Vedic literature. It is interesting to know how the fifth veda, the *Nāṭya Veda* came into existence from a blend of various elements of *Rgveda*, *Atharvaveda*, *Sāmveda* and *Yajurveda*.

Keyword : Vedas, dance, India.

Dance and various dance forms in India

Dance is a vigorous, non-competitive kind of exercise that can enhance one's physical health as well as their mental and emotional wellness (Chatterjee, 2013). The tradition of adopting any kind of art to express feelings is present in all cultures. The *navarasas*, or nine primary emotions, are the cornerstones of all Indian aesthetics. They are love, laughter, tragedy, wrath, heroism, horror, disgust, astonishment, and tranquillity (Pathloth, 2020). In the context of dance, movement may be employed as a means of expression and communication (Kaeppler, 1999).

* Research scholar, Ph.D. (Psychology), Amity Institute of Behavior and Allied Sciences, Amity University, Mumbai. Email: aishwarya-marathe26@gmail.com

** Assistant professor, Amity Institute of Behavior and Allied Sciences, Amity University Mumbai. Email: rwagani@mum.amity.edu

Dance has both aesthetic value and symbolic significance in a culture or community. These cultural values or social identification markers, such as kinship systems (e.g., kinship), can affect how dancers interact with one another throughout their activities in respect to other individuals in their communities (Giurchescu, 2001). Recognising dance forms according to their performance setting (social, ceremonial, or recreational) is an essential distinction (Desmond, 1993). The advantages of Sangeet (song, dance, and music) for people's physical and emotional welfare are also supported by Indian philosophy (Shastri, 1931). Ayurveda viewed dance as a means of inner awareness and healing (Chatterjee, 2013).

As with other facets of Indian culture, dance in India includes a diverse range of dance styles. Different dance forms evolved in various parts of India, developed in accordance with regional traditions, and also included components from other regions of the nation (Skiba, 2016). These dance styles are derived from Indian mythology, epics, and traditions (O'Shea, 1998). In India, there are several forms of dances, each with its own distinct style and history. Traditional stories and religious beliefs are frequently incorporated into Indian folk dances, although classical dances are more artistic and precise. Folk and classical dances are vital parts of Indian culture and may be seen at weddings, festivals, and other special events. Folk dances in India are often energetic and enthusiastic, but classical dances are more graceful and exquisite. Indian traditional dances are highly regarded art forms that take years to learn. These dances are often performed by professional dancers, and their motions frequently tell a story or express a message.

Indian Folk dance

Indian folk dances are an important element of the country's cultural legacy. These dances are generally associated with local customs and traditions and are often performed on special events and festivals. There are several forms of Indian folk dances, each with their own distinct style and moves. Bhangra, Garba, and Dandiya Raas are some of the most popular dances.

Indian Classical dance

Indian classical dances are firmly ingrained in India's traditional culture (Mallik, Chaudhury & Ghosh, 2011). Indian classical dance forms are classified into seven types: Kathak, Bharatnatyam, Manipuri, Kathakali,

Odissi, Kuchipudi, and Mohiniattam. To varying degrees, all Indian classical dances are grounded in the *Natyashastra* and hence share elements such as mudras, certain body poses, and the use of dramatic or expressive acting or *abhinaya* (Chatterjee, 2013). The dance is accompanied by Indian classical music, and percussion is an important part of the culture. They are a method of communication that expresses one's innermost sentiments while also depicting the cultural features of a civilisation (Sudhakar, 1994).

Dance and Vedas

In literature, the first references come from the Vedas where dance and music have their roots. *Silpa* in the Vedas refers to art, of which three types are included in the *Kausitaki Brahmana*: *nṛtya/dance*, *gita/music*, and *Vādita/instrumental music* (29-5). Many early writings of Indian literature, including the Vedas, Upanishads, Puranas, and the two major epics Ramayana and Mahabharata, contain references to dancing. Of all the vedas, the *Sāmaveda*, often known as the Veda of tunes and chants, dates around 1200-800 BCE. This *Veda* is about public worship. The *Samaveda* is regarded as the foundation of Indian classical music and dance. It is regarded as a repository for lovely chants.

The famed *Nāṭyaśāstra*, credited to the sage Bharata, is the first comprehensive literature on dance (Waterhouse, 1998). Lord Brahma is believed to have created the fifth *Veda*, or *Pancham Veda*, for the ordinary people in *Kaliyuga* by combining diverse aspects from the four existing Vedas. It was named as the *Natya Veda*. He blended *pathya* from the *R̥gveda*, *abhinaya* from the *Yajurveda*, *geet* and chants from the *Sāmaveda*, and *Rasa* from the *Atharvaveda* to create the fifth *Veda*, *Nāṭya Veda*. He subsequently gave it to *Rishi Bharata*, who composed the *BharataNāṭya Shāstra*, a book about Indian classical dances. According to *Natya Shastra*, there are two fundamental characteristics of Indian classical dance. *Lāsya* which means elegance, *bhāva*, *rasa*, and *abhinaya*. It represents the feminine aspects of dance as an art form. *Tāṇḍava* which denotes the manly characteristics of dance and focuses on rhythmic movement. Unlike other vedas, *Natyaveda* was not barred to the *shūdras* and its purpose was to provide joy, delight and entertainment to eyes and ears irrespective of the caste and creed. During the Vedic period, Indian dance adopted a new direction. It was enhanced by fresh emotions and a range of presenting styles. The word 'Nṛtya' was referenced several times

in the Vedas, which belonged to this era. It is also stated that the Rishis (sages and scholarly men) of this era were well versed in the technique of dance. According to Prof. Alag Retorn, artists of all three sorts were present throughout this time period, including singers, dancers, and instrument players. Women dancers used to freely engage in public musical performances as singers, dancers, and instrument players, and they had high social prestige. *Nṛitya* has been eloquently depicted in Brahmins, Upanishads, and other Vedic literature of this century. In the *Nāṭyaśāstra*, Bharata has clearly stated that the stories taken from *vedas*, *śruti*, *smṛiti* and similar values to be used while presenting dance.

Garba, or the Maypole dance, was popular among Vedic women. The Vedas include references to dancing Gods. Indra is regarded in the *R̥g Veda* (1-130-7) as the one who made others dance and joy (RV 2-22-4, 8-24-9, 8-24-12, 8-92-2). In one of the epithets, '*Nrtuh*' equals '*nartayitaa*' (RV 8-92-3). His friends, the *Maruts* and the *Asvins*, are also mentioned to be dancers. The *Maruts* are praised for their leadership of a dancing ensemble (RV 5-52-12, 8-20-22). The mention of *maruts* in the *vedas* are that they not only dance rhythmically, but they also sing, earning them the title "Singers of Heaven." While they are depicted as male dancers, the most endearing idea of a dancing lady is generated in *Uṣhas*, the morning, who is shown as a flamboyant dancer.

The shloka,

"Adhiposhamsivapatenrtoohuivapornutevakshakaa"

Means, "the arrival of the dawn, with its magnificent colour on the eastern horizon, gladdens the hearts of all living beings." The birds flit around, chirping sweetly. Men awaken from their slumber and engage in activities. *Uṣas*, like a lovely dancer, spreads joy and happiness".

Asvins are also associated with dancing and singing, which they do in collaboration with *Sūrya* (RV6-63-5). Dancing is one of the Gods' achievements. *Gandharvas* are recognised for their abilities as heavenly vocalists. In later literature, they are also connected with dancing and music. *Apsaras*, the Indian heavenly dancers, are also mentioned in Vedic literature. *Atharva Veda* has several descriptions of the *Apsaras* dancing with the *Gandharvas* (4-371, 4-37-4, 4-37-5). Even in the middle of the sickness and plague they feared, men and women sang and danced. They met in the assembly house '*sabhā*' (AV 7-12-2) for social amusement such as dancing and music. The song dedicated to the Earth (AV. 12-1-1,

12-1-41) depicts a happy existence in which people sing and dance. Dance *Gandharvas* and *Apsarases* let us imagine a civilization in which dancing and music were valued as vital parts of daily life, whether in pleasure or grief, as a vocation or as a significant community activity.

The *R̥g Veda* has multiple chapters describing the highly evolved art of dancing, to which various natural phenomena are related. We soon discover that the dancer holds an important place in society. Her presence was necessary for all religious and auspicious rituals. The *Pūrṇa Kumbha*, for example, represents the beginning of holiness and immortality.

**"Poorṇam naari prabhara kumbham etham drutasya
Dhaaram amrutena sambhrutam"**

This translates as "Oh, sweet lady, bring us the *Pūrṇa Kumbha*, full with streams of clarified butter mixed with honey."

Culture of Indian dance is rich and has strong roots in historical literature not only in Vedas, but also in Mahābhārata, Rāmayaṇa, Upaniṣads and so on.

References

- Chatterjee, A. (2013). Improved Health Status Through Prolonged Practice of Dance as a Therapy - A Case Study. *International Journal of Basic and Applied Medical Sciences*, 3(1), pp.180-183.
- Pathloth, D., 2020. Rasa Prakaranam The aesthetics of Sentiments and their interpretation in Kuchipudi Dance. *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT)*, [online] 8(10), pp.3659-3681.
- Kaeppler, A. L. (1996). The look of music, the sound of dance: Music as a visual art. *Visual Anthropology*, 8(2-4), 133-153.
- Giurchescu, A. (2001). The power of dance and its social and political uses. *Yearbook for traditional music*, 33, 109-122.
- Desmond, J. C. (1993). Embodying difference: Issues in dance and cultural studies. *Cultural Critique*, (26), 33-63.
- Shastri, H. (1931). A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Collections of the Asiatic Society of Bengal. Calcutta: Asiatic Society of Bengal, India.

- O'Shea, J. (1998). "Traditional" Indian Dance and the Making of Interpretive Communities. *Asian Theatre Journal*, 15(1), 45-63. <https://doi.org/10.2307/1124098>
- Sudhakar, K. (1994). Indian classical dancing: The therapeutic advantages. New Delhi: Sterling Publishers
- Waterhouse, David (ed.) (1998) Dance of India. Mumbai: Popular Prakashan.
- Skiba, K. (2016). Cultural Geography of Kathak Dance: Streams of Tradition and Global Flows. *Cracow Indological Studies*, 18(18), 55-89. doi: 10.12797/cis.18.2016.18.04



Wisdom : A Yoga Perspective

Rajib Ghosh*

Dr. Roshan Lal Dewangan**

Introduction

Wisdom has been discussed by philosophers and other thinkers concerned with living a good life. Wisdom involves an integration of knowledge and experience and an understanding of the uncertainties of life. There is an awareness of how things will happen over time which provides a sense of balance. After almost five decades of empirical research on wisdom, there exists no uniform definition. Definitions of wisdom identifies it as expert knowledge system (Baltes & Smith, 1990), as a form of advanced cognitive functioning (Dittman-Kohli & Baltes, 1990), as an awareness of ignorance (Meacham, 2012), and as the art of questioning. Researchers have defined wisdom according to their philosophical orientation. The concept of wisdom is considered to be the integration of knowledge, traits, mind, emotion, and virtue (Baltes & Kunzmann, 2004). Erik Erikson (1968) suggested that wisdom is the highest human achievement after overcoming various life crises at each development stage and accomplishing issues related to each developmental stage of life. However, wisdom has been nominated as the ideal endpoint of development across time and all the cultures (Baltes & Staudinger, 2000). Wisdom experts, researchers who have substantial work in the wisdom area, characterized wisdom as "... uniquely human; a form of advanced cognitive and emotional development that is experience-driven; and a personal quality, albeit a rare one, which can be learned, increases with age, can be measured and is not likely to be enhanced by taking medication" (Jeste et al., 2010).

* Research Scholar, Department of Applied Psychology, Kazi Nazrul University, Asansol (West Bengal)-713340

** Assistant Professor, Department of Applied Psychology, Kazi Nazrul University, Asansol (West Bengal)-713340

Here, we mainly focused on understanding wisdom in the light of yoga, and to discuss wisdom from eastern and western tradition. For this purpose, mainly secondary data have been used from textbooks, reference books, various journals, websites etc. The main objectives are as follows:

- To understand the meaning of wisdom in Yoga tradition.
- To understand the Pillars of Knowledge in Jnana Yoga
- To understand the different fundamental practices of Jnana Yoga
- To understand the different stages to attain wisdom in Yoga
- To understand the eastern and western perspectives of wisdom and in this context the process view of wisdom.

Wisdom from Yoga perspective

The Sanskrit root of yoga is 'yuj', means "to join"; it indicates integration and harmony between one's body with mind and soul. The continued practice of yoga will lead one to a sense of peace and well-being, and also a feeling of being at one with his environment. Yoga is a physiological, psychological & spiritual activity which has the ultimate goal to unite mind, body & soul, along with a state of unity with the environment one is placed in. According to yogic philosophies actual nature of a person and individuality are primarily made of four factors- body, mind, emotions, and energy. To obtain moksha, or ultimate freedom, everyone, regardless of their nature, should pursue the four yoga pathways. These include: Karma yoga or the path of action, which could be mental or physical. Bhakti yoga or the path of devotion towards all humans and animals. Raja yoga or the path of discipline, which brings focus into the seeker's mind.

Jñāna yoga, also known as jñānamarga or Gyān yoga, is the fourth path. Jñāna signifies knowledge or wisdom. Jñāna Yoga is considered to be one of the earliest yoga notions. It is thought to have started during the Vedic period. Jñāna Yoga is a well-known traditional approach to moksha and also said to be the most difficult. It is the process of transforming intellectual knowledge into practical wisdom. It's the finding of human dharma in connection to the natural world and the universe. Traditionally, it is described as a method of attaining the ultimate meditative state and inner knowledge. It takes a lot of willpower and intelligence to move beyond one's natural state, ideas, and ego when executing it. To be effective in experiencing self-realization, the process requires thinking, introspection,

meditation, self-questioning, and awareness, which helps the individual to open their eyes from all concepts and perceptions of reality. Knowledge acquisition may be difficult, especially when the ultimate objective is self-realization. A yogi who practises Jnana yoga aims to accomplish the ultimate objective of yoga by gaining knowledge through texts and real-life experiences. The yogi can achieve enlightenment about the true nature of self and be liberated from the Maya practicing meditation, self-inquiry, and contemplation (illusions). It necessitates the mind's expansion beyond intellect in search of ultimate truth. This yoga path is regarded the most difficult to achieve self-realization since it emphasises introspection and demands rigorous spiritual practice and discipline. Jnana is the domain of the philosopher, intellectual, and thinker. We strive to grasp what is ultimately what by thought, conjecture, reasoning, intuition, and discussion, as well as investigating and analyzing ideas. We may tackle those ultimate questions using physics, biology, or psychology—indeed, if we think deeply enough, nearly anything. We enter the world of jnana when those questions arise for us in some way. As a result, the Vedic literature provides direction on the road of wisdom. It allows us to access the concepts and realisations of sages who have travelled this path before us. Its ultimate goal is to move us from assumption to knowledge, from wondering to witnessing, and from seeking to discovery. Many prominent Jnana yogis have defied logic in the past. They learned by intuition and sensing something that was not characterised by the established knowledge of the period. Those who choose to commit their life to Jnana yoga must have a great thirst for knowledge and solutions. They must question everything and become entirely engrossed in the process of finding the answers. Many people are born with this disposition and are best suited to the yoga practise.

Roots

The Bhagavad Gīta and Upaniṣads are the foundations of Jñāna Yoga. The Upaniṣads emphasise the realisation of the self's oneness with God, while the Gītā identifies Jñāna Yoga as the route to self-realization. Furthermore, the ancient Indian philosopher Adi Shankaracharya, who developed the Advaita Vedanta around 700 BCE, promoted the notion of Jnana Yoga. In his opinion, to be liberated from Māyā and to reach self-realization, yogis needed to entirely renounce the world. In addition, the Bhagavad Gītā emphasises Jñāna Yoga as a non-dualistic Advaita Vedanta tradition. Advaita denotes non-dual while Vedānta signifies Vedic

knowledge, according to this viewpoint, understanding the four pillars would lead to the revelation that the inner self is not separate from ultimate reality. All of our miseries will be relieved once you are free of the illusion of dualism.

Four Pillars of Knowledge in Jñāna Yoga

Janna Yoga is a route that leads to the realisation of truth through insight, practise, and knowledge. The Four Pillars of Knowledge are also known as Sādhana Chatusṭaya. It is the necessary step that a person takes to reach the ultimate aim of Jnana yoga, which is self-realization, or liberation from all thoughts and beliefs about reality. To succeed and accomplish the final objective, it is recommended that you practise the four methods in the correct order. Even if one does not have the ultimate objective of self-realization, using the ways listed below will help one nurture his spiritual side and comprehend and relieve all of his life's suffering and hardships.

Viveka - Discrimination

Discrimination is the first of the four methods. The purest type of knowledge is viveka. It can also be regarded as our conscience's highest authority. Our conscience informs us of what is good and evil. Most of the time, we know exactly what we should do; nevertheless, our egoistic inclinations usually win out and drown out the voice of conscience within us. This approach is an individual's deliberate and persistent intellectual endeavour to understand the distinction between the real and the unreal (sat and asat), permanent and transient (nitya and anitya), self and not-self (atman and anatman).

Vairagya - Renunciation

Vairagya is the interior liberation from all desires for material pleasures and goods. This strategy involves releasing oneself from any momentary ties to the outside world. according to a janana Yogi All worldly joys are illusory, and hence have no permanent worth, A jañāna Yogi searches for God, the unchanging, everlasting Supreme. Individuals can grow themselves by separating from all worldly possessions and their egoistic self. True understanding emerges when the mind is free of attachment to all kinds of transient objects. All things in this world are impermanent and hence a type of unreality. Reality is the Divine Self,

which is everlasting, indestructible, and unchangeable. Space can be compared to the Atma. Space is always space; it can't be cut or burned. We may build separate "individual" sections by erecting walls. However, space does not alter as a result of this, and when the barriers are removed, just undivided, infinite space remains. It's a method of gradually discolouring the inner field of mind's attractions and aversions. This dispassion does not imply ignoring one's commitments to others or failing to fulfil one's societal obligations. A person who has effectively nurtured non-attachment is more effective in the world as well as more prepared for the complexities of pursuing Truth.

Ṣatsampat - Six virtues

This procedure entails Six virtues, areas of mental training, and attitudes are fostered in order to achieve a mental and emotional equilibrium, and therefore develop one's ability to see everything that is beyond Maya's illusions. All of these techniques aid in the development of mental discipline and self-control in individuals. In this regard, appropriate meditation and intense focus are simple to achieve.

● **Śama (Tranquility)**

This is when a person can acquire mental serenity and react to external stimuli in a balanced manner. The deliberate cultivation of an inner attitude of tranquillity, peace of mind, or satisfaction serves as a basis for the other practices.

● **Dama (Training)**

This is a technique for strengthening the mind so that it can resist the influence of one's senses and train the senses to be one of the mind's instruments. the sense training (indriyas)s referred to as The responsible use of the senses in good, constructive directions, both in our acts in the world and the sort of inner thoughts we develop.

● **Uparati (Withdrawal)**

A sensation of satiety, or natural sense of completeness, occurs with a proper inner attitude of serenity and the training of the senses, as though no further sensory experience is required. The practise of ceasing any activities that are not part of one's responsibilities. A person can separate himself from all the transient and worldly distractions that can prevent him from following the spiritual path by maintaining a modest lifestyle.

- **Titikṣā (Forbearance)**

This technique involves learning to accept non-conducive conditions in the outside world, which can be a common cause of suffering for people. Allow one to be free of sensory input and social pressure to participate in behaviours, comments, or thoughts that one knows are not beneficial.

- **Śraddhā (Faith)**

This practise permits a person to feel confident in his guru's teachings, the scriptures, and the Yoga path. A strong sense of assurance about one's course keeps one moving in the correct direction.

- **Samādhāna (Focus)**

The freedom to seek the depths of inner investigation and awareness comes from a persistent concentration on harmonising and balancing the mind, its ideas, and emotions, as well as the other virtues. This method allows a person to feel the whole of their mind. A person's mind is free of all the anguish, worries, and concern that the world has placed upon him. The person has a steady mental ability and is capable of dissociating from all pleasures and inner strength and peace of mind are attained.

Mumukṣva - Longing

Mumukṣva is the deep longing to realise and unite with God. A deep, ardent yearning for enlightenment and freedom from the suffering brought on by recurrent cycles of suffering and illusion. It's a tremendous want that progressively consumes all other, weaker desires. AtmaGyana, or the Realisation of our True Self, is the Supreme and Eternal Knowledge. Self-Realization is the realisation that we are one with God and all of life. The intellect's bounds are opened and absolute when this Realisation dawns. Our hearts are filled with all-encompassing love. It also becomes evident that anything that damages others will eventually harm us. Finally, we grasp and follow the Universal principle of Ahimsa, or nonviolence. Gyana Yoga combines the concepts of Bhakti Yoga, Karma Yoga, and Raja Yoga in this fashion. When using this strategy, a person feels a strong desire to be free of suffering.

Three core practices of Jñāna Yoga

The Three main practises of Jñāna Yoga are more easily followed as built on an increasingly strong foundation of Four Means and Six Virtues. These include Sravana, or "listening," manana, or "reflection,"

and nididhyasana, or "meditation," from Upanishad. These lead to direct realisation, or Atma-Sakshatkara. The jnana yoga path is thought to be possible for those with pure hearts, open and reasonable minds, and bright intellect. To begin this yoga path, one must first practise Karma Yoga and Bhakti Yoga in order to prepare the heart and mind to accept the Knowledge.

Śravaṇa

Through a guru, one can hear or experience Vedic wisdom and Upanishads literature. A teacher or guru will usually lead the yogi through talks on non-dualism philosophy. Through numerous analogies and parables, the guru will teach all of his knowledge and the concept of non-dualism to their pupils. The learner should read and study the Upanishads at this level to gain a thorough knowledge of the notions of Atman and Brahman, as well as non-dualism philosophy.

Manana

The contemplation and reflection on these non-duality teachings. The followers are supposed to spend many hours meditating and reflecting on the many principles of svadhyaya and sravana after they have achieved all knowledge. The students should think about and observe the guru's teachings and draw conclusions from them. They should consider the idea of non-duality and comprehend its nuances.

Nididhyāsana

The final practise is continuous and deep meditation on the inner Self, which leads to the growth of Truth. The aspirant can achieve the unification of thought and action by meditation and reflection on the Upanishads' fundamental mantras. A yogi can achieve the unity of thought and action, knowing and being, by maintaining a constant attention on these seeds of enlightenment.

Jñāna Bhūmikās : The Seven Stages of Wisdom

The journey of experiencing oneness with the truth might be intricate and tough; there will be hurdles and problems to overcome. Swami Sivananda detailed the steps that a Jnana yogi will go through in seven stages called Jnana Bhumikas. To progress toward being one with your higher self, you must conquer the hurdles in each level. It's a guide that

helps yogis track their progress and stay on track toward self-realization. Jnana yoga has seven stages:

Subhecchā (good desire)

The first level is reached after a period of rigorous Sravana and performing good deeds without expecting anything in return. A person's desire to seek the ultimate truth is necessary. By studying various scriptures, receiving advice from his guru, and learning alongside others who share his life goals. All sensuous items should be treated with non-attraction or apathy. This stage serves as the foundation for the following two.

Vichāraṇā (Philosophical inquiry).

An individual has obtained information at this point, and his purpose is to research, enquire about, and thoroughly investigate it. In the second stage, principles of non-dualism are questioned, contemplated, and reflected upon.

Tanumanasi (Subtlety of mind).

This level assumes you've absorbed all of the relevant information. Tanu means thread, and this stage is also known as AsangaBhavana because the mind is clear of all distractions. As you let go of all external stimuli and focus all of your attention inwardly, your mind "thins like a thread." If a yogi dies at this point, they will be reincarnated as a Jnani and will spend a long period in the heavens. The individual is now given a clear road to follow, and he has all he needs to become one with the truth. Without any transient or materialistic pleasures to distract him, an individual will apply his knowledge and focus on his soul.

Sattvapatti (Attainment of Light).

The world looks to be a dream at the fourth stage. Deep attention and mind cleansing are accomplished through this practice. Desires for worldly pleasures fade from one's mind, and the path to enlightenment is clear and free of obstacles. And your karma starts to fade. In this level, a yogi will see everything in the universe as equal.

Asamsakti (Inner Detachment).

Knowing the ultimate truth allows you to become detached and unselfish, resulting in deep experiences of bliss. The experiences of Ananda

Svaroop in the waking and dream states are identical (the Eternal Bliss of Brahman). Temporary pleasures will have no effect on him, and he will be able to walk freely away from the world's illusions.

Padārtha Bhāvanā (Spiritual Vision).

The illusions go away at the sixth stage, and the individual is able to view reality clearly and without obstruction. You begin to grasp the truth and comprehend the nature of Brahman (Ultimate Reality). The person is entirely involved in self and realises that only the soul is real.

Turīya (Supreme Freedom).

You are merged in superconsciousness and Videhamukti (liberation without the body) throughout the last stage and achieve Moksha. With the ultimate energy, the individual completely realises the oneness of everything and dissolves the concept of distinct identities.

To summarise, Jñāna yoga is difficult to master. It may be tough for a beginning to comprehend, but by finding a teacher who can assist an individual down the road, one might realise its intellectual side. It's also crucial to stay modest and compassionate throughout the process. All of the thoughts that arise in the mind can easily divert attention away from the ultimate objective, which is to experience oneness with the divine energy.

Wisdom perspective in East and West

Eastern perspectives of wisdom

wisdom focused on the intuitive and enlightened understanding of the relationship between the natural world and the Divine (Birren & Svensson, 2005). Eastern culture understood wisdom as an intuitive ability rather than as knowledge. In ancient Indian philosophy, wisdom is separated from the sensory world. Wise people have an intuitive understanding of the nature of life and death (Birren & Svensson, 2005). Buddha's teaching was delivered through the middle way (mid path). Understanding Buddha's enlightenment knows that all life is suffering, suffering is caused by desire, wisdom is the quieting of all desire, and the eightfold path is the way to the cessation of suffering. Thus, the noble eight paths specify the rule of this way of living which can be the path of obtaining wisdom as well as enlightenment.

Process view of wisdom

Prof Yang, who have worked extensively in East Asian countries (China and Taiwan) has given process view of wisdom. Similar to yogic tradition in this model wisdom is a real-life process that encompasses three core components: integration, embodiment, and positive effects (Yang, 2008). While many components work together to produce wisdom in real life, these components by themselves are not wise. No amount of life-related knowledge or high-level cognitive reasoning can guarantee the manifestation of wisdom; such knowledge and cognitive reasoning must first serve to resolve real-life challenges. In real-life situations, the wisdom process begins when a person integrates ideas that are usually deemed disparate. Without this kind of integration, we are merely being effective in rules, rather than in manifesting wisdom. The wisdom process reaches an endpoint after the integrated thought is put into action and after actions embodying this thought successfully generate positive effects for oneself as well as others (Yang, 2008).

Western perspectives of Wisdom

According to the literature, Sumerians referred to wisdom as practical advice for daily living. Sumerian culture pursued happiness in terms of material enjoyment. Egyptians, on the other hand, emphasized proper behavior regulation and modesty. Socrates developed the Socratic Method to seek truth by questioning everything to understand the nature of the world. Wisdom was strongly related to Christianity and the relationship with God. The Hebrews thought the wise human was the person who had a strong relationship with God. Having the fear of the Lord was the foundation of wisdom. During the Renaissance, the Western value of wisdom focused more on reasoning than on religious value.

East versus West

There have been attempts to contrast Eastern and Western accounts of Wisdom. Masami Takahashi (2000) argues that western traditions take an analytical approach, whereas Eastern traditions are analytic and synthetic (Marshall Takahashi, 2000). In a cross-cultural study, it was found that Americans and Australians tend to associate wisdom with knowledge, whereas Japanese and Indians give more importance to the ability to be discreet, which amounts to judicious use of knowledge by taking into account various social and emotional factors (Takahashi &

amp; Bordia, 2000). Similar views regarding the analytical and knowledge-based approach of the Western notion of wisdom has been pointed out in some other studies (VP Clayton & Birren, 1980; Csikszentmihalyi & Rathunde, 1990). Thus, it is often concluded that the Western notion of wisdom is more analytic by stressing the aspect of knowledge and the Eastern notion of wisdom is more synthetic by stressing direct experience. This difference can have deeper roots in the way things are perceived and how the nature of the individual is understood. Based on empirical studies, it is claimed that, even in perceptual processes such as categorisation, there is a difference between Westerners and Asians (Nisbett & Miyamoto, 2005). The former focusses on an object oblivious of its context whereas Easterners tend to appreciate the context much more. Further, the way the individuals understood is found to be different in Western and Eastern cultures. If Western culture is more individualistic Eastern culture is traditionally more collective. Though such differences certainly exist, Takahashi is cautious enough to point out that there is no dichotomy between the Western and the Eastern understanding of wisdom and different characteristics can be seen in both traditions (Takahashi 2000). For instance, Stoics appreciated the need to have cosmic consciousness and Eastern traditions certainly gave importance to the pursuit of knowledge. It can well be the case that different traditions emphasised different aspects of thinking at different times, resulting in divergent worldviews. For instance, Hadot (1995) argues that Christianity usurped the philosophical concern with the way of life and, as a result, philosophy became a theoretical pursuit in the Middle Ages. This could have played a significant role in shaping the Western notion of wisdom, oriented more towards analysis and knowledge.

Conclusion

Looking at the state of the world today scope of wisdom related research seems to greater than ever; one cannot help but wonder what we need to do to ensure a positive and peaceful future for humanity. How is it possible that knowledge and information have become so much more accessible to people in many parts of the world, but we do not seem to have become any wiser? The main goal of wisdom traditions from ancient to modern times is better understanding human nature and its relationship to the rest of the world, with all of the paradoxes and contradictions this creates, and the causes and consequences of human suffering and human

flourishing. Wisdom can ultimately be developed by transforming institutions of higher learning to improve the quality of social life itself-making a better world, not better knowledge of the social world. Transforming schools and universities such that they integrate wisdom inquiry into education and research practice will help personal and social wisdom flourish. The yogic view of wisdom could be a great path breaker in this regard. A science of wisdom aims to be a science that promotes human flourishing, must acknowledge a spiritual side to wisdom. This is in line with the historical understanding of wisdom that predates the split between science, art, and religion. Such science of wisdom can be both personally important and practically useful. It can provide ways to measure and assess (and perhaps improve upon) insights from the world's wisdom traditions and find ways to develop formative assessments to help seekers advance along the path to a better life for themselves and for the communities that nurture and sustain them.

References :

- Baltes, P. B., & Kunzmann, U. (2004). The Two Faces of Wisdom: Wisdom as a General Theory of Knowledge and Judgment about Excellence in Mind and Virtue vs. Wisdom as Everyday Realization in People and Products. *Human Development*, 47(5), 290-299. <https://doi.org/10.1159/000079156>
- Baltes, P. B., & Staudinger, U. M. (2000). Wisdom: A metaheuristic (pragmatic) to orchestrate mind and virtue toward excellence. *American Psychologist*, 55(1), 122-136. <https://doi.org/10.1037/0003-066x.55.1.122>
- Birren, J. E., & Svensson, C. M. (2005). Wisdom in History. In R. J. Sternberg & J. Jordan (Eds.), *A handbook of wisdom: Psychological perspectives* (pp. 3-28). Cambridge University Press. <https://doi.org/10.1017/CBO9780511610486.002>
- Burgin, T. (2020, November 28). *Jnana Yoga: The Yoga of Wisdom*. Yoga Basics. <https://www.yogabasics.com/learn/jnana-yoga-the-yoga-of-wisdom/>
- Clayton, VP, & Birren, J. (1980). The development of wisdom across the life span: A reexamination of an ancient topic. *Life-Span Development and Behavior*, 3, 103-105.

- Csikszentmihalyi, M., & Rathunde, K. (1990). The psychology of wisdom: An evolutionary interpretation. In R. J. Sternberg (Ed.), *Wisdom: Its nature, origins, and development* (pp. 25-51). Cambridge University Press.
- Dittmann-Kohli, F., & Baltes, P.B. (1990). Toward a neofunctionalist conception of adult intellectual development: Wisdom as a prototypical case of intellectual growth. In C.N. Alexander & E.J. Langer (Eds.), *Higher stages of human development. Perspectives on adult growth* (pp. 54-78). New York: Oxford University Press.
- *Four Means and Six Virtues - Sadhana Chatushtaya and Shatsampat.* (n.d.). Wwww.Swamij.Com. Retrieved May 19, 2022, from <https://www.swamij.com/sadhana-chatushtaya-shatsampat.htm>
- Hadot, P. (1995). *Philosophy as a Way of Life: Spiritual Exercises from Socrates to Foucault* (A. I. Davidson (Ed.)). Oxford: Blackwell.
- Jeste, D. V., Ardelet, M., Blazer, D., Kraemer, H. C., Vaillant, G., & Meeks, T. W. (2010). Expert Consensus on Characteristics of Wisdom: A Delphi Method Study. *The Gerontologist*, 50(5), 668-680. <https://doi.org/10.1093/geront/gnq022>
- *Jnana Yoga - Practice of Jnana Yoga, Definition & Concepts of Jnana Yoga.* (n.d.). Wwww.Yogadaycelebration.Com. Retrieved May 19, 2022, from <http://www.yogadaycelebration.com/jnana-yoga.html>
- *Jnana Yoga.* (n.d.). Yogapedia.Com. Retrieved May 19, 2022, from <https://www.yogapedia.com/definition/5019/jnana-yoga>
- Kakar, S. (1968). The Human Life Cycle: The Traditional Hindu View and the Psychology of Erik Erikson. *Philosophy East and West*, 18(3), 127. <https://doi.org/10.2307/1398255>
- Meacham, J. A. (1990). The loss of wisdom. *Wisdom*, 181-211. <https://doi.org/10.1017/cbo9781139173704.010>
- Nisbett, R. E., & Miyamoto, Y. (2005). The influence of culture: holistic versus analytic perception. *Trends in Cognitive Sciences*, 9(10), 467-473. <https://doi.org/10.1016/j.tics.2005.08.004>

- Smith, J., & Baltes, P. B. (1990). Wisdom-related knowledge: Age/ cohort differences in response to life-planning problems. *Developmental Psychology*, 26(3), 494-505. <https://doi.org/10.1037/0012-1649.26.3.494>
- Takahashi, M. (2000). Toward a Culturally Inclusive Understanding of Wisdom: Historical Roots in the East and West. *The International Journal of Aging and Human Development*, 51(3), 217-230. <https://doi.org/10.2190/h45u-m17w-3ag5-ta49>
- Takahashi, M., & Bordia, P. (2000). The Concept of Wisdom: A Cross-cultural Comparison. *International Journal of Psychology*, 35(1), 1-9. <https://doi.org/10.1080/002075900399475>
- The Art of Living. (n.d.). *Gnana Yoga: The Basic Concepts of Yoga of Knowledge Explained*. Art Of Living (United States). Retrieved May 19, 2022, from <https://www.artofliving.org/us-en/yoga/gnana-yoga>
- Wisdom: its nature, origins, and development. (1991). *Choice Reviews Online*, 28(08), 28-4804. <https://doi.org/10.5860/choice.28-4804>
- Yang, S. Y. (2008). A Process View of Wisdom. *Journal of Adult Development*, 15(2), 62-75. <https://doi.org/10.1007/s10804-008-9037-8>



Role of Yoga in Cerebral Palsy Persons : An Overview

Dr. Deendayal *

Mukesh Kumar Pathak**

Dr. Satyanand***

Cerebral palsy may be assumed as a bunch of life persisting disorders of the growth of locomotor ability and body posture, causing movement restrictions which are associated to non-progressive deteriorating changes that are found in the growing fetus in womb or newborn brain.¹ Cerebral palsy is mainly a neuromotor disorder that adversely hampers the development of moving ability, muscle tone and posture. The patho-physiology behind the onset of cerebral palsy is an injury to the developing brain in the prenatal through neonatal period at the birth time. Although the initial neuro-pathologic lesion is non-progressive, children with cerebral palsy may develop a range of secondary conditions over time that may significantly affect their functional abilities. In our country India, about fifteen to twenty percent of physically differently abled children are suffering by cerebral palsy with the found occurrence rate about three cases in one thousand live child births².

Children affected by cerebral palsy tend to show a slow growth rate to attain growth milestones of development like self-determined rolling over movement, creeping on four limbs, sitting, and barefoot walking. These milestones are required to be assessed in gross to ascertain that whether a child is having cerebral palsy or any other neuro-motor condition. The chief symptom that shows and confirms an impending cerebral palsy

* Assistant Professor, Department of Veda, Gurukul Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

** Research Scholar, Department of Veda, Gurukul Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

*** Assistant Professor, Department of Yoga, Gurukul Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

1. <https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/32606703/>

2. BMJ 2017;356:J462 (<https://doi.org/10.1136/bmj.j462>)

case is a substantial late in achieving locomotor or movement milestones such as voluntary movement of rolling, walking on limbs, stable sitting and independent standing.¹

Other main Symptoms associated with cerebral palsy may include inadequate muscle tone strength, muscle tightness, unsynchronized sudden movements, and problems with balance, posture, coordination, walking, eating, speech, mental retardation, breathing problems, seizures, learning disabilities, bowel and bladder control problems, bone development deformities, dental problems, swallowing difficulties in throat, digestive difficulties and hearing problems. The severity of these problems may range from mild to very profound with the individuals.

Cerebral palsy has many of its kinds and derivatives. We come across different types of cerebral palsy cases. These are mainly categorized into five types. Medically, five main categories of cerebral palsy are noticed which are ataxic cerebral palsy, spastic type, athetoid type, hypotonic and mixed type which has the combined features of all.²

Spastic cerebral palsy is the most common type and is accountable for seventy seven percent of all the cases which makes it the most prominent cerebral palsy.

India is a vast country in terms of both the geography and the population. The enormous size of its population accounts for presence of very large number of cerebral palsy affected children in contrast to European countries who have less population. There were about twenty five lakhs CP children in India as per the statistical data available in 2013.³

In India, Majority of cerebral palsy children are not able to get the necessary treatment due to the lack of good health infrastructure which often changes the primary disability of cerebral palsy into the cases of multiple disability with their advancing age. The major healthcare facilities are often located in urban and semi urban areas which makes their access very difficult to reach for the cerebral palsy children living in villages. The scarcity of trained medical manpower is also a major issue which complicates the existing problems manifold. As per the 2011 data, India has roughly 20 health workers per 10,000 population.⁴

1. <https://www.cdc.gov/ncbddd/cp/facts.html>

2. <https://www.cerebralpalsyguide.com/cerebral-palsy/types>

3. <https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/24049406/>

4. Challenges to healthcare in India-The five A's, Indian J Community Med.2018 Jul-Sep;43(3):141-143

Yoga has emerged as a new science of hope and an alternative way of treatment for cerebral palsy children in India. Yoga is a very good and efficient mean to strengthen muscles in gentle and effective way which may be customized for our required body activity levels and our physical strength. It warms up the internal body environment and elevates the flexion ability which helps the CP children in increasing flexibility, motion range in joints and overall mobility.¹

Yoga is essentially a spiritual discipline based on an extremely subtle science, which focusses on bringing harmony between mind and body². It is a thousand years old strong practice that incorporates and connects the realms of mind, body and perpetual soul. It was practiced and followed by the society generations after generations but modern yoga therapists, enthusiasts, learners and gurus have made the practice of yoga extremely desired and popular by propagating Yoga using technology and social promotion. By their adamant efforts, the Yogic science is transcending the boundaries of ancient gurukuls and reaching into the lives of common public. A lot of people belonging to roughly all age groups are gaining benefits by following yogic practices of *Āsanās* and *Prāṇāyāma*. These practices lower the mental anxiety, make the body more flexible, elevates body power, balances hormonal secretions while providing numerous other benefits. The practice of Yoga is not confined only up to the normal people but the differently abled and especially the cerebral palsy affected persons are also capable to reap all its benefits.

Modern Yoga experts are efficiently using the yogic exercise to improve the lives of those persons either children or adults which are suffering with cerebral palsy.

Yoga, being a proven science testified during many centuries of past, it is being customized, individualized and modified in many patterns that are suitable and effective for a variety of end users. It simply means that the practice of yoga can be done by every individual in their own customized suitable way. The yogic practices which are framed, customized and individualized for a person suffering with cerebral palsy improve his ambulation, concentration, cognition, confidence and body control resulting in overall improvement.

-
1. Yoga for Cerebral Palsy, Sarah Schulze, <https://www.cerebralpalsy-guidance.com/cerebral-palsy/treatment/yoga>
 2. Yoga: Its origin, History and development, Dr. Ishwar V. Basavaraddi, 2015.

There should be a point of concentrated concern on the fact that we have very less research materials on cerebral palsy either clinically or academically. While looking the fact in context of Yoga, we see promising possibilities that using Yoga *Āsanas* which are customized and modified as per the practicing person may provide a affirmative and healing effect on the life of the person suffering with cerebral palsy.

There is a greater need to assess the effect of yoga on the people with cerebral palsy to develop a yogic protocol which can be utilized all over the world by the experts and care givers working for the welfare and rehabilitation of cerebral palsy children and adults. After watching the effects of Yoga in general on the quality of life, there is a common and established notion that Yoga should be integrated in the protocols related with the rehabilitation of cerebral palsy. Yogic breathing exercises and meditation can play a pivotal role in improving the life of cerebral palsy children while simultaneously using the individualized *Āsanas*.

Āsanas are definite specified body poses that are willingly acquired for certain timespan with the purpose to increase the strength of body and mind. By practicing *Āsanas*, chronic pain is relieved, respiratory control improves and level of anxiety and depression lowers down.¹ This makes the *Āsanas* extremely beneficial for cerebral palsy affected persons who often struggle with the problems related with respiration, body pain, anxiety and depression. While these are the main benefits of the *Āsanas*, in modern practice, the physical rehabilitation experts are using the yogic techniques to get some others physical and mental benefits like to increase basal metabolic rate while also helping with reduction of body weight. Most cerebral palsy affected persons practice *Hāṭhayoga*, as a series of customized adapted postures which are practiced voluntarily along with the deep breathing. They can do it with the help of an expert, family member or caregiver, if there is a need of guidance.

The Practice of *Āsanas* is essentially integrated with the mindfulness to reap the optimum benefits. Mindfulness in simple terms means meditation in which we focus on being intensely aware of the reality by being present in the moment. Practicing mindfulness involves breathing methods, guided imagery and other practices to relax the body and mind and help reducing stress.² Thought consciousness practiced during yoga

1. <https://yogainternational.com/article/view/yoga-Asanas>

2. <https://www.mayoclinic.org/healthy-lifestyle/consumer-health/in-depth/mindfulness>

and *Prāṇāyāma* help people to perform the daily tasks in the most efficient and optimized way. They became more attentive and active towards their daily habits of eating, interacting and thinking resulting in building a positive mind set. Some more noteworthy advantages of yoga for Cerebral Palsy affected persons are improved cardiovascular health, mental clarity, and lower blood pressure.

Yoga in the form of a therapeutic application is presently a strongly established and effective result-oriented therapy to empower persons with cerebral palsy, to increase their muscle tone, enhance the sitting and standing balance, joints mobilization and attaining a proper hand eye coordination. By practicing *Āsanas*, there is a soothing effect on symptoms. Yogic therapists often modify the *Āsanas* based on person's requirements and present indications as per body deformities, to ensure that the individual may get full benefits. For example, a child with cerebral palsy may face issues with poor muscle tone. In that case, Yoga is a harmless and efficient way to make the body muscles strong and flexible which is suitable for all activity level persons.

An excellent benefit of yoga for cerebral palsy is that it makes the body more elastic and flexible. For a person suffering with cerebral palsy, this is of great importance since it improves biomechanical range of motion in joints, thereby improving overall mobility.

In case of spine stiffness found in CP patients, yoga may relieve the undue pressure on spinal discs, improves spinal flexibility and establishes the normal spinal curvature again. The joint space between spinal vertebrae increases which reduces the pressure on the spinal nerves thus relieving of the back pain which is often seen in cerebral palsy patients. Increasing the flexibility of hip joints in CP persons allows movements with less restriction and minimizes the risk of injuries to the knees, hips, ankles and lower back.¹ *Ardhapaśchimotānāsanam*, *Paśchimotānāsanam*, *Gómukhāsanam* and *Trikónāsanam* are the very useful *Āsanas* in the context.

While using Yogic Practices for cerebral palsy persons, it is essential to keep in the mind that a person who is suffering from cerebral palsy should practice only the customized form of yoga which is based on his physical conditions and limitations. They are not able to perform those

1. Chinnasamy R, IJIFR, Vol-2, Issue-5, Jan 2015, 17th Edition, Page No:1297-1309

Āsanas which require high degree of precision and complex body postures so choosing a right set of *Āsanas* is important to get the full benefits. This conveniently mean that someone with cerebral palsy can definitely benefit from the postures, only when these are individualized and adapted as per the person symptoms. For example, the customized yoga, which is practiced by the wheelchair bound cerebral palsy patients is famously called as chair yoga. It clearly shows that even the wheelchair restricted cerebral palsy persons of all age groups can avail the benefits of yoga to make their lives better. The *Āsanas* are structured and modified in such a way that these can be practiced easily while sitting in a wheelchair. Even the wheelchair of CP persons are modified to assist in the purpose. This chair yoga is a good workout for the persons with cerebral palsy.¹

The CP Patients who are struggling with balance can also practice *Āsanas* while sitting. In modern times, there are a variety of blocks, straps and other ADL assistance devices which can be utilized which help the body to keep in balance. For the severely affected CP Patients, there should be the assistance of a trained yoga expert or coach who has experience working with disabled persons.

The overall summarized physical effect of yoga for the cerebral palsy affected persons are feeling of reduced muscular tension and enhanced mental relaxation throughout the entire body thus attaining a harmonious and balanced state of body and mind. Yogic *Āsanas* and integrated mindfulness practiced by cerebral palsy persons lead to mind relaxation, less stress, better dignified body image, and an overall better sense of mental and physical well-being. In this way, Yoga is a great practice to empower and strengthen the cerebral palsy affected persons to integrate them into the mainstream of society.



1. <https://www.beckerjustice.com/blog/2016/december/adaptive-yoga-for-kids-with-cerebral-palsy>

Relevance of Yoga in Management of Psychological Aspects of Skin Disorders

Sampada Vijayvargiya¹

and

Rakesh Kumar²

Abstract

Yoga is an ancient science that imparts knowledge about way of living, physical health, mental stability and connectedness to spiritual self. Yoga has recently gained popularity because of its ability to induce state of relaxation and stress reduction. Skin conditions of various kinds occur commonly now-a-days. More commonly occurring skin conditions that are seen today are acne, psoriasis and eczema among others. While the management and treatment of skin disorders is primarily done through oral or topical medications, it has become evident that holistic healing of these conditions have far reaching results as compared to just medications. Dermatology and psychology amalgamate into psychodermatology, a relatively new and emerging field to work towards holistic management of skin conditions. As it is well established that stress is one of the leading causes of skin conditions, it becomes important to manage stress levels when one looks towards managing skin conditions. It becomes relevant to review the practices of yoga that help in alleviating and managing skin conditions of different kinds. This review paper firstly intends to establish how yoga and its practices are effective in alleviating stress and improving quality of life. Next, it throws light upon the linkages between stress and various skin conditions. Lastly, holistic management of skin conditions is discussed keeping in mind both psychological and physical aspects of the disease.

Keywords: Yoga, Stress, Dermatology, Acne, Psoriasis, Holistic Healing.

-
1. Research Scholar
 2. Professor, Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar, Uttarakhand

Introduction

Yoga is a system that has its roots in ancient Indian practices. It can be defined as a way of living, with various components such as physical, mental or spiritual, catering to different modalities. Theoretical and in-depth knowledge of yoga as a school of philosophy may not be known to many people but its incorporation into the way of living has become quite common (Clarke et al., 2015). Yoga can be practiced by each and every individual within the comfort of their physical and mental health. It can be practiced in all age groups and has something to offer to everyone. The recently gained popularity of yoga in both practice and research (Jeter et al., 2015) puts confidence on the utility of yoga. Yoga therapy has been increasingly getting integrated into the treatment of various disorders such as cancer (Greenly et al., 2014), cardiac problems (Lau C et al., 2015), stress related disorders, irritable bowel syndrome (Shah et al., 2019), and many other bio-psycho-social disorders. This is because of the benefit it has to offer with respect to psychological symptoms such as depression, fatigue, social isolation, body image disturbance, anxiety and physiological symptoms such as body mass index, muscle flexibility, blood circulation, glucose levels and lipid profile among others (Raghuram et al., 2014).

Skin disorders occur commonly in all age groups. Certain studies have highlighted that skin disorders often lead to psychological problems such as depression, anxiety, suicidal ideation, poor self-esteem, diminished quality of life (Dixon et al., 2019; Follador et al., 2006; Porter et al., 1979). Existence of these problems may in turn exacerbate the existing symptoms. Usual treatment line for disorder in dermatology include an in-depth analysis of presenting problem, and topical and oral treatment for the same. Often dermatologists overlook the psychological aspects of the skin disorder and do not make it a part of their consultation.

The paper intends to review practices of yoga and its impact on stress management. The paper also intends to highlight certain psychological symptoms associated with various skin disorders and the importance of management of these symptoms along with regular treatment by using yoga as an ancillary therapy.

Methodology

For finding the effectiveness of yoga as therapy in management of psychological aspects of skin disorders with respect to scope of the paper, following steps were used.

Previous researches and relevant papers were thoroughly investigated using databases such as Pubmed, Google Scholar and Science Direct. Keywords such as *yoga*, *stress management*, *skin disorders*, *acne*, *vitiligo*, *psoriasis*, *psychocutaneous* and *psychodermatology* were used on these data bases. After the preliminary search following inclusion and exclusion criteria were used to narrow down the search further.

Inclusion criteria:

- Papers from past five years were considered.
- Papers in English language were chosen.
- Papers listed in Scopus were considered.
- Studies that had randomised control trial or clinical trial were considered.
- Studies with adult population were included.
- Papers defining relationship between yoga and stress management as well as skin disorders and stress were considered.

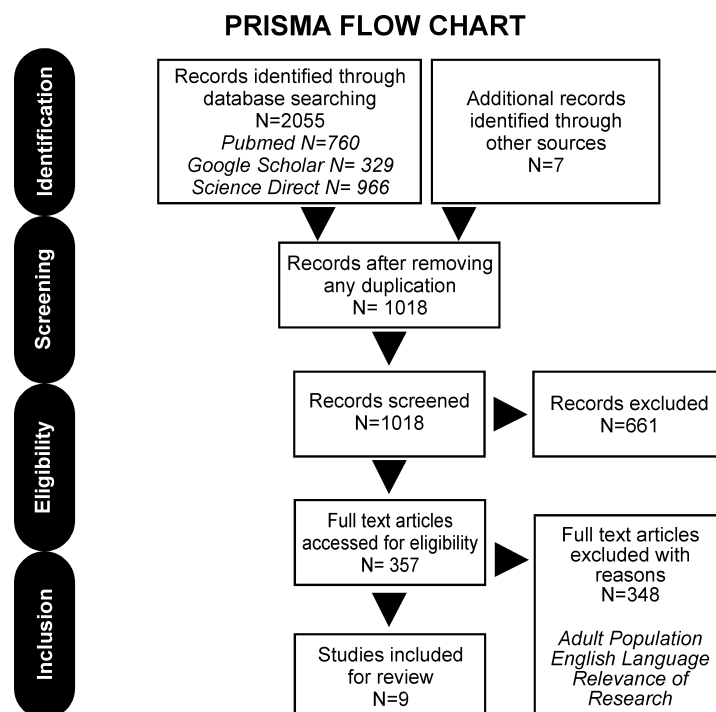
Exclusion Criteria:

- Papers in which the sample had psychiatric disorders were not considered.
- Papers highlighting biological aspect of skin disorders were excluded.
- Papers highlighting spiritual inclination were excluded.

Following is a Prisma Flow Chart to highlight the inclusion and exclusion of the number of records to be included in the current paper. The initial search based on keywords included 2062 records, out of which 9 were selected based on the above mentioned criteria.

The Yoga System

The Sanskrit word "yoga" means "union" and it signifies the art of uniting various aspects of self, such as physical, mental, spiritual, emotional, into one (Basavaraddi, 2015). Yoga has been one of the six philosophical systems in India and it is a science that provides knowledge about the way of living.



Patañjali yoga has defined eight limbs of the yoga system. The first two focus on being virtuous and high on moral standards. *Yama* also known as ‘restraint’ consists of five virtues (nonviolence, truth, not stealing, self restraint and no greed) and *Niyama* also called ‘observances’ consists of purity, contentment, discipline, study of scripture and devotion. The third limb focuses on the physical aspects of self and it is *āsanas*, which includes various postures such as standing, balancing, sitting, bending, twisting and inverting. These postures aim to promote blood circulation, improve lymphatic circulation, massage the internal organs and enhance mood. This also helps one to understand their bodies better and to take care of themselves. The fourth limb is *prāṇāyāma*, or controlled breathing which includes simple breathing techniques to induce deep state of relaxation, enhance concentration, and boost immunity system by increasing oxygen supply in blood. The fifth limb is *Pratyahāra* or sensory withdrawal, and is a technique that focuses on consciously ignoring any sensory information and get into a meditative state (Mackenzie, 2006). The following limbs focus on deeper meditative states and are as follows: *Dhyāna*, *Dhāraṇā* and *Samādhi*, also called as focused concentration, meditative absorption and blissful enlightenment respectively (Shenoi et al., 2018).

Yoga and Stress Management

The practice of yoga helps in decreasing the stress levels by reducing the activation of sympathetic response system and enhancing parasympathetic activity (Streeter et al., 2012). In their study Streeter and his colleagues also mentioned that the GABA activity that reduces due to stress related disorders can be rectified by using yoga in the right manner. It can also alleviate the disease completely. Thus it becomes important that yoga based practices should be incorporated as a part of treatment for disorders that get exacerbated by stress.

A mixed methods investigation was conducted by Mullen and his colleagues where they sort to find out the effects of curriculum based yoga along with other training programs to address psychological problems of students. Yoga based interventions were chosen as they have been shown to contribute towards enhancement of mood (Streeter et al., 2010) and have positive effect on anxiety and depression (Kirkwood et al., 2005). The yoga intervention in the study primarily consisted of *Hatha* yoga, which included *āsanas*, *prānāyama* and meditation. *Hatha* yoga has been seen to be extremely effective in tackling physiological stress related conditions and negative emotions (Pascoe & Bauer, 2015). The study was done on a total of 189 students where yoga workshops were given along with other training methods to one of the two groups. There were a total of eight workshops with the aim to have fuller body mind engagement. The pre and post follow up data revealed that there was a significant improvement in psychological flexibility in the students who participated in yoga workshops. The students reportedly benefitted from the movement and mindfulness element of yoga. There were no negative feedback towards this program (Mullen et al., 2021). The study becomes pivotal as it discusses the importance of yoga in improving behavioural health difficulties and mental health difficulties in young adults.

Yoga not only decreases the stress levels in individuals but also builds resilience (Khalsa et al., 2012) and also helps in reduction of challenges faced due to social isolation. A group of Indians who went on a two year expedition in Antarctica were divided into two groups and one of them was given yoga intervention, that comprised of *vyāyāma*, *āsanas*, *prānāyāma* and meditation on a daily basis, for a period of ten months. The group significantly improved on resilience scale, the blood markers indicative of stress also decreased significantly. This indicated that yoga can be used even in extreme climate conditions for the mental peace and

wellbeing of individuals. It is also indicated that yoga can successfully be used to combat social isolation challenges that individuals or groups might face (Nirwan et al., 2021). The positive impact of yoga on social isolation is helpful as it may be suggestive of the fact that it can be used as an adjunctive therapy in various disorders that have social isolation as one of the key causal factor or an outcome.

In a study conducted by Koch and her colleagues in 2019, they examined the effect of *Hatha yoga* on co-morbid symptoms of ulcerative colitis. A group of patients were given a ninety minute yoga session once a week for three months. The results demonstrated that yoga led to an improvement in quality of life, and disease activity also decreased which could be due to reduction of stress. Two mechanisms identified by the researchers included the physiological mechanism and minimisation of autonomic responses. The physical activity seems to reduce the inflammation response in body. Also the relaxed states promote the parasympathetic activity and thus reducing stress burden (Koch et al., 2019). The study emphasises that yoga can alleviate certain psychological symptoms occurring alongside ulcerative colitis. Similarly it can be conjectured that psychological symptoms associated with other psychosocial disorders can also be tackled through yoga practices. As exacerbated stress levels and impaired quality of life are common in most psychosocial disorders, yoga can prove to be promising as part of treatment.

Yoga has been used as a way to deal with stress in healthy individuals as well as individuals suffering from some disease. It has been widely used as a form of therapy for many co-morbid conditions and symptoms such as breathing difficulties (Cramer et al., 2012), pain tolerance (Bussing et al., 2012) rigidity, gut related problems, sleep disturbances and many more. Yoga on the parallel also helps with these symptoms in otherwise healthy individuals (Michalsen et al., 2012). This is because yoga not only works towards eradicating an existing symptom but regular practice of yoga promotes better wellbeing, improved quality of life, and better immunity to fight disorders in future. Benefits of yoga as a way to reduce stress can be observed in individuals with illness or without illness (Chong et al., 2011).

Psychology and Dermatology

There are a number of skin conditions, some common and some uncommon, for which people seek medical treatment. Skin problems are

most often visible to the naked eye. Common skin problems include acne, psoriasis, eczema, pigmentation, alopecia, warts, vitiligo among others. Studying the impact of skin disorder becomes important in the light of psychology because, it is generally visible to oneself and others at all times, it causes physical irritation and general sensitivity and it cannot be ignored very easily due to the discomfort it causes.

The societal norms and culture put immense emphasis on the appearance of a person. Therefore any condition that is perceived as a defect and is visible to others is looked down upon, both by the individual suffering from it and people around that individual. Such condition may be seen as a loss of opportunities to move forward in personal and professional life and privileges in society (Grimes, 2008). The fact that skin disorders are so visible, it results in compromised self esteem and the feeling of being ugly or even undesirable. This feeling is described in a range of disorders such as acne or alopecia or even vitiligo (Grimes & Miller, 2018). Quality of life in individuals with skin disorder is seen to be significantly associated with the affected body surface area (Silverberg & Silverberg, 2013).

A commonly occurring disorder across ages and races is vitiligo. This is characterised by different colour tones of patches on the skin. This becomes pertinent to study from a psychological angle as it not only brings forward the question of desirable looks like most other skin disorders but also the preference of a specific colour tone over the other. Generally speaking, lighter skin tone is preferred over darker skin tone. Personal, cultural and ethnic factors play a role in how an individual copes up with vitiligo. There is greater proportion of female patients who reported sexual dysfunction as compared to male patients (Borimnejad et al., 2006). People in India face stigmatisation and have difficulties finding a suitable partner given the prevalence of arranged marriage setup and even after marriage the chances of divorce for such people are higher (Elbuluk & Ezzedine, 2017). Children with vitiligo have lower self-esteem and the most self conscious group is that of teenagers (Silverberg & Silverberg, 2013). The disorder also impacts the wellbeing of immediate family members as well. Mothers of children with vitiligo get impacted more as compared to the fathers (Amer et al., 2015).

Another commonly occurring skin disorder is acne vulgaris. This is characterised by small bumps on the skin, often face, neck, back and hands. They are commonly associated with puberty. It is commonly

perceived as occurring due to poor lifestyle, dietary habits, sexual habits and stress (Yosipovitch et al., 2007). In a study conducted by Foteni and his colleagues they gave Pythagorean Self Awareness Intervention which is a cognitive based stress management intervention, to individuals suffering from acne vulgaris. This has already been used as an ancillary treatment for many disorders and has been found to be beneficial (Tsoli et al., 2018). Thirty outpatients were given the treatment for eight continuous weeks. The results revealed that following the program there was a significant reduction in perceived stress and negative emotions. Therefore it becomes essential to point out that along with medicinal treatment of acne, psychological or non-pharmaceutical treatment can be paired to ameliorate stress and associated factors (Chatzikonstantinou et al., 2019).

Psychodermatology and Yoga

The term psychodermatology combines two varied disciplines, namely psychology and dermatology. It refers to a holistic approach towards skin disorders involving both mind and body. The complex field involves the study of skin disorders and their causal and consequential relation with psychological factors. The field is growing in Europe and US and is relatively new in India (Shenoi et al., 2018). The field promises a bio-psycho-social approach towards effective evaluation and treatment of skin disorders (Ghosh et al., 2012). Prevalence of psychosomatic comorbidity in skin disorders is common, especially in disorders like acne, alopecia, vitiligo and psoriasis (Gupta & Gupta, 1998). The prevalence is also higher than the co-morbidities found in cardiac, oncology or neurology related problems (Harth et al., 2009).

In India, holistic treatment of disorders is common. Some traditional therapies used for treatment of various disorders are often described under the acronym AYUSH, which includes *Āyurveda*, Yoga, *Yunānī*, *Siddha* and Homeopathy (Shenoi et al., 2018). The Indian system of medicine typically focuses on eradicating the problem from its roots rather than superficial management of symptoms. This requires comprehensive case history records, evaluation of temperament, personality, physical activity and various other aspects before diagnosing and starting the treatment. This procedure is followed for almost all the kinds of disorders. This is the case with skin disorders as well.

Āyurveda and Homeopathy are well established therapies for various skin disorders. Both these systems involve a detailed analysis of the

individual and their condition, and then provide natural medications, both for topical application and consumption. A major part of their treatment involves correction in the dietary habits of the individual. There have been limited evidence of the success of these therapies, but it is gaining momentum and will be a part of mainstream therapies for skin disorders in the time to come.

Yoga, especially *Haṭha* yoga has been evidently successful in managing the co-morbid symptoms of skin disorders (Pascoe & Bauer, 2015). It has also been effective in reducing the visible symptoms to a great extent such as in psoriasis and acne, where the disease gets worse due to inflammation (Chatzikonstantinou et al., 2018).

Chronic and acute skin disorders can be seen to benefit from various practices of yoga such as controlled breathing (*prāṇāyāma*) specifically *kapālabhāti* and *bhrāmri*, postures and movement (*āsanas*) and meditation (*dhyāna*) (Saha et al., 2014). The practices of yoga can benefit in skin conditions by stimulating parasympathetic nervous system, reducing stress levels, lowering inflammation, correcting digestive problems and improving immunity response of the body (Singh et al., 2015).

Discussion

Appearance plays a major role in personal, social and occupational aspects of an individual's life. Certain physical features such as being tall, being of a certain weight, having a certain colour and many more determine the attractiveness of an individual.

Skin being the largest visible organ has set ideals of its own. Fair and flawless skin is generally considered to be ideal. On the other side, dark skin, or skin with some sort of marks is looked down upon. Generally skin disorders visibly leave a scar on parts of skin, and make it look unattractive. Skin disorders also get associated with a number of preconceived notions such as poor diet, lack of hygiene, faulty genetics among others.

As it is seen in many studies, dermatological problems often lead to low self esteem, poor confidence level, reduced quality of life, increased stress, disturbed socio-occupational functioning, and in many cases anxiety, depression and even suicidal ideation (Protoka et al., 2008). These issues are often ignored by dermatologists and their primary focus is on the eradication of visible symptoms of the disorder. However it is important

that dermatologists clearly communicate with patients, the realistic picture of the disease, duration and outcome of the treatment. The intervention plan should take into consideration all of these aspects (Linder et al., 2009).

Upto 30 percent of total dermatology patients suffer from one or the other psychological problem (Ferreira et al., 2021). A solution to this is psychodermatology liaison clinics. Such clinics comprise of a dermatologist, a psychologist and a psychiatrist. This ensures examination of both physical and mental state of the patient. In India the first of such clinics opened in Manipal (Shenoi et al., 2018). However there is a need for more such super speciality clinics. There also needs to be sensitivity and empathy from the side of dermatologists to refer the patient for a psychological follow-up (Osman et al., 2011).

Psychological stressors are common in many bio-psycho-social disorders. Effective stress management techniques must be integrated with traditional therapies in order to work upon psychological aspects of the disorder. Certain emotional difficulties and stressors have been directly linked with itching, psoriasis and chronic dermatoses (Iyer et al., 1988). If one works towards holistic management of these symptoms and address these issues while treatment, patients can break the vicious cycle.

Yoga, as discussed works on multiple levels with an individual. Yoga makes the mind body connection strong, and connects the individual to universe. Yoga has proven to improve certain biological functions (Streeter et al., 2012). It works on balancing the hormones, improving gut health, lowering stress hormones such as cortisol and increasing the efficiency of internal and external organs. There are some asanas and pranayama that haven proven to improve the quality of skin, and get rid of a number of skin problems. This knowledge needs to be widely known.

Yoga has similarities with various other mindfulness based and relaxation techniques. *The dhyān mudrā* and *samādhi* imitate the effect of deep relaxation technique, mindfulness based stress reduction therapy and progressive muscle relaxation technique. This works on the mental level of an individual. When working through various therapies of yoga one can significantly reduce stress and improve their overall psychological wellbeing. Yoga helps in reducing emotional stress, improving quality of living and lowering the stress levels (Pascoe & Bauer, 2015). In fact stress reduction has been one of the primary reasons to take up yoga training in first place (Bower et al., 2005).

Yoga also works at a spiritual level. It helps one feel connected to the higher power. This is similar to the concept of self actualisation as given by Abraham Maslow (Morgan et al., 1975). When a person strives towards a meaningful life, they tend to rise above the feelings of inferiority and insecurity. This can be particularly be helpful with respect to skin disorders, because often people worry too much about what others might think of them. Once they move past these social hurdles, they can actually focus on achieving more meaningful goals (Kamath et al., 2011).

When talking about an overall healthy mind and body, one cannot ignore the family members of the people who suffer from skin disorder. It is quite common for families to feel burdened and burnt out in chronic cases. This is true in cases of children suffering from visible skin problems and their family members especially mothers also have impaired quality of life. Yoga can be incorporated not only for the patients but their families and primary care givers as well.

Yoga can be practised as therapy for specific disorders and can be used as a way of life. This means that it can be used by professionals for therapeutic use, for people to generally enhance their sense of wellbeing. This is important in the light of the definition given by World Health Organisation "Health is a state of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease or infirmity". When one focuses on their health, it is not just to stay away from diseases, but to take care of their bodies and mind in its entirety.

Conclusion

Yoga has multiple benefits and has been widely used across age groups, ethnic races, genders, diseases. Skin disorders being so common, should have yoga as one of the ancillary therapy and should be integrated into main stream treatment. It is bound to give promising results in the alleviation of parallel psychological symptoms and can greatly reduce the manifestation of disorders overall.

References

- Amer, A., Mchepange, U., Gao, X., Hong, Y., Qi, R., Wu, Y., Cai, Y., Zhai, J., & Chen, H. (2015). Hidden Victims of Childhood Vitiligo: Impact on Parents' Mental Health and Quality of Life. *Acta Dermato Venereologica*, 95(3), 322-325. <https://doi.org/10.2340/00015555-1940>

- Basavaraddi, I.V. (2015, April 23). *Yoga: Its origin, history and development*. Public Diplomacy. <https://www.mea.gov.in/in-focus-article.htm?25096/Yoga+Its+Origin+History+and+Development>
- Borimnejad, L., Parsa Yekta, Z., Nikbakht-Nasrabadi, A., & Firooz, A. (2006). Quality of life with vitiligo: comparison of male and female muslim patients in Iran. *Gender medicine*, 3(2), 124-130. [https://doi.org/10.1016/s1550-8579\(06\)80201-9](https://doi.org/10.1016/s1550-8579(06)80201-9)
- Bower, J.E., Woolery, A., Sternlieb, B., & Garet, D. (2005). Yoga for cancer patients and survivors. *Cancer control : journal of the Moffitt Cancer Center*, 12(3), 165-171. <https://doi.org/10.1177/107327480501200304>
- Bössing, A., Ostermann, T., Lödtke, R., & Michalsen, A. (2012). Effects of yoga interventions on pain and pain-associated disability: a meta-analysis. *The journal of pain*, 13(1), 1-9. <https://doi.org/10.1016/j.jpain.2011.10.001>
- Chatzikonstantinou, F., Miskedaki, A., Antoniou, C., Chatzikonstantinou, M., Chrousos, G., & Darviri, C. (2019). A novel cognitive stress management technique for acne vulgaris: a short report of a pilot experimental study. *International journal of dermatology*, 58(2), 218-220. <https://doi.org/10.1111/ijd.14227>
- Chong, C. S., Tsunaka, M., Tsang, H.W., Chan, E. P., & Cheung, W. M. (2011). Effects of yoga on stress management in healthy adults: A systematic review. *Alternative therapies in health and medicine*, 17(1), 32-38.
- Clarke, T.C., Black, L.I., Stussman, B.J., Barnes, P.M., & Nahin, R.L. (2015). Trends in the use of complementary health approaches among adults: United States, 2002-2012. *National health statistics reports*, (79), 1-16.
- Cramer, H., Haller, H., Klose, P., Ward, L., Chung, V.C., & Lauche, R. (2019). The risks and benefits of yoga for patients with chronic obstructive pulmonary disease: a systematic review and meta-analysis. *Clinical rehabilitation*, 33(12), 1847-1862.
- Dixon, L., Witcraft, S., & Perry, M. (2019). How does anxiety affect adults with skin disease? Examining the indirect effect of anxiety symptoms on impairment through anxiety sensitivity. *Cognitive Therapy and Research*, 43(1), 14-23. <https://doi.org.ezproxy1.lib.asu.edu/10.1007/s10608-018-9942-5>

- Elbuluk, N., & Ezzedine, K. (2017). Quality of Life, Burden of Disease, Co-morbidities, and Systemic Effects in Vitiligo Patients. *Dermatologic clinics*, 35(2), 117-128. <https://doi.org/10.1016/j.det.2016.11.002>
- Ferreira, B.R., Jafferany, M., & Misery, L. (2021). Psychodermatology in the Era of COVID-19. *The Journal of clinical and aesthetic dermatology*, 14(3 Suppl 1), S24-S27.
- Follador, I., & Campelo, L. (2006). Impact of acne on quality of life. *Expert Review of Dermatology*, 1(1), 181-184. <https://doi.org/10.1586/17469872.1.1.181>
- Greenlee, H., Balneaves, L.G., Carlson, L.E., Cohen, M., Deng, G., Hershman, D., Mumber, M., Perlmutter, J., Seely, D., Sen, A., Zick, S.M., Tripathy, D., & Society for Integrative Oncology (2014). Clinical practice guidelines on the use of integrative therapies as supportive care in patients treated for breast cancer. *Journal of the National Cancer Institute. Monographs*, 2014 (50), 346-358. <https://doi.org/10.1093/jncimonographs/lgu041>
- Grimes PE. (2017, September). *Vitiligo: Pathogenesis, clinical features, and diagnosis*. https://www.uptodate.com/contents/vitiligo-pathogenesis-clinical-features-and-diagnosis?search=vitiligo-%20pathogenesis-clinical-features-and-diagnosis&source=search_result&selectedTitle=1~102&usage_type=default&display_rank=1
- Grimes, P., & Miller, M. (2018). Vitiligo: Patient stories, self-esteem, and the psychological burden of disease. *International Journal of Women's Dermatology*, 4(1), 32-37. <https://doi.org/10.1016/j.ijwd.2017.11.005>
- Gupta, M.A., & Gupta, A.K. (1998). Depression and suicidal ideation in dermatology patients with acne, alopecia areata, atopic dermatitis and psoriasis. *The British journal of dermatology*, 139(5), 846-850. <https://doi.org/10.1046/j.1365-2133.1998.02511.x>
- Harth, W., Gieler, U., Kusnir, D., & Tausk, F.A. (2008). *Clinical Management in Psychodermatology* (2009th ed.). Springer.
- Iyer, S., Washenik, K., Shupack, J. (1988). Can psychological stress affect psoriasis? Possible mechanisms. *Journal of Clinical Dermatology*. 1, 21-28

- Jeter, P.E., Slutsky, J., Singh, N., & Khalsa, S.B.S. (2015). Yoga as a therapeutic intervention: A bibliometric analysis of published research studies from 1967 to 2013. *Journal of Alternative and Complementary Medicine*, 21(10), 586-592. <http://doi.org/https://doi.org/10.1089/acm.2015.0057>.
- Kamath Burde, J., Honnedeavasthana Shama Rao, A. (2011). Self-actualization from an Eastern Perspective: A Preliminary Exploration. *Psychological Studies*. 56,373-377 (2011). <https://doi.org/10.1007/s12646-011-0097-7>
- Khalsa, S.B., Hickey-Schultz, L., Cohen, D., Steiner, N., & Cope, S. (2012). Evaluation of the mental health benefits of yoga in a secondary school: a preliminary randomized controlled trial. *The journal of behavioral health services & research*, 39(1), 80-90. <https://doi.org/10.1007/s11414-011-9249-8>
- Kirkwood, G., Rampes, H., Tuffrey, V., Richardson, J., & Pilkington, K. (2005). Yoga for anxiety: A systematic review of the research evidence. *British Journal of Sports Medicine*, 39(12), 884-891. <https://doi.org/10.1136/bjism.2005.018069>
- Koch, A. K., Schöls, M., Langhorst, J., Dobos, G., & Cramer, H. (2020). Perceived stress mediates the effect of yoga on quality of life and disease activity in ulcerative colitis. Secondary analysis of a randomized controlled trial. *Journal of Psychosomatic Research*, 130, 109917. <https://doi.org/10.1016/j.jpsychores.2019.109917>
- Lau, C., Yu, R., & Woo, J. (2015). Effects of a 12-Week Hatha Yoga Intervention on Metabolic Risk and Quality of Life in Hong Kong Chinese Adults with and without Metabolic Syndrome. *PloS one*, 10(6), e0130731. <https://doi.org/10.1371/journal.pone.0130731>
- Linder, D., Dall'olio, E., Gisondi, P., Berardesca, E., Gennaro, E. D., Pennella, A. R., Giannetti, A., Peserico, A., & Girolomoni, G. (2009). Perception of disease and doctor-patient relationship experienced by patients with psoriasis: a questionnaire-based study. *American journal of clinical dermatology*, 10(5), 325-330. <https://doi.org/10.2165/11311190-000000000-00000>
- Mackenzie, E. R. (2006). *Complementary and Alternative Medicine for Older Adults: Holistic Approaches to Healthy Aging* (1st ed.). Springer Publishing Company.

- Michalsen, A., Jeitler, M., Brunnhuber, S., Lmdtke, R., Bmssing, A., Musial, F., Dobos, G., & Kessler, C. (2012). Iyengar yoga for distressed women: a 3-armed randomized controlled trial. *Evidence-based complementary and alternative medicine : eCAM*, 2012, 408727. <https://doi.org/10.1155/2012/408727>
- Morgan, C.T., Rosen, J.W., Morgan, C.T., & King, R.A. (1975). *Study guide for Morgan and King Introduction to psychology* (Fifth edition). New York: McGraw-Hill.
- Mullen, R.A., Protti, T., Block-Lerner, J., Marks, D.R., Sandoz, E.K., & Ricardo, P. (2021). Curriculum-based yoga and acceptance and commitment training intervention for undergraduate students: A mixed-methods investigation. *Journal of Contextual Behavioral Science*, 19, 92-99. <https://doi.org/10.1016/j.jcbs.2020.12.005>
- Nirwan, M., Halder, K., Saha, M., Pathak, A., Balakrishnan, R. & Ganju, L. (2021). Improvement in resilience and stress-related blood markers following ten months yoga practice in Antarctica. *Journal of Complementary and Integrative Medicine*, 18(1), 201-207. <https://doi.org/10.1515/jcim-2019-0240>
- Osman, O.T., Mufaddel, A., Almugaddam, F., & Augusterfer, E.F. (2011). The psychiatric aspects of skin disorders. *Expert Review of Dermatology*, 6(2), 195-209. <https://doi.org/10.1586/edm.11.10>
- Pascoe, M.C., & Bauer, I.E. (2015). A systematic review of randomised control trials on the effects of yoga on stress measures and mood. *Journal of Psychiatric Research*, 68, 270-282. <https://doi.org/10.1016/j.jpsychires.2015.07.013>
- Porter, J., Beuf, A.H., Nordlund, J.J., & Lerner, A.B. (1979). Psychological reaction to chronic skin disorders: a study of patients with vitiligo. *General hospital psychiatry*, 1(1), 73-77. [https://doi.org/10.1016/0163-8343\(79\)90081-1](https://doi.org/10.1016/0163-8343(79)90081-1)
- Potocka, A., Turczyn-Jablońska, K., & Kiec-Swierczyńska, M. (2008). Self-image and quality of life of dermatology patients. *International journal of occupational medicine and environmental health*, 21(4), 309-317. <https://doi.org/10.2478/v10001-008-0034-8>
- Raghuram, N., Parachuri, V.R., Swarnagowri, M.V., Babu, S., Chaku, R., Kulkarni, R., Bhuyan, B., Bhargav, H., & Nagendra,

- H.R. (2014). Yoga based cardiac rehabilitation after coronary artery bypass surgery: one-year results on LVEF, lipid profile and psychological states--a randomized controlled study. *Indian heart journal*, 66(5), 490-502. <https://doi.org/10.1016/j.ihj.2014.08.007>
- Saha, M., Halder, K., Tomar, O.S., Pathak, A., Pal, R. (2014). Yoga for Preventive, Curative, and Promotive Health and Performance. In: Singh, S., Prabhakar, N., Pentyala, S. (eds) *Translational Research in Environmental and Occupational Stress*. Springer, New Delhi. https://doi.org/10.1007/978-81-322-1928-6_14
 - Shah, K., Ramos-Garcia, M., Bhavsar, J., & Lehrer, P. (2020). Mind-body treatments of irritable bowel syndrome symptoms: An updated meta-analysis. *Behaviour research and therapy*, 128, 103462. <https://doi.org/10.1016/j.brat.2019.103462>
 - Sharma, P., Ghosh, S., Behere, R.V., & Sreejayan, K. (2013). Psychiatric evaluation in dermatology: an overview. *Indian journal of dermatology*, 58(1), 39-43. <https://doi.org/10.4103/0019-5154.105286>
 - Shenoi, S.D., & Prabhu, S.S. (2018). Psychodermatology: An Indian perspective. *Clinics in dermatology*, 36(6), 737-742. <https://doi.org/10.1016/j.clindermatol.2018.08.013>
 - Silverberg, J.I., & Silverberg, N.B. (2013). Association between vitiligo extent and distribution and quality-of-life impairment. *JAMA dermatology*, 149(2), 159-164. <https://doi.org/10.1001/jamadermatol.2013.927>
 - Singh, S., Tripathi, J.S., Rai, N.P. (1959). Potential application of Yoga therapy in psoriasis. *World Journal of Pharmacy and Pharmaceutical Sciences*, Issue 10, Vol 4.
 - Streeter, C.C., Gerbarg, P.L., Saper, R.B., Ciraulo, D.A., & Brown, R.P. (2012). Effects of yoga on the autonomic nervous system, gamma-aminobutyric-acid, and allostasis in epilepsy, depression, and post-traumatic stress disorder. *Medical hypotheses*, 78(5), 571-579. <https://doi.org/10.1016/j.mehy.2012.01.021>
 - Streeter, C.C., Whitfield, T.H., Owen, L., Rein, T., Karri, S.K., Yakhkind, A., & Jensen, J.E. (2010). Effects of yoga versus walking on mood, anxiety, and brain GABA levels: A randomized

controlled MRS study. *Journal of Alternative & Complementary Medicine*, 16, 1145-1152. <https://doi.org/10.1089/acm.2010.0007>

- Tsoli, S., Vasdekis, S., Tigani, X., Artemiadis, A., Chrousos, G., & Darviri, C. (2018). A novel cognitive behavioral treatment for patients with chronic insomnia: A pilot experimental study. *Complementary therapies in medicine*, 37, 61-63. <https://doi.org/10.1016/j.ctim.2018.01.015>
- Yosipovitch, G., Tang, M., Dawn, A.G., Chen, M., Goh, C.L., Huak, Y., & Seng, L.F. (2007). Study of psychological stress, sebum production and acne vulgaris in adolescents. *Acta dermato-venereologica*, 87(2), 135-139. <https://doi.org/10.2340/00015555-0231>



Relevance of Yoga in overcoming the Grief and Loss due to Death : A Conceptual Study

Priyanka Joshi*,
O.P. Singh**

Abstract

Yoga is an ancient science of living which is being practiced for thousands of years as an effective tool for wellbeing. It is also an enabler for dealing with grief, loss and bereavement. During the grief, most people seek consolation through their near and dear ones, consult a psychologist and try many ways to heal; all these things bring relaxation to some extent, but at the same time Yoga also can become a tool which may help to overcome the grief and loss effectively. During the grief stress accumulate in the body and Yoga helps to release the emotional and physical stiffness caused by grief from different layers of the body. It is also a great tool to provide peace and relaxation during a time when this is deeply missing from the lives. Grief is a universal phenomenon and the process of mourning the death of beloved is a personal and unknown journey for an individual. Daily regime of Yoga practice can enormously help the body and mind by practicing Asana, Pranayama, purification technique, meditation and in particular contemplating over the different perspectives of death & bereavement as provided by ancient Yogis and Sages which are mentioned in classical texts of Yoga. It can not only alleviate the pain arising during the mourning process but also transform one's experience of grief & loss. As Bhagavad-Gita explains the concept of soul as Invisible, inconceivable, unbreakable, and insoluble which neither born nor die and thus provides a greater insight into the impermanence of the life and continuity of the essence of our being, called 'Atman'.

* PhD research Scholar Yoga,

** Professor and Research Supervisor

Dept. of Kayachikitsa, Faculty of Ayurveda, Institute of Medical Science
Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India

Keywords: Grief, Loss, bereavement, Yogic Practice, Yoga philosophy, Death, Meditation, Soul.

Introduction

The Grief is a sad emotions of the human experience, and most of the times, it is also a devastating one for many people, whether it originates from the loss of a beloved or due to separation of any relationship.¹ People might feel numb and shocked and try to isolate from the outer world, unable to perform their regular duties. Grief is the natural response of losing something which is most lovable and precious. It is universal as well as individual experience. Individual experiences of grief vary person to person and are influenced by the nature of loss sometimes huge loss cannot be cope up easily, one feels broken and unoccupied. Some examples of loss include the death of a beloved, the ending of precious relationship, loss of the job, loss through theft, loss of independence through incapacity etc. Grief is the process or journey that affects everyone differently.

It can be emotionally draining, simple things such as leaving the house talking with others, making hard to execute. Some people cope up by becoming more energetic and becoming inactive. Grief has no set pattern.² It is expressed differently by the different people, different cultures and way of living. Some people like to be expressive and open with their emotions while others like to keep their grief buried inside their heart. Yoga philosophy says attachment is the cause of suffering. If persons have strong desire to free from all the suffering, will have to follow the path of yoga.

From the psychological perspective, there is a key to understand the functioning of the grief in the people, especially after an unexpected death of a dear one. Psychologist J. William Worden gave an outline which consists of four tasks for the healing which addresses the concern of grief.

- First task is to admit the reality of the loss i.e., an individual has to be awake that the person has died and never come again. Sometimes there may be a false impression of the dead body visualized in the family festival or in the waking and dreaming state; finally death has to be accepted by hook or crook because reality is reality.

-
1. Helbert, K. (2016). *Yoga for grief and loss*. London, UK: Singing Dragon.
 2. Sausys, A. (2014). *Yoga for grief relief: Simple practice for transforming your grieving mind body*. Oakland, CA: New Harbinger Publication, Inc.

- Second task is to understand the process of pain of grief i.e., Grief is something which can be experienced from every dimension whether it is emotionally, cognitively or physically. Perhaps, different persons continuously narrating to get over it, move on, and be strong during the activities of daily regimen.
- Third task is to adjust the surrounding without the removal of departed energy. external adjustments include taking on responsibilities and learning new skills. Internal adjustments are made as you adopt a new identity.
- To find an enduring connection with the deceased and welcome to the new life gradually one is able to create a harmony between the life and the one who have died, try to make all the memory as a strength for the upcoming life. Do not let yourself depressed and weak.

Effects of Grief

The effects of grief can often resemble the depression and some people go on to develop the depression. Following a significant loss such as immediately after the death, persons left behind often feel upset, numb and in denial, particularly if the death was unexpected. Grief affects the physical, mental, spiritual, and emotional aspects of humanity.¹ In the physical aspects, there are many symptoms of grieving including digestive problem, fatigue, headache, sore muscles, chest pain and cardiac problem. In the mental aspects, grieving individual is typically on emotional rollercoaster but sometimes persistent and prolonged period of grief can develop into mental disorders. In the emotional aspects, due to mental disturbance people might act differently than normal. One might have facing difficulty in concentration, can take out themselves and do not enjoy their usual doings. Sometimes one might indulge in bad activity like drinking, smoking and isolate oneself from the society.

Symptoms of Grief

Although no two individuals grieve in the same way yet there is some consistency in the emotional, physical and mental symptoms

1. Sausys, A. (2014). *Yoga for grief relief: Simple practice for transforming your grieving mind body*. Oakland, CA: New Harbinger Publication, Inc.

associated with the grieving process.¹ Some of the commonly acknowledged feelings that during the grieving process are :

1. Shock, numbness
2. Sadness
3. Emptiness
4. Feeling helpless
5. Felling out of control
6. Anger
7. Guilt, regret
8. Restlessness
9. Depression
10. Loneliness, longing, yearning
11. Fear, anxiety, insecurity
12. Feeling of betrayal, disloyalty
13. Diminished self-concern
14. Sorrow for the one who died.
15. Desire to join the deceased
16. Suicidal feelings

Some common symptoms of grief include

1. Prolonged sadness on the daily basis.
2. Neglecting everyday jobs because of depression.
3. No enthusiasm to interact with people.
4. Detachment from friends and family;
5. Difficulty accepting the loss after long duration has passed.
6. Intense emotions such as anger and pain towards the loss.
7. Feeling worthless & broken

Yoga Techniques to cope up with the Grief

Yoga philosophy can be supportive tool to cope up with the grief in all the aspects such as Physical, Mental and Emotional. There can be

-
1. Philbin, K. (2009). *Transpersonal integrative Yoga therapy: A protocol for grief and bereavement*. International Journal of Yoga Therapy.

many ways to overcome with grief & loss. Among them, Yoga is the best way to cope up with it. The practice of Yoga supports self-care, incorporation of the loss¹, and feeling a prolongation of departed energy. Yoga therapy clears the mind to find connection with the lost loved one. It helps to emphasis on the essential connection with the lost loved one. Yoga becomes a tool to manage one's grief; instead of avoiding the pain, to sit with it, observe and learn that it is not as frightening as we thought. Healing happens through a long period as it depends upon person to person. Experiencing grief or loss is personal and unknown journey that always carries some sort of sadness and memories of the lost loved ones.² But the painful, intense feelings, gradually settle down. It eventually becomes easier to cope up with the life. Here are some ways by which Yoga can help us to cope up with grief

1. The meditation aspect helps to focus the energy and thoughts.
2. Yoga helps to deal with real-world problems.
3. Yoga helps to provide harmony between body and mind.
4. Yoga and meditations are great ways to regulate body.
5. Yoga works holistically on physical, mental and spiritual level.
6. Yoga provides sense of oneness.

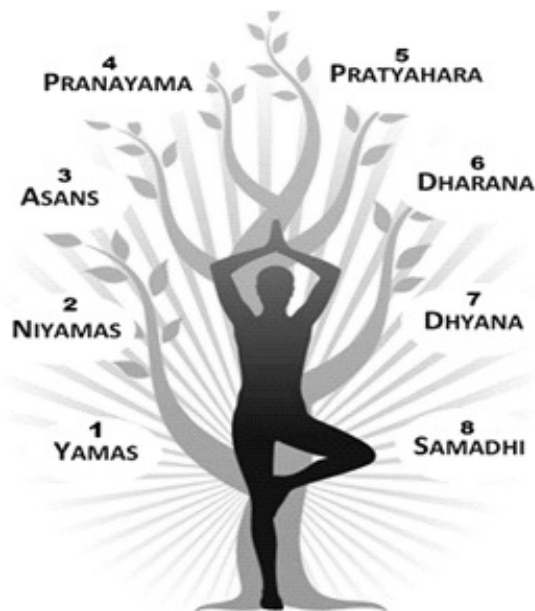
Yoga Philosophy helps to move towards Acceptance

Vairagya, or non-attachment is the main concept of yoga philosophy.³ Grief and attachment is directly proportional. People suffer from the grief due to attachment. The state of Vairagya teaches us that everything will not be remain the same as everything changes and everything will eventually end.

Sage Patanjali explains the eight limbs of yoga means of eight step which is being mentioned in the most prominent text of yoga that is Yoga Darshan. The eight paths of Yoga bring wisdom. Yoga emphasis on mindfulness is particularly useful for awareness. It create harmony between body mind and soul. Patanjali's eight limbs of Yoga¹ (Ashtanga Yoga)

-
1. Helbert, K. (2016). *Yoga for grief and loss*. London, UK: Singing Dragon.
 2. Cited from <https://www.psychologytoday.com/intl/blog/understanding-grief/201806/grief-yoga> Accessed on 12/02/2022.
 3. Goyandaka, H. (2017). *Yoga-Darshan*. Gorakhpur: Gita Press.

and science of holistic wellbeing is achieved through Asthanga Yoga by using its techniques and its philosophy. The practice of Ashtanga Yoga is helpful in developing all the dimensions of one's personality at physical, mental, emotional and moral level in order to progress in the spiritual journey. Ashta means eight and Anga means limbs, these are :



Asana helps to improve Physical Wellbeing

स्थिरसुखमासनम्

Sthirasukhamāsanam

Patañjali Yogadarśana 2.46

The practice of asana brings the balance, feeling of firmness and wellbeing. The regular practice of Yoga postures develops and improves physical and mental health. It overcomes the duality of the mind and body and provides the firmness. It is the remedy for elimination of the obstacles such as physical illness, removal of physical impurities. Nowadays asana being practice as a therapeutic way and people are taking benefits from the chronic illness and pain.

-
1. Niranjanananda Saraswati, S. (1993). *Yoga Darshan*. Yoga Publication trust, Munger, Bihar.

Pranayama for Mental Health

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥

Tasmin Sati Śvāsapraśvāsayorgativicchedaḥ Prāṇāyāmaḥ ॥

Patañjali Yogadarśana 2.49

The breath and mind have strong relationship as the stability of the mind is the result of the stability of the breath. Breath can be regulate through practice of pranayama. It is the process of the purification of the nadis - the subtle energy channels in the body. The blockage in the energy passages dissipates the pranic energy leading to imbalance which results in mental sickness and physical sufferings in the form of abnormal conditions. Different types of Pranayama practices bring the calmness to the mind and purifies the blocked nadies (subtle energy channel), and develop the level of the mental concentration.

Pratyahar (Regulation of Senses)

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥

Svaviṣayāsamprayoge Cittasvarupānukāra

Ivendriyāṇām Pratyāharaḥ॥

Patañjali Yogadarśana 2.54

Pratyahara is the practice of disciplining the sense; this technique is useful for mental stability. Through the practice of Pratyahara one can establish mastery over the senses. Tranquility of the mind is possible when our sense organs are under control.

Dhayna (Meditation)

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्॥

Tatra Pratyāikatānatā Dhyānam॥

Patañjali Yogadarśana PYS 3.2

Meditation is the thing which would remove all the obstacles all the problem, human mind is mentioned as monkey mind continuously thinking one thought to another thought mind has to be focused. This focus can get through the meditation. Practice of meditation is unbroken flow of the awareness on the chosen object of contemplation.¹

1. Cited from <https://www.yogabasics.com/connect/yoga-blog/yoga-for-grieving/> Accessed on 18/03/2022.

Overcoming the Grief through Bhagavad Geeta

Bhagavad-Gita has assumed a position of universal interest. Its teaching has gained appreciation in India as well as entire world. Everything is being mention in this scriptures, how to behave, how to face difficult situation, what is the true nature of human being. One can get the answer of every question after understanding it. Similarly during the grief Bhagavad-Gita teaches that death has to be taken as person is changing its cloths, one chapter is over another chapter is begins person is not gone, as the Bhagavad-Gita says no one dies everything is there what dies is body it changes in shape and colour, soul is there and remain forever. Soul is unmanifest, it is incomprehensible. Therefore knowing this one should not grieve. Only the form changes one into another.¹ The Bhagavad-Gita describes the soul as Invisible and inconceivable², unbreakable, insoluble which can neither born nor die.³

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

Nainam chindanti śāstrāṇi nainam dahati pāvakaḥ

Nacainaṁ kledayantyāpō na śoṣayati mārutaḥ

Bhagavad-Gita 2.23

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमेजनाधिपः।

न चैव न भाविष्याम सर्वे वयमतः परम्॥

natvevāhaṁ jātau nāsaṁ n tvāṁ nemejanādhipāḥ।

nacāiva nabhāviṣyāmasāṛve vayatamataḥ param॥

Bhagavad-Gita 2.12

Hatha Yoga Practice for overcoming the Grief

At the time of grief, body feels so heavy, heart gets broken, muscles and joints get stiff due to lesser movement and less physical activity. Hatha yoga practices basically focus on physical postures which helps in extension and relaxation.⁴ Asana help to improve flexibility and strength that removes

1. Ramsukhdas, S. (2016). *Shrimad Bhagwat Gita* (Sadhak Sanjeevani, Parishishtha). Gorakhpur Gita Press.
2. Goyandaka, H. (2017). *Isādi Nava Upaniṣad*, Gitapress, Gorakhpur
3. Goswami, N. (1997). *Śrībhagavadgītā*, Goudiye Vedant Prakashan, Shri Keshavji Goudiye Math, Mathura.
4. Cited from <https://www.yogajournal.com/practice/yoga-sequences/yoga-for-grief> Accessed on 15/03/2022

the stiffness and tightness from the muscles and joints. Following Asana are.

1. Sasankasana
2. Parvatasana
3. Hasttonasana
4. Padhastasana
5. Bhujangasana
6. Janu Sirsasana
7. Pascimottanasana
8. Savasana

Conclusion

Yoga is not merely a form of exercise but a mean of attaining emotional, physical & spiritual equilibrium. Grief affects the physical, mental, spiritual, and emotional aspects of our being. Death and birth both are natural phenomenon, something which comes has to go, what is wrong is to don't allow it to go and that is where the trauma comes. Yoga philosophy teaches that nothing is permanent everything will be end eventually.

Yoga is conventional approach for wellbeing and along with other alternative and complementary therapy, yoga is an effective medium to reduce the chronic stress, given the risks to mental and physical health posed by unsettledgrief. Regular practice of yoga connects with the reality, teaches that do not hold the past instead of going to the past and crying for the loss, understand the responsibility towards own self, family members and the society.

Yoga can be suitable for all the segment of the population. It is more accessible and affordable than individual psychotherapy and similar to mindfulness-based stress reduction practices, once learned, it can be used by an individual indefinitely to promote and maintain their wellbeing.



Phytodiversity and Ethnopharmacologically Important Plants of Gurukul Kangri (Deemed to be University) Haridwar, Uttarakhand, India

Sandeep Kumar*

Navneet*

Sunil Kumar**

Abstract : The present study deals with survey of tree diversity, identification, folk, traditional and ethnopharmacological utilization of plants of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar, Uttarakhand, India. Gurukul Kangri is one of the leading oldest premier institute with potential for value based Vedic Culture and Indian traditional education system of excellence as recognized by UGC. The bio-rich campus sprawling over 2360 sq. km. is in western part of Uttarakhand state with a latitude 29° 55' 06.45" N and longitude 78° 07' 32.19" E, Altitude Elevation 269m and flourish with some very old trees planted at the time of establishment, exotic flora along with indigenous herbs, shrubs, palms, climbers. In view of current and regular demand of plants of medicinal, religious and aesthetic importance, the entire lush-green campus was surveyed to collect the tree utilization and tree diversity data. Interestingly more than 317 trees including Angiosperms and Gymnosperms were recorded belonging to 35 families, 64 genera, 72 tree species. The trees were identified by using relevant scientific literature and subsequently the data was evaluated in the present investigation for future sustainable utilization. The family, genus and species ratio is 1:1.2:2.05, among the angiosperms monocotyledons and dicotyledons ratio is 1:12.8 while Gymnosperms and Angiosperms ratio is 1:23. The most

* Department of Botany and Microbiology, Gurukul Kangri, Deemed to be University, Haridwar

sandeepchokar@gmail.com, drsunil.registrar@gkv.ac.in

** Registrar, Gurukul Kangri, Deemed to be University, Haridwar, Uttarakhand

dominant family is Fabaceae with 10 genera and 10 species followed by Moraceae with 5 genera and 9 species. Most of plants are used in traditional system of medicine including Siddha, Unani and Ayurveda to prepare medicine not only by Gurukul Kangri campus residents but outsiders also. The study found that all tree species recorded from campus having traditional medicinal value and ethnopharmacological applications in folk care medicines and recognized as safe alternatives for modern chemical and synthetic drugs.

Key Words : Vaidic University Gurukul Kangri, Ved & folklore medicines, ethnobotany, tree diversity, pharmacognosy.

Introduction : The Himalayas have a great wealth of medicinal plants and traditional medicinal knowledge. The ethnobotanical indigenous folk care medicinal knowledge and pharmacology is as old as human civilization. In India herbal medicines are used from Vedic period as mentioned in Ayurveda between 2500-6000 BC and in Rig Veda between 4500-1600 BC and later accepted by Arabs and Europe. According to World Health Organization (WHO), about 80 percent human population still using traditional plant based medicine to satisfy their primary health related needs by using of plant origin agents and among them 11 percent are essential drugs (WHO, 2002). As an estimate about 50 percent of the medicines currently in use derived straight from plants and almost 25 percent drugs have their genesis of plants prescribed by various system of medicines (Iaq, 2004) Traditional remedies have no or very less side effect and available from nearby flora. Plant based crude drugs and polyherbal formulation suggested in Ayurvedic system of medicine are dominating and leading in India. A total of 335 vascular plant species represented by 222 genera belonging to 67 different families were recorded (*Rajendran et. al.* 2014).

Biodiversity provide a variety of ecological services from its species richness that are essential for environment at local, regional and global level and maintaining oxygen, carbon dioxide percentage, water cycle, air and soil pollution along with fulfillment of medicinal demand are some essential functions of plants (Rao and Udapure, 2018). Flora is the plant life an important component of local environment and ecosystem, work as foundation for other biodiversity occurs in area. Location of individual medicinal plant in campus, identification, enumeration and folklore information associated with them will help to assess the potential impact and disturbance on tree diversity in present and future prospects. Floristic

diversity helps to understand the species richness and taxonomic information is considered as backbone for sustainable utilization, productivity assessments and for conservation prospects and managements (Jeeshna, 2020). Anti-oxidative role of herbs against chemical induced toxicity has been studied by (Saini *et. al.*, 2021)

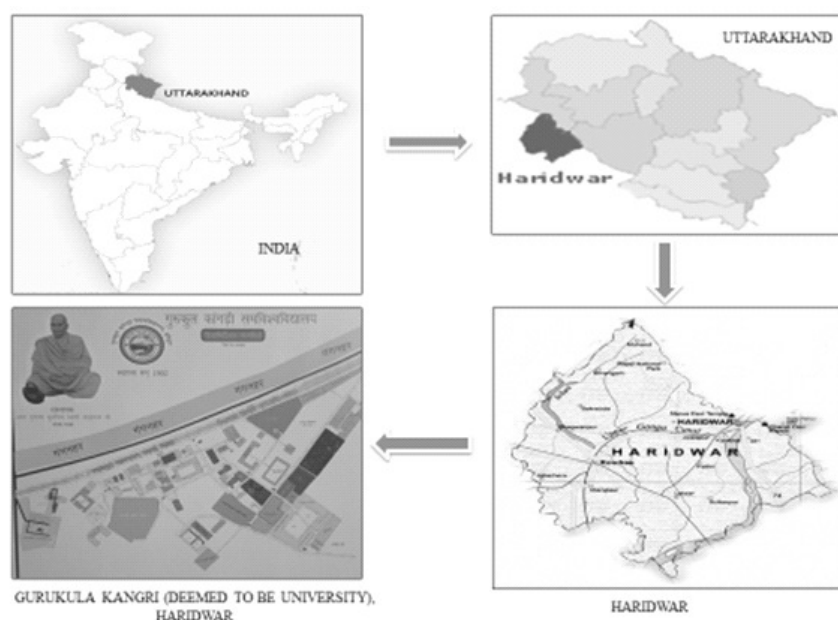
Gurukul Kangri is situated in foot hills of Himalaya along Ganga canal. The holy river Ganges endows a variety of indigenous, exotic medicinal and aromatic plant species used in indigenous and traditional system of medicines like Ayurveda, Siddha and Unani. The unsustainable, reckless exploitation for medicinal and folklore uses has given rise to a long list of conservation problems related to plant diversity. Keeping in view the sustainable utilization and importance of Gurukul Kangri tree flora, the investigation was confined to document the phytodiversity. This study aims to understand the contribution of individual plant species in religious, aesthetic, ecological services, folklore, pharmacological applications and traditional knowledge associated with them.

Materials and Methods : The tree diversity existed in Gurukul Kangri, Campus is critically surveyed and photographed. The identification of tree flora distributed all over the campus was done with the help of standard literature and flora. The check list was prepared familywise, vernacular, names and folk care medicinal uses was established through direct communication with local habitants, gardeners and hakims. Botanical names and ethanopharmacological applications was established with the help of international plant name index (IPNI), Royal Botanical Garden, Kew, England and The Harvard University, Herbaria, scientific research papers, review articles, books, standard literature on medicinal plants and pharmacopeias.

Result and Discussion : Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar one of the premier and oldest institute of higher education and research was founded on 4th March, 1902 by Swami Shradhananda Ji Maharaj based on Indian traditional Gurukula system of education against the Thomas Babington Macaulay English system of education to Indians. The biorich campus sprawling over 2360 sq. km. is in western part of Uttarakhand state on the bank of holy river Ganges at a distance about 6 km with a latitude 29° 55' 06.45" N and longitude 78° 07' 32.19" E, Altitude Elevation 269mts. The Gurukul Kangri campus flourish with some very old trees planted at the time of establishment, exotic flora along with indigenous herbs, shrubs, palms, climbers

(University Map 1). In the view of current and regular demand on medicinal, religious and aesthetic importance, the entire lush-green campus was surveyed to collect the tree utilization, ethanopharmacological applications and to document the phytodiversity. In the present investigation a total of 72 tree species representing 64 genus belonging to 35 families have been recorded (Table 1). Among the 35 families, the most dominating family is Fabaceae with 10 genera, 10 species followed by Moraceae represented by 4 genera and 9 species and Myrtaceae with 4 genera and 5 species, while Apocynaceae represented by 3 genera and 4 species. However, Arecaceae, Bignoniaceae, Meliaceae, Rubiaceae represented by 3 genera and 3 species followed by Malvaceae, Phyllanthaceae and Spotaceae by 2 genera and 2 species. Rest of the families represented by single genus with single species (figure 1). Majority of plant species have medicinal and therapeutic application due to antimicrobial, antiulcer, anti-inflammatory, antidiarrheal, antipyretic, expectorant, antifungal and skin problems (ShahidiBonjar, 2004). Recently, several workers have reported occurrence, distribution and utilization of medicinal plants from various institutes, college and universities campus to conserve the flora and fauna for teaching, research and pharmacological exploitation (Renukarya et al., 2015; Sahoo, 2017; Jeeshna, 2020; Guleria, 2020)

Out of 72 species, 69 species were found to be of Angiosperms (95.83 percent) and only 3 species (4.17 percent) belonging to Gymnosperms (figure 3). Furthermore, out of all angiosperms, 92.75 percent were found dicots and 7.25 percent represented by monocotyledons (figure 3). Among the plant species found in campus Gymnosperms and Angiosperms ratio is 1:23, monocots and dicots ratio is 1:12.8. However, family, genus and species ratio was found 1:1.82: 2.05 only which is very low because most of plants are scattered and planted. In terms of conservation and preserving phytodiversity, a medicinal plant botanical garden was setup at campus. The present investigation found that the reported plants possess medicinal values along with aesthetic, religious, ornamental, comestible and ethanopharmacological applications. Most of the plants are inevitable components of folklore medicine and Ayurvedic medicinal system. The documentation of phytodiversity not only will help in conservation and preservation of existing phytoresources but also provide insight to campus students and researchers for future prospective.



Map 1. Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar, Uttarakhand, India.

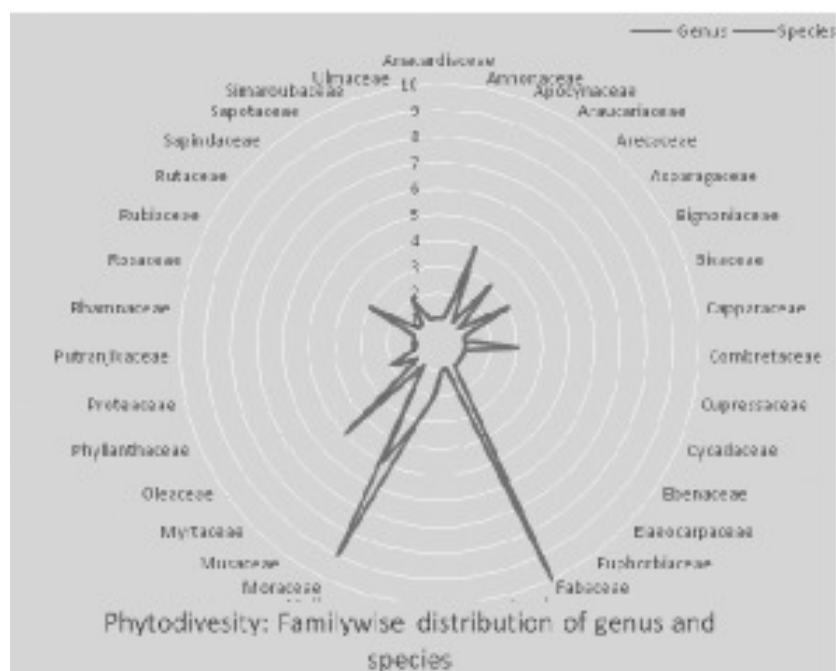


Figure 1. Familywise genus and species phytodiversity in Gurukul Kangri campus.

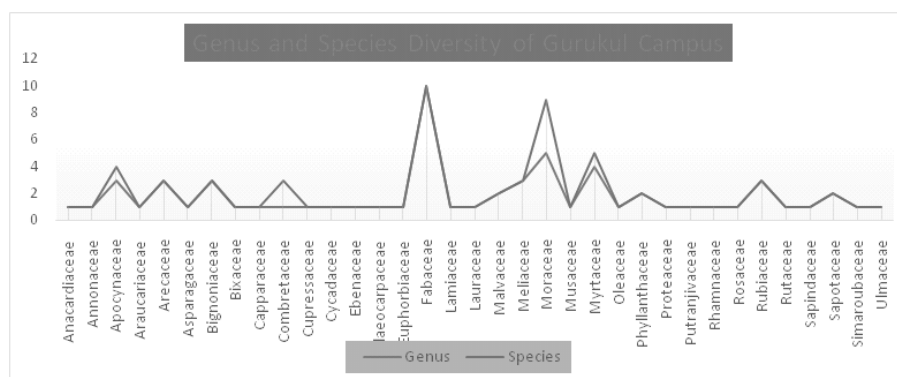


Figure 2. Genus and species phytodiversity of Gurukul Campus.

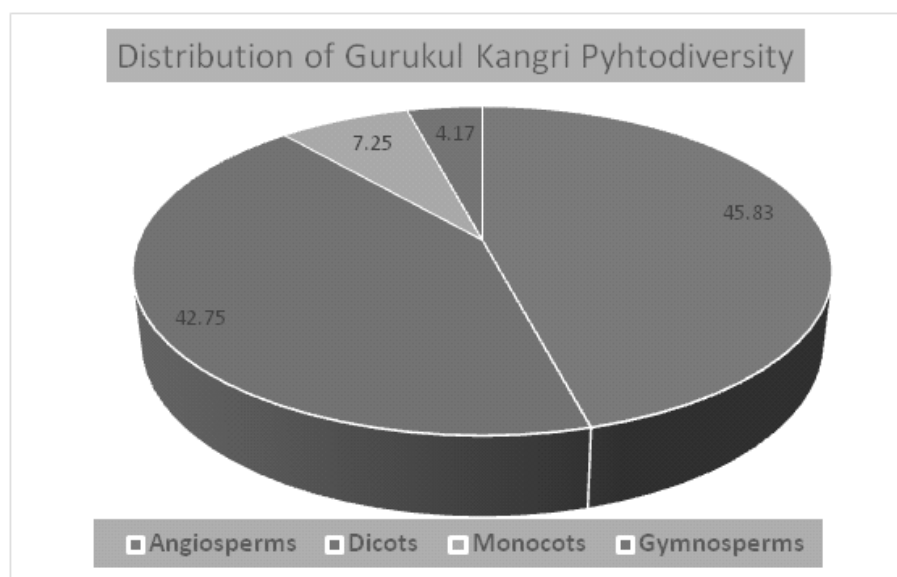


Figure 3. Percentage of Angiosperms and Gymnosperms phytodiversity in Gurukul Kangri.

Conclusion : In the present study, the occurrence, availability and distribution of medicinal value and ethnopharmacological utilization of discrete plant species has been inspected and surveyed critically. Most of the plant species are used as an important constituent of polyherbal formulations or utilized individually for medicinal purposes. Majority of these plant species are used in folklore system of medicines for various ailments such as central nervous system (CNS), diabetes, cardio vascular disorders and digestive problems and predominantly work as herbal

remedies therapeutic agents to cure ulcer, anti-inflammatory, anti-worms, antibacterial, gastro-protective, rheumatism, dysentery, antifungal and skin problems. The reckless and ruthless exploitation of the plant species will result in the loss of priceless phytodiversity of campus flora and fauna. The sustainable utilization of plant resources, conservation and documentation will be useful to ensure the availability for healthy environment, aesthetic value, religious and education services, medicine value, research and utilization of ethanopharmacological applications for future prospective.

Acknowledgement

The authors are thankful to Uttarakhand Council of Science and Technology (UCOST), Dehradun, UK and National Medicinal Plant Board (NMPB), Ministry of Ayush, Government of India, New Delhi for financial support and encouragement.

References

- Guleria, S. (2020) Designed plant biodiversity in a college campus in Chandigarh. *RJLBPCS*, 6(3): 65-74.
- Haq, I. (2004). Safety of medicinal plants. *Pak J Med Res*, 43(4), 203-210.
- Jeeshna, M.V. (2020) Floral diversity and phytosociological analysis of Sree Narayana college campus, Thottada, Kannur. *Journal of Shanghai Jiaotong University*. 16(9): 597-615.
- Rajendran A, veerasamy A and Ariyan S. (2014) Biodiversity of Bharathiar University Campus India : A floristic approach. *Int. J. Biodiversity and Conservation*, 6(4), 308-319.
- Rao, P.S. and Udapure, S. P. (2018) Survey on tree diversity of JM Patel College Campus, Bhandara, (M.S.). *Int. J. Res. Biosci. Agri. And Technol.* (VI) III: 52-56.
- Renukarya, C.K., Krishna Kumar, H.N. and Chauhan, J.B. (2015) Studies on flora of Mahajana PG campus. *Journal of Scientific and Innovative Research*. 4(5): 207-212.
- Sahoo, T.K. (2017) Study of plant diversity in TamraliptaMahavidyalaya campus, Tamluk, Purba-Medinipur, West Bengal, India. *TamraliptaMahavidyalaya Research Review*. A peer reviewed *National Journal of Interdisciplinary Studies*. 2: 48-58.

- Saini, D., Devi, S. & Kumar, S. (2021) Anti- inflammatory and Anti- Oxidative role of Ayurvedic herbs against chemical induced toxicity. *VaidikaVag Jyotih*. 17 (09): 130-148.
- Shahidi Bonjar, G. H. (2004). Evaluation of antibacterial of Iranian medicinal plants against *Micrococcus lateus*, *Serratiamarcescens*, *Klebsiella pneumonia* and *Bordetellabronchoseptica*. *Asian J Plant Sci*, 3, 82-86.
- World Health Organization (2002) Traditional medicine: growing needs and potential. World Health Organization, Geneva. Pp. 1-6

Table 1. Ethanopharmacologically important plants of Gurukul Kangri (Deemed to be University) Haridwar.

Family	Botanical Name	Vernacular Name	Pharmacological uses
Anacardiaceae	<i>Mangifera indica</i> Wall.	Aam, आम	Traditionally used to treat diarrhea, anaemia, asthmaleucorrhoea, haemorrhage piles, dentrifice, antiseptic, astringent, diaphoretic, stomachic, vermifuge, tonic, laxative, diuretic, bronchitis, cough, hypertension, insomnia, rheumatism, and toothache.
Annonaceae	<i>Polyalthialongifolia</i> (Sonn.) Hook.f. & Thomson	Ashok, अशोक	Treatment of helminthiasis, fever, diabetes and cardiac problems.
Apocynaceae	<i>Nerium indicum</i> Mill.	Kaner, कनेर	Flowers and leaves used to stimulate cardiac muscles, eliminate blood stasis and relieve pain.
	<i>Alstoniascholaris</i> (L.) R. Br.	Kassod, कसोद	Used for both codified and non-codified drug systems for the treatment of malaria, jaundice, gastrointestinal troubles, cancer and in idiopathic diseases.
	<i>Plumeria acutifolia</i> Poir.	Chempaka, गुलचीन	The bark is bruised and applied as plaster over hard tumors, also used for the treatment of a large number of human ailments purgative, cardiotonic, diuretic, and hypotensive in Sushrita Samhita, Charaka Samhita and Ayurveda.
	<i>Plumeria obtuse</i> Bertero ex A.DC.	Temple tree, चम्पा	The flowers are used in a complex pectoral syrup and root bark is used in the treatment of bleenorragia, herpes and syphilis, latex from the stem is used for treating ulcers, skin diseases.
Araucariaceae	<i>Araucaria columnaris</i> (G. Forst.) Hook.	Cook pine क्रिसमसूदी	Used to treat antiulcer, antiviral, neuro-protective, anti-depressant and anti-coagulant and anti-inflammatory.

Arecaceae	<i>Roystonea regia</i> O.F. Cook.	Royal Palm, रॉयलपाम	Used to treat prostate hyperplasia, diabetes, nervous disorders and ornamental purposes.
	<i>Caryota mitis</i> Lour.	Fishtail Palm बनखजू	Used to treat seminal weakness, snake bite poisoning, urinary tract infection, rheumatic swelling, hemicranias.
	<i>Livistonia chinensis</i> R.Br.	Fountain Palm देसीपाम	Traditionally used in Chinese and Japanese system of medicines have antibacterial, antifungal, antihyperlipidemic, antiosteoporotic, anti-angiogenic, cardio-protective, slimming, antioxidant and antitumor.
Asparagaceae	<i>Agave americana</i> L.	Agave, कमलकैक्टस	Traditionally used to treat irritation allergic reactions and skin problems. Taken by mouth for constipation, cancer, male-pattern baldness and polyherbal formulations.
Bignoniaceae	<i>Kigelia africana</i> (Lam.) Benth.	Balamkhira, बलमखीरा	Used in indigenous medicinal and non-medicinal applications such as a remedy for wounds healing, rheumatism, psoriasis, diarrhea and stomach ailments.
	<i>Jacaranda mimosifolia</i> D. Don	Jacaranda, नूपुर	Used to treat venereal infections, gastrointestinal disorders, leishmaniasis, colds and rheumatism.
	<i>Tabebuia aurea</i> Benth & Hook.f. ex s. Moore	Roble, बसंतरानी	Used to treat pain and inflammation, antinociceptive, wound healing, and anti-microbial activities.
Bixaceae	<i>Bixa orellana</i> L.	Latan, लटकन	Antipyretic, aphrodisiac, antidiarrheal, antidiabetic and insect repellent. The seeds are natural colorant contain bixin a carotenoid, used in coloring dairy products, traditionally used as aphrodisiac, emmenagogue, expectorant and vermifuge activities.

Capparaceae	<i>Crataeva religiosa</i> G. Forst. Barna, बर्ना	Traditionally used to enhance immunity, astringent, cholagogue, weight loss, strengthens bones, urination and excretion, proper growth, antiemetic, antidote in snakebite, improves digestion, increases appetite and biliary secretionless leg syndrome, lower risk of heart problems.
Combretaceae	<i>Terminalia arjuna</i> (Roxb. Ex DC.) Wight & Arn. Arjun, अर्जुन	Traditionally used in indigenous Ayurvedic formulation to treat hypertension, congestive heart failure, helps reduce the risk of heart diseases, detoxify the blood, cardio tonics. Also used to treat ulcers, hepatic, hypocholesterolemic, antibacterial, antimicrobial, antitumoral, antioxidant, antiallergic and antifeedant, antifertility, fractures, and anti-HIV activities and strong hydrophilic properties.
	<i>Terminalia bellirica</i> (Gaertn.) Roxb. Bahera, बहेड़ा	Used to protect the liver and respiratory tract infections, cough, and sore throat, dysentery and lotion for sore eyes.
	<i>Terminalia chebula</i> Retz. Harad, हरड़	Used to treat as astringent dentifrice in loose gums, bleeding and ulceration in gums, good appetite, digestive aid, liver stimulant, stomachic, gastrointestinal prokinetic agent, and mild laxative.
Cupressaceae	<i>Thuja occidentalis</i> L. Thuja, पामरमरसा	In folk medicine used to treat bronchial catarrh, enuresis, cystitis, psoriasis, uterine carcinomas, amenorrhea, rheumatism and in homeopathy as mother tincture or dilution.
Cycadaceae	<i>Cycas revoluta</i> Bedd. Sago palm, साइकस	Stems and seeds are used to treat high blood pressure, headaches, congestion, rheumatism and bone pain. Leaves used in the treatment of cancer and hepatoma and terminal shoots used as astringent and diuretic and toxicities.

Ebenaceae	<i>Diospyros malabarica</i> (Desr.) Kostel	Gaub, गाब	Used externally to heal wounds and sores, fruit to treat dysentery and diarrhea, blood diseases, gonorrhea, and leprosy. The fruit is used to treat fever, antidote for snake poisoning, and demulcent.
Elaeocarpaceae	<i>Elaeocarpus angustifolius</i> Blume	Rudraksh, रुद्राक्ष	Traditionally used to treat stress, anxiety, depression, palpitation, nerve pain, epilepsy, migraine, lack of concentration, asthma, hypertension, arthritis and liver.
Euphorbiaceae	<i>Euphorbia tirucalli</i> Thunb.	Pencil cactus, भद्रचूड़	Due to vesicant and rubefacient nature used to treat rheumatism, asthma, ear-ache, warts, cough, tooth-ache and neuralgia, purgative, irritant and emetic.
Fabaceae	<i>Acacia leucophloea</i> (Roxb.) Willd.	Safed Kikkar सफेद बबूल	Traditionally used to treat styptic, antimicrobial, antianthelmintic, expectorant, antipyretic, antidote for snake bites and heal fractures.
	<i>Pongamia pinnata</i> (L.) Merr.	Karanj, करंज	Crude drug preparation used to treat tumors, piles, skin diseases, and ulcers, while root is effective for the treatment of skin diseases, gonorrhea, cleaning gums, vaginal infection, teeth and ulcers.
	<i>Albizia lebbek</i> (L.) Benth.	Siris, शिरीष	Traditionally used to treat migraine, conjunctivitis, jaundice, gastrointestinal, genital, inflammatory, skin problems, asthma, migraine, diarrhea, neurological problems.
	<i>Cassia fistula</i> Herbb. ex Oliv.	Amaltas, अमलतास	The root decoction used as tonic, strong purgative, febrifuge, and astringent. Also used in joint pain, chest pain, blood dysentery and migraine, fever, heart diseases, retained excretions and biliousness.
	<i>Dalbergia sissoo</i> Roxb.	Indian rosewood, शीशम	One of the best woods used for furniture, craft and wood carving items. Also used for the treatment of microbial infections, reproductive problems, skin and gonorrhea, sore throats, bronchitis, inflammations, dysentery and syphilis.

<i>Senna siamea</i> H.S. Irwin & Barneby	Kasod, कसोद	Traditionally used to treat typhoid fever, jaundice, menstrual pain and abdominal pain, reduce sugar level in the blood. Ethno medicine used in herpes and rhinitis, laxative, cure for digestive system, blood cleaning agent, and genitourinary disorders.
<i>Delonix regia</i> (Bojer) Raf.	Gulmohar, गुलमोहर	Folkloric used to treat disorders constipation, pneumonia, inflammation, diabetes, malaria and rheumatoid arthritis.
<i>Pithecellobium dulce</i> (Roxb.) Benth.	Jangal Jalebi, जंगलजलेबी	Endogenously used for indigestion and to prevent spontaneous abortion, gall bladder ailments, both open and closed wounds. Seed is used for treating antibacterial, ulcersanalgesic, anti-inflammatory, anti-diarrheal, anti-ulcer, hypoglycemic and antioxidant.
<i>Bauhinia variegata</i> L.	Kachnar, कचनार	Used to treat as anticancer, antioxidant, hypolipidemic, antimicrobial, anti-inflammatory, nephroprotective, hepatoprotective, anti-ulcer, immunomodulation, molluscicidal and wound healing.
<i>Cassia siamea</i> Lam.	Kasood, कसोद	Used in constipation, diabetes, insomnia, hypertension, asthma, typhoid fever, and diuresis. Leaves and bark is medicinal plants used locally as antimalarial medications.
<i>Hamelia patens</i> Jacq.	Firebush	Ethno-folk care medicine to treat athlete's foot, skin problems, rheumatism, asthma, headache, dysentery, menses, ovarian, insect sting, psychiatric disorder and uterine disorders.
<i>Tectonagrandis</i> L.f.	Sagun, सागुन	Traditionally used in folk medicine for treatment of diarrhea, haemoptysis, cure for bronchitis, skin diseases, constipation, anhelmentic, dysentery, depurative and hyperacidity.
<i>Cinnamomum camphora</i> (L.) J. Presal	Kapur, कपूर	Traditionally used to treat heart problems, fevers, respiratory diseases like pneumonia, colds and inflammatory conditions, diarrhea, antiseptic, hysteria and counterirritant.
Lamiaceae		
Lauraceae		

Malvaceae	<i>Bombaxceiba</i> Burm. f.	Semal, सेमल	Thorn paste used to treat pimples, various sexual diseases like menstrual disorders and gonorrhea, leucorrhea. Bark paste in wound healing, urinary disorder and piles, astringent, diuretic, aphrodisiac, demulcent, cooling and stimulant.
	<i>Hibiscus rosa-sinensis</i> Ker Gawl.	Gudhal, गुड़हल	Indigenously used in preparation of herbal medicine to treat hypertension, and cancer progression, anti-spasmodic properties, cholesterol production, blood pressure-lowering properties, coughs, diabetes, treating wounds, inflammation, fever, hair problems and various infections caused by fungi and bacteria.
Meliaceae	<i>Azadirachta indica</i> A. Juss.	Neem, नीम	Traditionally used to treat leprosy, eye disorders, bloody nose, loss of appetite, intestinal worms, stomach upset and skin ulcers. Enhance immunity, traditional natural insect and mosquito repellent, pesticide, and fertilizer and applications in gastrointestinal diseases. Neem extracts can be used in pests and fungal diseases attack to protect agricultural crops.
	<i>Melia azedarach</i> L.	Bakain, बैकैन	Used in ethno medicines as antioxidative, analgesic, anti-inflammatory, insecticidal, antidiabetic, cathartic, emetic, antirheumatic and antihypertensive, rodenticidal, antidiarrhoeal, deobstruent and diuretic in Ayurveda.
	<i>Toonaciliata</i> M. Roem.	Tun, तुन	Traditionally used in menstrual disorders, chronic dysentery, leprosy, cardiotonic, aphrodisiac, cures fever, headache, blood complaints and ulcer.
Moraceae	<i>Artocarpus lakoocha</i> Roxb.	Barhal, बड़हल	Strong antioxidant helps in the maintenance of health, prevents heart diseases due to coronary in nature, and against cancer as well, fruit with high end nutritional along with medicinal properties.

<i>Broussonetiapapyrifera</i> (L.) Went.	Paper mulberry, कागजीशहतूत	Used in traditional and folk formulations. Leaf juice is laxative and diaphoretic, vomiting blood and blood sputum, fruits to treat ophthalmic and impotence problems, bark and root used against chronic prostatitis.
<i>Morus alba</i> L.	Sahtoot, शहतूत	Leaves food for the silkworms, used to treat dizziness, insomnia, premature aging, protective effect against atherosclerosis, liver, inflammation and kidney disorders,
<i>Ficus virens</i> Aiton.	Pilkhan, पिलखन	Traditionally used to treat internal disorders involving poisoning, antiviral, antioxidant, phyto-mediated properties, anti-inflammatory, tyrosinase inhibitory, hypolipidemic.
<i>Artocarpus heterophyllus</i> Lam.	Katahal, कटहल	Leaves and bark is effective in the treatment of diabetes, asthma, prevent ringworm infection, gall stones and heal cracking of the feet.
<i>Ficus religiosa</i> L.	Pipal, पीप	Vedic plant is used as a medicine in various systems of medicines in Siddha, Unani, Homeopathy, Allopathy and in Ayurvedic traditionally used in treatment of antileuc, antibacterial, antidiabetic, gonorrhea and skin diseases. Herbal formulations used in cough, skin diseases, improving the skin complexion, nausea, migraine, ear pain, haematuria and toothache.
<i>Ficus benjamina</i> Wall.	Weeping Fig, अंजीर	Folk care medicine used to treat skin disorders, inflammation, malaria, nose diseases, vomiting, piles, leprosy, general tonic and cancer. Also used as antimicrobial, antinociceptive, anti-dysentery remedy and antipyretic, hypotensive.
<i>Ficus benghalensis</i> L.	Banyan, बरगद	All ancient medicine systems such as Ayurveda, Unani and Siddha uses to vegetative parts, stem, bark, aerial roots, underground roots

for curing various life-threatening diseases. In Ayurveda used to treat wounds, skin diseases, eye diseases, diarrhea, leucorrhea and diabetes.

Used in ancient system of medicines Ayurveda, fruit extract to treat diabetes, liver disorders, hemorrhoids, respiratory, urinary diseases diarrhea, inflammatory conditions, as described in Vedas it is used in spiritual practices.

Traditionally used in religious and aesthetic practices. Medicinal application of peel and pulp of fully ripe bananas used in fever, cough, bronchitis, sexually transmitted infections, dysentery, allergic infections nutritional and some of the non-communicable diseases.

Vedic medicine used as blood purifier and antidiabetic; bark is acrid, sweet, digestive, astringent to the bowels, anthelmintic carminative, stomachic, diuretic, anti-diarrheal, anti-inflammatory, gastro-protective, antioxidant and used for the treatment of sore throat, bronchitis, asthma, thirst, biliousness, dysentery, radio protective and ulcers.

Folk medicine used for the treatment of diarrhoea, dysentery and rheumatism, antibronchitis, anticough, and insecticide,

Traditional Ayurvedic medicine used for gastrointestinal infections like diarrhea, dysentery, indigestion, stomach aches and preparation of beverages, jelly, jams, nutritive and medicinal, lungs and ulcer problems formulations.

Ficus racemosa Willd. Cluster fig, गूलर

Musaceae *Musa acuminata* Colla Banana, केला

Myrtaceae *Syzygium cumini* (L.) Skeels Jamun, जामुन

Callistemon lanceolatus (Sm.) Sweet Bottle brush, चील

Psidium guajava L. Amrood, अमरूद

<i>Syzygiumsalicifolium</i> Wall.	Kathjamun, कठजामुन	Ethno-medicine since ancient time to treat digestive, anti-diabetic, astringent, analgesic, anti-inflammatory, anti-oxidant, anti-helminthic, anti-bacterial, antifungal, anti-hyperglycemic, stomachic problems and gastro-protective phytomedicine.
<i>Eucalyptus globulus</i> Labill.	Nilgiri, नीलगिरी	Essential oil used oil in creams and ointments to relieve joint pain and muscle pain. Also used to prepare mouth washes, cold products and cough to relieve congestion.
<i>Nyctanthes arbor-tristis</i> L.	Paarijat, पारिजात	Ayurvedic, mythological and ethanopharmacological medicine since Vedic period with high medicinal value use to treat sciatica, anti-helminthic, alopecia and anti-pyretic also used as a laxative, sedative, in rheumatism and skin problems, osteoarthritis, joint pain and Vatadosha.
Phyllanthaceae	<i>Bischofia javanica</i> Blume	Bark and leaves used to treat diarrhea, antimicrobial, anti-leukemic, anti-inflammatory, sore throat, nervous problems, anti-nociceptive and antiparasitic medicines.
	<i>Phyllanthusemblica</i> L.	Vedic plant used as potent rasayana in traditional Ayurvedic formulations specially fruits for the treatment of jaundice, hepatoprotective, inflammation, anti-microbial, diarrhea, cold, immunobuster, anti-diabetic, anti-inflammatory, antioxidant, hypolipidemic, anti-emetic, fever and anaemia.
Proteaceae	<i>Grevillea robusta</i> A. Cunn. Ex R.Br.	The bark and leaves used for the treatment of headaches and dizziness, chest problems, flu, treat sore throats, earache, and toothache and plant is used for ornamental purposes.
Putranjivaceae	<i>Putranjivaroxburghii</i> Wall.	Indian native medicinal plant used to treat diseases like stomach and mouth ulcers, burning sensation hot swellings, ophthalmopathy

			and smallpox. Seeds used to treat female reproductive organs problems, begetting male child and uterine tonic in traditional formulations.
Rhamnaceae	<i>Ziziphus mauritiana</i> Lam.	Indian Jujube, बेर	Traditional and folk medicine used for skin moisturizing, rejuvenation, styptic problems, lightening, anticancer, pectoral, stomachache, refrigerant, sedative and common tonic.
Rosaceae	<i>Prunus persica</i> Rehder	Peach, आम्र	The leaves extract or decoction have parasiticide, mildly sedative astringent, demulcent, expectorant properties. Also used to treat gastritis, febrifuge, laxative, diuretic, whooping cough, antitumor, antibacterial, antimicrobial, anti-inflammatory and bronchitis in traditional system of medicine as well as cosmetic and religious rituals.
Rubiaceae	<i>Neolamarckia cadamba</i> (Roxb.) Bosser	Kadamb, कदम्ब	Used in the treatment of fever, blood detoxification, skin problems, uterine diseases, tumor, eye inflammation, anaemia and diarrhoea. Also used in polyherbal formulation of antimalarial, anti-inflammatory, diuretic analgesic, antipyretic and laxative.
	<i>Gardenia jasminoides</i> Retz.	Jasminoides, गंधराज	Used to treat viral infections. reduce insulin resistance and to reduce swelling, cholesterol, lower blood fats and hepatoprotective.
	<i>Hamelia patens</i> Jacq.	Firebush	Used in ethno folk care medicine to treat athlete's foot, skin problems, headache, asthma, ovarian and uterine disorders. insect sting, psychiatric disorder, rheumatism, dysentery, menses.
Rutaceae	<i>Aegle marmelos</i> (L.) Correa.	Stone apple, बेलपत्र	Traditionally used in folk care medicine and indigenous system of medicine for various ailments and serious problems including ulcer, antifertility, antidiarrhoeal, anticancer, antigenotoxic, vatha, pitha and kaphadosha.

Sapindaceae	<i>Lecaniodiscuscutipanioides</i> Planch.	Burkill	Traditionally used to treat anti-inflammatory, analgesic, wound healing and anti-pyretic, activities. Ethnomedicinal applications in wound healing, skin problems, sexual disorder, typhoid, diabetes and measles.
Sapotaceae	<i>Madhuca indica</i> J.F. Gmel.	Mahua, महुआ	Traditional folk medicine to treat antiulcer, anti-diabetic, hepatoprotective, anti-fertility, anti-pyretic, anti-oxidant, analgesic, swelling, dermatological, laxative, common tonic, anti-burn, anti-worm, headache, inflammation, piles and emetic.
	<i>Mimusops selengi</i> Wight	Maulsari मौलसरी	Ayurvedic medicinal plant used in Ayurveda and Unani system of medicine have antinociceptive, diuretic effects, antifungal, gum bleeding, anti-cariogenic, anti-hyperglycemic, dental caries, gastro-protective, antibacterial, free radical scavenging and snake bite treatments.
Simaroubaceae	<i>Ailanthus excelsa</i> Roxb.	Maharukh, महारूख	Used in folk medicine treatment against asthma, bronchitis, antifertility, dysentery and anthelmintic, Kaphadosha in Ayurvedic system of medicines.
Ulmaceae	<i>Holoptelea integrifolia</i> (Roxb.) Planch.	Papri, पपड़ी	Traditionally used in Ayurveda to treat localized swelling, skin problems, indigestion, piles, blood purifier, nausea, diabetes, antiseptic, febrifuge. Ethno medicine to treat antifungal, antibacterial, anti-arthritis, antiviral, antimicrobial, antioxidant, stem bark and seeds paste use to treat ringworm.



Vaidika Vāg Jyotiḥ is a half yearly Refereed & Peer-Reviewed International Vedic Journal of Gurukul Kangri (Deemed to be University), Haridwar. Manuscripts should be submitted to the Editor both in Electronic Form and in Hard Copy (Walkman 901 or 905, typed on A4 size paper). Research papers of late eminent vedic scholars recommended by reviewers can also be consider for publication.

Copyright © Gurukul Kangri Deemed to be University, Haridwar.

The Advice and information in this Journal are believed to be true and accurate but the person associated with the production of the journal can not accept any legal responsibility for any errors or omissions that may be made. All disputes are subject to jurisdiction of the District Court Haridwar, Uttarakhand only -***Editor in Chief***

Contact for :-

Submission of Manuscript

Chief Editor 'वैदिक वाग् ज्योतिः' '**Vaidika Vāg Jyotiḥ**'

Gurukula Kangri (Deemed to be University)

Haridwar - 249 404 Uttarakhand, INDIA

Email - dineshcshastri@gmail.com

Tel : +91-9410192541

<http://www.gkv.ac.in>

For further information Mail to :

Prof. Dinesh Chandra Shastri

Chief Editor (dineshcshastri@gmail.com)

Note : For subscription and related enquiries feel free to contact
Business Manager & editor



ISSN : 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
(UGC CARE listed half yearly journal)
January-June 2023

‘वैदिक वाग् ज्योतिः’ ‘Vaidika Vāg Jyotiḥ’
An International Refereed/Peer-Reviewed
Research Journal on Vedic Studies

Aims & Objectives

1. *To rectify and clarify the illusionary thoughts expressed by critics on Vedas, by referring to the existing logical proof and arguments, in Shastras.*
2. *To extract the knowledge-scientific or otherwise, hidden in Vedas.*
3. *To publish the original Vedic findings.*
4. *To prepare special edition on Vedic doctrine, containing detailed arguments for notified Vedic research outcomes.*
5. *To accelerate from Brahma to Jaimini School of Vedic thoughts for removing the illusions prevailing about Vedas.*
6. *To publish critical edition of work carried out on Vedas by citing the facts that originally existed in Vedic books, rarely available.*

उद्देश्य

1. विद्वानों द्वारा किये गये और सम्प्रति किये जा रहे वेद से सम्बन्धित भ्रमपूर्ण विचारों की शास्त्रीय प्रमाणों एवं तर्क तथा युक्ति के आधार पर समालोचना तथा तत्सम्बन्धी समाधान करना।
2. वेदों में निहित ज्ञान-विज्ञान के विविध पक्षों को उद्घाटित करना।
3. वेद तथा वैदिक साहित्य से सम्बन्धित मौलिक अनुसंधानात्मक लेखों का प्रकाशन करना।
4. वैदिक सिद्धान्तों पर विस्तृत विवेचनात्मक विशेषांक तैयार करना। जिनमें पूर्व लिखित एवं प्रकाशित तत्सम्बन्धी लेखों/ग्रन्थों का भी उपयोग किया जायेगा।
5. ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की वैदिक विचारधारा को वेद विषयक भ्रान्तियों को दूर करने के लिए गति देना।
6. वेदविषयक ग्रन्थों की समीक्षा एवं अप्रकाशित अनुपलब्ध वैदिक ग्रन्थों के मूलपाठ का प्रकाशन करना।